Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112846

श्वास-रोग (दमा) की अद्भुत जड़ी

लाभ न होने पर मूल्य वापस

मेरे पास मेरे आयुर्वेद के तथा धार्मिक गुरु श्री बाबा शीतलदास जी की बताई हुए एक चमत्कार-पूर्ण जड़ी है जिसके प्रबल प्रभाव से अब तक श्वास-रोग (दमा) के हज़ारों रोगी पूर्ण रूप से स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं और जिसके आधार पर लाहौर में मेरा 'दमा-अस्पताल' भी चल रहा है। इसका प्रयोग आरम्भ करने के ३-४ दिन के अन्दर ही कठिन से कठिन और पुराने से पुराना दमा भी शान्त होने लगता है और थोड़े ही दिनों में जड़ से उखड़ जाता है। मूल्य पूरा कोर्स ४० दिन ५), आधा कोर्स ३॥); नमूना ५ दिन १), डाक-व्यय ॥) अलग। सब ओर से निराश दमा के रोगी श्री बाबा जी की इस अद्भुत प्रभावशालिनी जड़ी से अवश्य स्वास्थ्य-लाभ करें। लाभ न होने की अवस्था में और दवाई मुफ़्त भेजने या मूल्य लौटा देने की लिखित गारंटी है। पत्र से रोग और रोगी की अवस्था भी लिखें।

राजवैद्य मुंशीराम चौधरी, दमा-अस्पताल,
बच्छोवाली, लाहौर।

पैसा कमाने का सह...

बम्बई में आढ़त की प्रसिद्ध व ... भरव-

तार का पता—'चमत्कार'

टेलिफ़ोन नं० :—२६७४०-३०४८१ घर ७६४६.

यदि आप बम्बई में रुई, सोना, चाँदी तथा सींगदाना वग़ैरह की वायदा डिलेवरी का व्यापार अथवा हर एक किराना हाज़िर माल का व्यापार करते हैं तो हमारी पुरानी और प्रसिद्ध फ़र्म से व्यवहार कीजिए, क्योंकि हमारे यहाँ हर एक जगह से आढ़त ख़र्चा वग़ैरह बहुत कम है और काम बहुत मेहनत और फ़ायदे से भुगताया जाता है; और हमारी "दी कमिशियल डेली रिपोर्ट" भी बाज़ार-भावों और विलायत की ख़बरों से भरपूर आपकी सेवा में बराबर पहुँचती रहेगी। आज ही रिपोर्ट और नियमावली मुफ़्त मँगाइए।

साहू गनेशीलाल शंकरलाल एण्ड कम्पनी,
बेंकर्स, मर्चेन्ट्स एण्ड कमीशन एजेण्ट्स,
कालबादेवी रोड, बम्बई नं० २

ताक़त तथा तन्दुरुस्ती के लिए बच्चों को

डोंगरे का बालामृत देना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कुछ सुप्रसिद्ध कलाकारों के उपन्यास और कहानियाँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...रद् बाबू के मास्टर ...ाद है। इसमें कुलीनता, ... प्रदर्शित किया गया है। मूल्य ।) चार आने।

उच्च शिक्षा, द्विज और द्विजेतर, गाँव की भलाई और अपनी तरक़्क़ी, नई शिक्षा और मिथ्या अभिमान आदि के सम्बन्ध में बहुत ही विशद विवेचना की गई है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के उपन्यास और कहानियाँ

गौरमोहन—रवीन्द्र बाबू के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास गोरा का हिन्दी-अनुवाद। पुस्तक दो भागों में है। मूल्य ४) चार रुपये।

राजर्षि—रवीन्द्र बाबू के इसी नाम के बँगला उपन्यास का अनुवाद। इसे पढ़ते-पढ़ते हृदय की सारी दुर्भावनायें दूर हो जाती हैं, हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और एक निश्चल प्रेम का भाव उमड़ आता है। मूल्य १।) सवा रुपया।

गल्पगुच्छ—(चार भाग) रवीन्द्र बाबू की छोटी कहानियों का संग्रह। प्रथम भाग का मूल्य ।।।) बारह आने और शेष तीन भागों में से हर एक का १) एक रुपया है।

आश्चर्य-घटना—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के एक सामाजिक उपन्यास का अनुवाद। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

विचित्र वधू-रहस्य—रवीन्द्र बाबू के 'बउ ठाकुरानीर हार' नामक उपन्यास का अनुवाद। मूल्य १) एक रुपया।

मुकुट—इस उपन्यास में भाई-भाई ...

मास्टर साहब—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की एक उत्कृष्ट कहानी का हिन्दी-अनुवाद। मूल्य ।) चार आने।

राजारानी—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने इस नाटक में यह बात भली भाँति दिखलाई है कि राजा में नीतिकुशलता तथा प्रजा के प्रति समुचित अनुराग न होने के कारण राज्य में किस प्रकार की अव्यवस्था एवं अशान्ति फैल

सकती है। मूल्य १।) सवा रुपया।

बङ्किम बाबू की कृतियाँ

देवी चौधरानी—इस उपन्यास में बंगाल के मुसलमानों की शक्ति के अवसान तथा अँगरेज़ों की प्रभुता के अभ्युदय-काल की अवस्था का चित्रण किया गया है। उस युग में कुलीन प्रथा के कारण ब्राह्मण-बालिकाओं को किस प्रकार की दुर्दशा भोगनी पड़ती थी, इसकी भी एक झाँकी इसमें दिखलाई गई है। मूल्य १) एक रुपया।

कपालकुंडला—बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के इसी नाम के उपन्यास का अनुवाद। मूल्य ।।।) बारह आने।

रजनी—एक चमत्कारपूर्ण मनोवैज्ञानिक कहानी। मूल्य ।।) आठ आने।

...—प्राणों की बाज़ी ... कर सतीत्व की मर्यादा की ... करनेवाली एक अत्यन्त धैर्यशालिनी महिला की कथा। मूल्य ।–) पाँ... आने।

बँगला के सुप्रसिद्ध कलाकार प्रभात बाबू के उपन्यास और कहानियाँ

रत्नद्वीप—प्रभात बाबू के इसी नाम के उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। मूल्य २) दो रुपये।

पंचपल्लव—इस पुस्तक में प्रभात बाबू की पाँच ऐसी कहानियों का संग्रह किया गया है, जिनमें भारत की धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक अवस्था का चित्रण विशेषरूप से किया गया है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

पत्र-पुष्प—इसमें प्रभात बाबू की सामाजिक समस्या, समाधान, पिल्ला, जासूसी का जंजाल, अद्वैतवाद, कन्यादान और सतीदाह नामक कहानियों का संग्रह किया गया है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

नवीन संन्यासी—इस उपन्यास में ग्राम्य और नागरिक जीवन का यथार्थ और सुन्दर चित्रण किया गया है। हास्य और विनोद की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। मूल्य ३।।) साढ़े तीन रुपये।

देशी और विलायती—प्रभात बाबू

की चुनी हुई कहानियों का ... मूल्य २।।) ढाई रुपये।

विविध विषयों की उपयोगी पुस्तकें मिलने का पता—इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११२ ८४६

लेख-सूची

चित्र-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए एक नई और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूज़ाक (गनोरिया) की हुक्मी दवा

डॉ० जसानी का
जगत्-विख्यात

रजिस्टर्ड

चाहे जैसा पुराना या नया सूज़ाक क्यों न हो ? पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अन्दर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को 'गोनोकिलर' जड़ से नष्ट कर देता है।

चेतावनी—नक़ली से सावधान ! ख़रीदने से पहले दवा का नाम 'गोनोकिलर' और मुर्ग़ाछाप सीलबन्द पैकेट देख लीजिए।

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का ३) रु०, वी० पी० डाक-व्यय आठ आने अलग।

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन्० जसानी (S. A.) गिरगाँव, बेक रोड, बंबई नं० ४

दाम्पत्य-सुख की कुंजी !

शीघ्रपतनान्तकबटी

स्त्री-पुरुषों में प्रेम न होने का मुख्य कारण "शीघ्रपतन" है। जब तक नारी को नर से सन्तोष न होगा, तब तक वह कभी नर को प्यार नहीं कर सकती। वह सदा जली-कटी सुनाती रहेगी, भुन-भुन करती रहेगी। इस दुःख के दूर करने के लिए ही—

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक

हरिदास जी वैद्य ने

सत्तर साल की अवस्था में, लासानी, बेजोड़, स्वर्ग-सुख दिखानेवाली

शीघ्रपतनान्तक गोलियाँ

ईजाद की है। इनको नित्य खाकर दूध पीने से बल-वीर्य बढ़ता है, संभोग की इच्छा अत्यन्त बलवती होती है। संभोग में रुकावट होती है। नर और नारी दोनों को सन्तोष और अकथनीय सुख मिलता है। इन गोलियों के सेवन करनेवाले को संभोग की मनाही नहीं है, हाथ की हाथ सुख, स्वर्ग-सुख मिलेगा। सबसे बड़ी बात यह कि बल-वीर्य नहीं घटेगा, बल्कि रोज बढ़ेगा। अब तक ऐसी दवा किसी ने नहीं निकाली। आप एक छोटी शीशी मँगाकर ही परीक्षा कीजिए। आधा मूल्य छोटी शीशी का ३) और बड़ी का ६) ; डाकखर्च ।) है।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
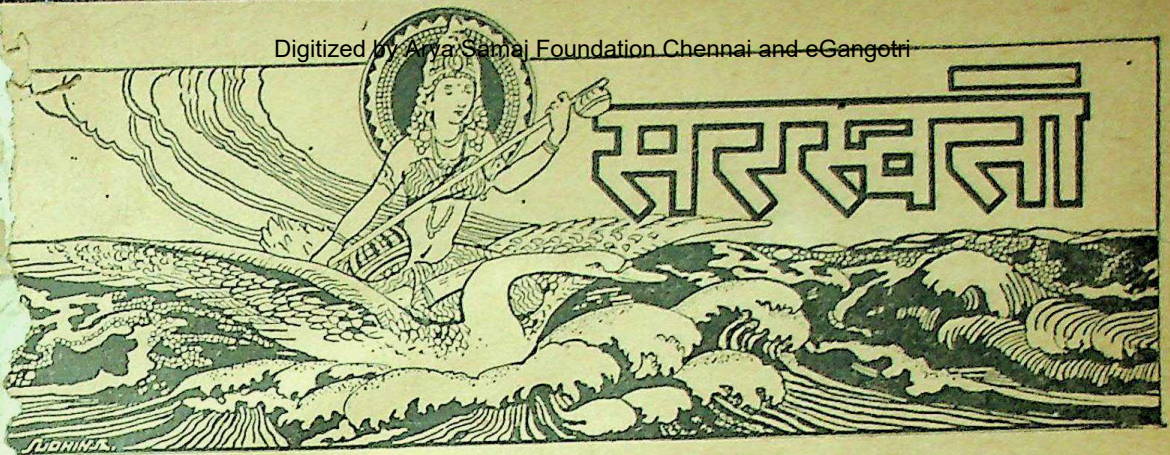
सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल : उमेशचन्द्र मिश्र

फरवरी १९४२] भाग ४३, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ५०६ [माघ १९९८

शुभ-कामना

ठाकुर गोपालशरणसिंह

सुख-शान्तिमय संसार हो !
पशु-शक्ति का न प्रयोग हो,
सद्भाव का उपयोग हो,
सबमें सदा सहयोग हो,
निज चित्त पर निज वित्त पर,
सबका सदा अधिकार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !

व्यक्तित्व का सम्मान हो,
निज देश का अभिमान हो,
पर विश्व-हित का ध्यान हो,
निज स्वार्थ में ही भूलकर,
कोई नहीं अनुदार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !

सबका सदा उत्कर्ष हो,
तो भी न कुछ संघर्ष हो,
आराध्य बस आदर्श हो,
हो वर विवेक विचार मन में,
और उर में प्यार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कांग्रेस और बारदोली-प्रस्ताव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत के० के० भट्टाचार्य, एम० ए०, बी० एल०, एल-एल० एम०, बार-एट्-ला (लन्दन)

इस लेख के लेखक श्री भट्टाचार्य महोदय प्रयाग-विश्वविद्यालय में क़ानून के रीडर हैं। विधान और राजनीति पर उनका अध्ययन बहुत विशाल है। प्रस्तुत लेख में कांग्रेस की कार्य-समिति के गत बारदोली-अधिवेशन की विवेचना करते हुए उन्होंने यह दिखाया है कि यदि सरकार इस अवसर से लाभ उठाये और कांग्रेस के मित्रता के लिए प्रसारित हाथ का सच्चे दिल से स्वागत करे तो न केवल देश का साम्प्रतिक वैधानिक अड़ङ्गा दूर हो जायगा, ब्रिटेन को शत्रु को हराने के प्रयत्नों में भारतीयों की ओर से धन-जन की अपार सहायता भी मिलेगी, जिससे वह उस महान् उद्देश्य की सिद्धि सच्चे रूप में कर सकेगा, जिसके लिए वह वर्तमान युद्ध में भाग लेने की बात अपनी घोषणाओं में बार-बार कह रहा है।

खिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के गत बारदोली-प्रस्ताव ने बाहरी दर्शक की दृष्टि में एक ओर महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों में विभेद उत्पन्न कर दिया है और दूसरी ओर स्वयं प्रस्ताव के निर्माताओं में। परन्तु परिस्थिति का स्पष्टीकरण पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री अबुलक़लाम आज़ाद के पिछले वक्तव्यों से अच्छी तरह हो जाता है। उन नेताओं ने साफ़ शब्दों में कह दिया है कि उनका यह तनिक भी इरादा नहीं है कि गांधी जी को कांग्रेस से बाहर कर दिया जाय। बिना गांधी जी के कांग्रेस वैसी ही होगी जैसी बिना रीढ़ का शरीर हो सकता है। गांधी जी देश के इस सर्वाधिक सुसंगठित और शक्तिशाली राष्ट्रीय संगठन की आत्मा और मस्तिष्क हैं, जो देश की करोड़ों जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करने का सच्चा दावा रखती है। ऐसा भारतीय एक भी न होगा जिसके हृदय में कांग्रेस के प्रति प्रशंसा के भाव न हों। देश की विशाल जन-संख्या पर कांग्रेस का व्यापक प्रभाव है और वह पथ-प्रदर्शन के लिए कांग्रेस की ओर ताका करती है। इसलिए गांधी जी भी जो इस महान् संगठन के प्राण हैं, सदैव उसकी नीति के निर्देशक रहेंगे।

बारदोली-प्रस्ताव ने सरकार से सहयोग करने के लिए मित्रतापूर्ण हाथ बढ़ाया है, पर एक शर्त के साथ कि सरकार भारतीयों के जन्म-सिद्ध अधिकार 'स्वाधीनता' को स्वीकार कर ले। उसने सरकार से कार्यों-द्वारा यह प्रमाणित कर देने की माँग की है कि सरकार जिस युद्ध के लड़ने में संलग्न है वह 'डिमाक्रेसी' के लिए--जनसत्तात्मक शासन-प्रणाली की रक्षा के लिए है। और यह भी कि मिस्टर चर्चिल तथा प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट की यह संयुक्त घोषणा सत्य है कि वे जिस सुन्दर संसार की द्वारपाली करने को अग्रसर हो रहे हैं उसमें स्वाधीनता, शान्ति, न्याय और प्रगति की प्रधानता रहेगी। दूसरे शब्दों में जहाँ तक
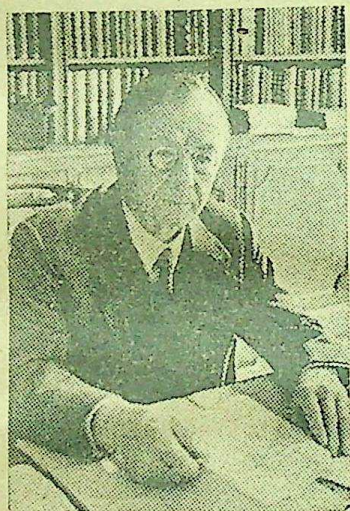
भारत-सचिव श्री एमरी

युद्ध के उद्देश्यों का संबंध है, यह ब्रिटेन-अमरीका की सम्मिलित घोषणा के सत्य की कसौटी है। 'यह युद्ध जनसत्तात्मक शासन-प्रणाली की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है।' इस पर संसार तब तक विश्वास कर भी कैसे सकता है जब तक उसका एक बहुत बड़ा भूभाग--भारतवर्ष--इस शासन-प्रणाली से वंचित है। मिस्टर चर्चिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारदोली में मौलाना अबुलक़लाम आज़ाद पंडित जवाहरलाल नेहरू और कुमारी इंदिरा नेहरू के साथ।

प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट दो महान् डिमोक्रेसियों के संचालक हैं, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु जब तक इतना बड़ा देश परतंत्र है, संसार के राजनीतिज्ञ उनकी इस सम्मिलित घोषणा का क्या महत्त्व समझेंगे ? वे तो तब तक इसकी दिल्लगी ही उड़ायेंगे जब तक भारत को 'डिमोक्रेसी' नहीं मिल जाती, फिर चाहे वह घोषणा कैसे ही हेर-फेर के साथ, कितने ही ज़ोरदार शब्दों में और कितनी ही बार दोहराई जाय।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, कांग्रेस के नेताओं ने बारदोली-प्रस्ताव द्वारा अपनी उसी माँग को जो १८ महीने पूर्व पूना में ठुकराई जा चुकी है, पुनः उपस्थित करके अपनी बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। अब यह बात सरकार की सदिच्छा पर निर्भर करती है कि वह परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिए इस मित्रतापूर्ण सहयोग के आमंत्रण का स्वागत करे या उधर से घृणापूर्वक मुँह फेर ले। कांग्रेस की यह माँग मेरी समझ से असामयिक भी नहीं है कि सरकार यह घोषणा तो अभी कर दे कि भारत अब अपने को पराधीन न समझे और उसके लिए कुछ ठोस कार्यवाहियाँ भी आरम्भ कर दे। सरकार की ओर से यह कहा जा सकता है कि आजकल ब्रिटिश लोगों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है; इन दिनों शासन-विधान के मसविदों पर विवाद करने का न तो अवसर ही है, न यह व्यवहार्य ही है। यह कुछ हद तक ठीक भी है। पर इस अवस्था में सरकार यह तो घोषित कर ही सकती है कि युद्ध समाप्त होते ही भारत स्वाधीन हो जायगा। साथ ही भारत को स्वाधीनता की ओर अग्रसर करने के लिए वह कुछ निश्चित वैधानिक कार्य भी करना आरम्भ कर दे सकती है। उदाहरणार्थ 'कार्यकारिणी का राष्ट्रीयकरण' बतलाया जा सकता है। इसका केवल भारतीयकरण पर्याप्त नहीं है। जनसत्तात्मक शासन-प्रणाली के मूल सिद्धान्तों पर पहुँचना आवश्यक है। अब आवश्यकता यह है कि सातों प्रान्तों में गवर्नरों के शासन को स्थगित कर दिया जाय और उसका पूर्ण उत्तरदायित्व जनता के सच्चे प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दिया जाय। यह तो सर्वविदित है कि सात प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारदोली में पंडित जवाहरलाल नेहरू

को उत्सुक है, परन्तु सरकार को भी अपनी ओर से और अपने कार्यों से यह प्रमाणित कर देना चाहिए कि वह 'डिमोक्रेसी' के लिए लड़ रही है, केवल वाणी से इस दावे को बार बार दोहराने से कुछ नहीं बनता। न इस समय कांग्रेस पर सरकार का यह दोषारोपण ही ठीक लगता है कि वह सरकारी कार्यों में रुकावट डाल रही है।

मिस्टर फ़ज़लुल हक़ के निकल आने से मुस्लिम लीग की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है। बंगाल जो अब तक मुस्लिम लीग का गढ़ समझा जाता था, उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि वह मुस्लिम लीग के 'डिक्टेटर' के हाथों की कठपुतली बनकर रहना नहीं चाहता। इस प्रकार मुस्लिम लीग का बहुमत या प्रतिनिधित्व वस्तुलोक से हटकर केवल काल्पनिक लोक में रह गया है अतः ऐसी कोई प्रत्यक्ष बाधा दिखाई नहीं पड़ती जो कांग्रेस को पद-ग्रहण करने और मंत्रि मंडल निर्माण करने के लिए आमंत्रित करने में सरकार के सामने आ सके। फिर मिस्टर फ़ज़लुल हक़ के निकल आने से मुस्लिम लीग का राजनैतिक महत्त्व भी नहीं के बराबर रह गया है।

है। शेष तीन प्रान्तों में भी कांग्रेस की सहायता से शासन-प्रबंध अधिक सुन्दरता से किया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि वहाँ के मंत्रिगण कांग्रेस की सहायता से सबल मंत्रिमंडल का निर्माण कर सकते हैं। बंगाल ने अभी हाल में ही प्रमाणित कर दिया है कि कांग्रेस की सहायता सबल मंत्रिमंडल की स्थापना के लिए अनिवार्य है। इस उदाहरण से उन प्रान्तों की आँखें खुल जानी चाहिए जिनमें कांग्रेस का अल्पमत है। इसके लिए सिंध, आसाम और पंजाब का नाम लिया जा सकता है।

शेष प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत है ही, अतः इस समय यही उचित प्रतीत होता है कि सरकार शासन का भार सँभालने के लिए प्रजा के प्रतिनिधियों को शीघ्र आमंत्रित करे। जहाँ तक मैं समझता हूँ, कांग्रेस इसे सहर्ष स्वीकार कर लेगी। परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह साफ़ प्रकट होता है कि देश पर मँडरानेवाली उस भीषण विपत्ति का सामना करने में कांग्रेस हृदय से सरकार का साथ देने

अतः यदि सरकार वस्तुतः इस प्रकार के राजनैतिक समझौते के लिए इच्छुक हो तो सबसे पहले क्रियात्मक क्षेत्र में पद बढ़ाते हुए उसे उन व्यक्तियों की रिहाई का मार्ग खोल देना होगा जो बिना मुक़दमा चलाये ही जेलों में बन्द कर दिये गये हैं। यदि सच पूछा जाय तो किसी पर मुक़दमा चलाकर अपराध प्रमाणित किये बिना उसे जेल में बन्द कर रखना स्वाधीनता अपहरण करने का निकृष्टतम ढंग है, जो किसी प्रजातंत्र का समर्थन करनेवाली सरकार के लिए शोभा-जनक नहीं है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को सज़ा पाने से पहले अपने अपराध के विषय में जान लेने का नैसर्गिक अधिकार प्राप्त है।

इसके बाद भारत को स्वाधीन घोषित कर देने का समय आता है। भले ही सरकार विधान का निर्माण युद्ध के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी सरदार पटेल और श्री महादेव देसाई के साथ कांग्रेस-कार्यकारिणी के अधिवेशन में भाग लेने जा रहे हैं।

समाप्ति के पश्चात् करे, पर ब्रिटेन के हित में यह सर्वथा उचित होगा कि वह युद्ध के प्रयत्नों में भारत को समानता का साझीदार समझे। अर्थात् ब्रिटेन भारत के साथ भी शीघ्र से शीघ्र वैसा बर्ताव करना आरम्भ कर दे जैसा वह साम्राज्य के अन्य स्वायत्त-शासन-प्राप्त उपनिवेशों के साथ कर रही है। इसके लिए प्रारम्भ इस प्रकार किया जाना ठीक होगा कि सरकार प्रान्तीय शासन का पूरा उत्तरदायित्व मंत्रियों को सौंप दे और गवर्नरों को सूचित कर दे कि वे मंत्रियों की जिम्मेदारी पर होनेवाले कार्यों के संबंध में अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करना छोड़ दें। इसके लिए शासन के ढाँचे में विशेष हेर-फेर करने की आवश्यकता भी नहीं है। थोड़ा-सा सुधार अपेक्षित है तो केवल उन हिदायतों के ढंग में जो गवर्नरों को सरकार की ओर से समय समय पर दी जाती हैं। इस थोड़े से ही परिवर्तन का शासन-प्रणाली पर बहुत बड़ा असर पड़ सकता है।

मिस्टर एमरी गला फाड़-फाड़कर कह रहे हैं कि सभी दलों को एक हो जाना चाहिए। एक कुशल राजनीतिज्ञ का ऐसा कथन सचमुच भयानक है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट भारत को कुछ देने का विचार तभी कर सकती है जब पहले यहाँ की सभी पार्टियाँ आपस में समझौता कर लें। क्या हम मिस्टर एमरी से सम्मानपूर्वक पूछ सकते हैं कि संसार में क्या कोई ऐसा स्वतंत्र देश भी है जिसमें राजनैतिक पार्टियाँ न हों? हाँ, यह अवश्य है कि भारत में यह समस्या कुछ अधिक उलझे हुए रूप में है, पर यह भी सत्य है कि यहाँ जितने दल हैं उनमें से अधिकांश ऐसे ही हैं जिनकी सत्ता या तो काग़ज़ों में है या ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के मस्तिष्कों में। उल्लेख योग्य केवल कुछ पार्टियाँ हैं, जिनमें से प्रमुखतया कांग्रेस और मुस्लिम लीग का नाम लिया जा सकता है। परन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, मुस्लिम लीग का राजनैतिक महत्त्व श्री फ़ज़लुल हक़ के साहस-पूर्ण कार्य से लगभग समाप्त हो गया। इस दशा में प्रभावशाली पार्टी केवल एक रह जाती है—कांग्रेस, शेष पार्टियों की उपेक्षा की जा सकती है और वह जितना शीघ्र हो उतना ही अच्छा।

बंगाल के प्रधान मंत्री श्री फ़ज़लुल हक़।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि ब्रिटिश सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
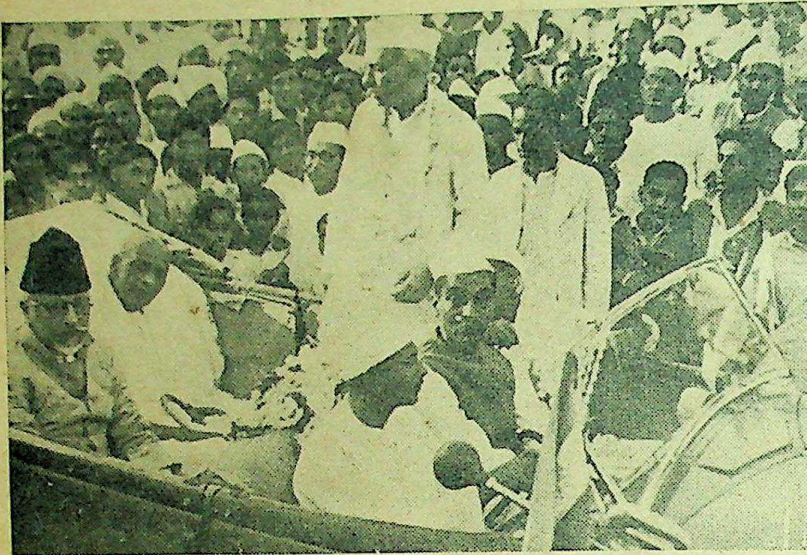
बारदोली की जनता पंडित जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का स्वागत कर रही है।

बार ऐसी ध्वनियाँ गुँजाई गई थीं कि—"यह युद्ध युद्ध समाप्त करने के लिए है। इस युद्ध से एक बेहतर संसार की रचना होगी, पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना होगी, इत्यादि, इत्यादि।" परन्तु जब युद्ध का अन्त हुआ तब हमें वस्तुतः संसार वैसा ही मिला जैसा कि वह पहले था। हम वहीं पर रहे जहाँ पर युद्ध से पूर्व थे। अतएव इस बार यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सरकार केवल वक्तृताओं-द्वारा नहीं, उस दिशा में कुछ ठोस कार्य-वाही करके यहाँ की सुसंगठित जन-संस्थाओं को यह विश्वास दिला दे कि जो कुछ वह कह रही है उसे कार्यरूप में परिणत करने को सच्चे दिल से तैयार है, जिससे वे युद्ध के उद्योग में ब्रिटेन की भरसक सहायता कर सकें। भारतवर्ष की जन-संख्या ४० करोड़ है। यदि यहाँ की जनता में उत्साह का ऊपर कहे अनुसार संचार हो जाय तो नवयुवक और अधेड़ सब अस्त्र ग्रहण करने में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते दिखाई देंगे; क्योंकि उन्हें विश्वास होगा कि वे उस महान् कार्य को करने जा रहे हैं जिसके लिए लड़ने का दावा ब्रिटेन कर रहा है।

इस प्रकार बारदोली-प्रस्ताव ने ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों को अपनी राजनीतिज्ञता प्रदर्शित करने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर दे दिया है। क्या ही अच्छा होता कि इन दिनों ब्रिटेन में फ़ाक्स, पिट, शेरीडन और बर्क जैसे कुशल राज-नीतिज्ञ होते। वे ऐसे स्वर्ण संयोग से लाभ उठाने के लिए बहुत दूर जा सकते थे। उन्हें वस्तुतः यह अनुभव होता कि इस समय भारत को सन्तुष्ट करके उसकी वृद्ध और सूखी नाड़ियों में उत्साह का संचार करना ही बेहतर है, जिससे यह राष्ट्र हर्ष के आवेग में उछल पड़े और उसे निश्चय हो जाय कि वह लड़ने जा रहा है—प्रजातंत्र के लिए, स्वाधीनता के लिए और भलाई के लिए।

यह निर्णय कर ले कि वह युद्ध के पूर्व ही भारत को समानता का साझीदार समझने लगेगी और उसी के अनुसार आचरण भी करना आरम्भ कर दे तो ब्रिटेन को भारत के बच्चे बच्चे का इस युद्ध के उद्योग में हार्दिक समर्थन प्राप्त हो जाय। फिर भारत से जन-धन और अन्य साधनों का जो प्रवाह जारी हो जायगा उसकी अपारता की कल्पना करनी भी कठिन है। मैं तो यह भी सम्मति दूँगा कि इस दिशा में ब्रिटेन को एक क़दम और उठाना चाहिए और वह यह कि वह मित्रराष्ट्रों की युद्ध-कौंसिल में—यदि इस प्रकार की कोई कौंसिल बने तो—एक भारतीय प्रतिनिधि भी अवश्य रक्खे और युद्ध-कार्य पर मंत्रणा करते समय एक भारतीय राजनीतिज्ञ को भी साथ रक्खे। परन्तु सबसे पहले भारत की सहानुभूति प्राप्त करने की शर्त यही है कि भारत को समानता का अधिकार दिये जाने की खुली घोषणा तुरन्त कर दी जाय और उपर्युक्त वैधानिक सुधारों को अमल में लाना आरम्भ कर दिया जाय, जिससे भारतीयों को विश्वास हो जाय कि युद्ध वस्तुतः प्रजातंत्र की रक्षा के लिए ही लड़ा जा रहा है और युद्ध के बाद संसार की अवस्था सचमुच बेहतर होगी और यह भूलोक स्वर्ग बन जायगा। पिछले युद्ध के दिनों में हमारे कानों में बार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरघट का पीपल

बालचन्द्रलाल श्रीवास्तव 'बाल'

जिसके शैशव को यौवन ने,
जीवन भर जर्जर रहने का।
दे दिया भयंकर एक शाप;
जिसका सुमनों-सा कोमल उर
जग का प्रपंचमय रूप देख
कर उठा अचानक ही विलाप;
उस असफल मानव का स्वरूप
ले खड़ा हुआ हूँ मैं अविचल;
मैं ही हूँ मरघट का पीपल!

अपनी तन्मयता में बेसुध
इतने अपार वैभव, धन का
प्रियतम से पाकर पुरस्कार
अपने स्वरूप का ज्ञान भुला
मैंने प्रारम्भ किया, करना
अपनी सत्ता पर कुछ विचार।
समझा अपने को सर्वश्रेष्ठ,
समझा अपने को बड़ा प्रबल,
समझा अपना अस्तित्व अचल!

पर अब अपनी मर्यादा पर
आकर हूँ सोच रहा चुप हो
मैं हुआ कहाँ पर हूँ विलीन!
क्या मेरा जीवन आज बना
बनने को जग का घोर शाप?
रहने को केवल सारहीन?
क्या मेरे सपनों का यथार्थ
बन गया आज इस जग का छल?
मैं आज हुआ क्यों घोर विकल?

मैं अपनी परवशता पर जब
हँस देता, उस क्षण मेरा स्वर
बनता उलूक का मधुर गीत;
'खड़-खड़' की कर्कश वाणी से
मैं निज अस्तित्व जताता जब
जग होता है उस क्षण सभीत!
जग मुझसे रहता बहुत दूर;
मैं ले अपना निर्जन भूतल
रहता हूँ बना हुआ चंचल!

अपना अपार सौरभ लेकर
जब प्रथम-प्रथम ही आया था
मेरे जीवन का नव-वसन्त;
मैं विहँस पड़ा था एक बार
समझा था मैंने नहीं तनिक
है इस सुख का भी कभी अन्त!
मैं सिहर उठा था और तनिक
मस्ती में हुआ वहाँ पागल,
सुन मादकता का स्वर कोमल!

जग ने मुझको कब पहचाना?
यद्यपि सदैव मैं रहता हूँ
प्रतिक्षण इसके ही आस-पास!
मैं भूखे-प्यासे मानव की
अपने उर में उच्छ्वास लिये
जग में करता अज्ञातवास!
जग का लेकर अध-ऊर्ध्व भेद
मैं हूँ रोता रहता प्रतिपल!
मेरा क्रन्दन होता असफल!!

'धू-धू' की लपटों में व्याकुल
सूने श्मशान पर मौन खड़ा
मैं कर उठता सहसा मर्मर।
असफलताओं की छाप लिये
अपनी प्रतिध्वनि सुन कभी-कभी
जाता हूँ मैं क्षण भर को डर
पर मेरे उर की उच्छ्वासें
दे जाती हैं मुझको संबल;
मैं हो जाता हूँ शान्त अचल!

मैं हूँ सुख-दुख का ज्ञान लिये
लेकिन जग ने है बना दिया
मुझको नितान्त चेतनाहीन!
मुझमें चलने की चाह, किन्तु
मैं आज हुआ शृंखलाबद्ध;
है स्वत्व हमारा पराधीन!!
जग में मुझमें कितना विभेद!
यह सोच तनिक होता विह्वल
मेरा यह जीवित अन्तस्तल!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एक भावपूर्ण मनोवैज्ञानिक कहानी—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुविधा

श्रीयुत सी० के० श्रीधर चेन्नकाड, बी० एस-सी०, विशारद

रुणा जब पति के घर आई, उसने एक नया ही संसार देखा। महल क्या था, राजमहल था। सारी भूमि संगमरमर के समान किसी पत्थर से बनाई गई थी, जो दर्पण का काम देती थी। सब कहीं फ़र्श बिछा हुआ था, जो बहुमूल्य भी था। ऊपर देखने से आँखें चकाचौंध-सी हो जाती थीं। रंग-रंग के वस्त्र, फाब आदि से कमरे के चारों ओर की भीतें नहीं दिखाई पड़ती थीं। वे तो तरह-तरह की तसवीरों से बिलकुल छिपी हुई थीं। जहाँ देखो प्रकाश ही प्रकाश फूटा पड़ रहा था। प्राचीनता की बात कौन कहे, सब कुछ नया ही नया था। स्नान के लिए कदाचित् जल नहीं था, मोतियों का फ़ौवारा फूट रहा था। करुणा की समझ में कुछ भी नहीं आया कि यह मृत्युलोक है या स्वर्ग। उसे ऐसा जान पड़ा कि यह सब स्वप्न है, यथार्थ नहीं। कदाचित् अपने घर की दुनिया से कार के विमान पर चढ़कर वह देवलोक पहुँच गई है।

दबी बिल्ली की चाल से जब करुणा अपने पति के कमरे में धीरज धरकर घुस गई तब उसने देखा कि वहाँ खूबियों का बाज़ार गरम है। ठाट-बाट और सजावट का सब सामान उपस्थित था, किन्तु उसे उन चीज़ों का उपयोग अच्छी तरह समझ में न आया। एक ओर तो दीवार पर मफ़लर एक पाँत में लटक रहे थे। हैट, कोट, पैंट, सब मानो या तो सोने के थे या चाँदी के, रुई का तो नाम नहीं था। भूमि पर एक कोने में दो-तीन दर्जन बूट थे, जो ऐसे ढंग से रक्खे गये थे जैसे बिक्री के लिए बाज़ार में रखते हैं। एक ओर पेटियों का ढेर था। बड़े-बड़े शीशे थे, कुर्सियाँ थीं। मेज, पलँग और कुशन जिनमें हरी-भरी लतायें मानो लहराती थीं। वह जहाँ की तहाँ खड़ी रही, दूसरी जगह पाँव धरने की हिम्मत ही नहीं हुई। वह बिलकुल अचम्भे में आगई और बिना किसी के देखे-सुने कमरे से लौट पड़ी।

करुणा के पुराने गाँव में फ़ैशन महोदय का अभी तक पदार्पण नहीं हुआ था। कारण कदाचित् यह था कि उन महोदय का वहाँ इतना आदर न होता था जितना शहर में, या फिर उन जंगली गाँवों में पधारना उन महोदय को पसन्द न आया होगा। करुणा के गाँव में दिन में सूर्य, रात में कभी-कभी चन्द्रमा, नक्षत्र या फिर दीपक प्रकाश फैलाते थे। किन्तु यहाँ तो तारों के गर्भ से बल्वों के द्वारा प्रकाश फूटा पड़ रहा था। वहाँ तो हवा ही विजन करती थी, कभी-कभी व्यजन भी। यहाँ हवा की बात तक कौन कहे, जब गरमी लगती थी तब पंखे को चक्कर खाना पड़ता था। करुणा क्या जानती थी कि जैसे पुष्पों में पराग होता है, मनुष्य में नहीं होता। अतः आदमी पौडर लगाते हैं। वह बेचारी क्या जानती थी कि जैसे पुष्पों में सुगन्ध होती है, मनुष्य में नहीं होती। अतः आदमी सेंट, इत्र आदि का सहारा लेते हैं। करुणा के गाँव के लोग कदाचित् ऐसा करत होंगे जैसे बिहारी ने कहा है—"करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।"

(२)

राममोहन अभी-अभी एम० ए० पास हुआ था। वह फ़ैशन का प्रेमी, सच्चे हृदय से आराधक बन बैठा था। धनी-मानी रामनाथ का एकलौता बेटा था। उसने बचपन से ही ठाट-बाट के सब पाठ सीख रक्खे थे अतः अपने फ़ैशन में कोई भी त्रुटि वह आने न देता था। दिन बीतते बीतते फ़ैशन भी बदल जाता है और शहर के सारे लोग राममोहन को देखकर इस बात का निश्चय करते थे कि अब फ़ैशन कुछ बदल गया है। फ़ैशन का पूरा रखवार होने पर भी उसमें एक नैसर्गिक त्रुटि थी। वह यह कि उसके बाल कुछ नटखट थे। आक्सफ़ोर्ड रीति से कंघी से जितना ही ज़ोर लगाकर वह बाल सँवारता, कंघी को उठाते ही उतने ही ज़ोर से बाल ऊपर उठ जाते। इस त्रुटि को दूर करने के लिए जो भी उपाय करता, कारगर न होता। अतः अपने बालों से वह तंग आगया था। तीसरे पहर साढ़े चार बजे जब वह अपना राकेट हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में घुमाते हुए, धरती के धरातल पर समकोण बनाते हुए चलता तब भी उसके बाल ऊपर उठते रहते थे। उसके सिर पर रहने से बालों को भी जैसे घमंड आ गया हो।

ऐसे राममोहन के साथ उस जंगली लड़की करुणा का व्याह किस प्रकार हुआ, यह एक विचित्र पहेली है। करुणा फ़ैशन के पालने में पली हुई न थी। फ़ैशन की बात तक कौन कहे, वह अँगरेज़ी का एक शब्द भी न जानती थी। लोगों की समझ में यह न आया कि ऐसा फ़ैशनेबिल जेण्टिलमैन राममोहन इस भोली-भाली नासमझ लड़की के साथ व्याह करने को कैसे सहमत हुआ। किन्तु कारण यही था कि उसमें एक ऐसा गुण या दोष था जो दूसरे फ़ैशनवालों में नहीं दिखाई देता है। वह अपने माता-पिता का आदर करता था और उनकी आज्ञा उसके सिर-आँखों पर रहती थी। करुणा के पिता रामनाथ के बचपन के मित्र थे और अब भी उनमें दाँतकाटी रोटी थी। फ़ैशन की चाहे कितनी भी त्रुटियाँ करुणा में हों, किन्तु वह देखने में अवश्य सुन्दर थी। अतः जब करुणा से व्याह करने के लिए उसके माता-पिता ने राममोहन को बाध्य किया तब उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा। उसने अपने व्यक्तित्व को अपने मा-बाप की इच्छा की पूर्ति करने में डुबो दिया।

किन्तु जब करुणा पति के घर आई तब सारे संसार की लज्जा में लिपटी हुई आई। यह राममोहन के फ़ैशन के विरुद्ध था। जब राममोहन हवा खाने के लिए बाहर निकलता तब उससे बातचीत करने के लिए कितनी ही युवतियाँ आ जाती थीं। लज्जा तो उनसे कोसों दूर रहती थी। रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने, कलाइयों में घड़ियाँ बाँधे, जूते पहने, जब वे उसके पास आ जातीं तब वह उमंग की लहरों में बैठकर आनन्द-सागर में खेला करता था। जब वे खिल-खिलाकर हँसतीं तब उसके मन की गुड़िया मानो फहरा उठती थी। यह तो घर के बाहर की बात थी। किन्तु जब घर आता, वह करुणा को कहीं कोने में छिपी हुई पाता, संकोच और व्रीड़ा का पहाड़ सिर पर उठाते हुए। राममोहन का जी मानो ऊब उठता। उसे क्या मालूम था कि प्रेम-सूर्य के स्पर्श से ही स्त्री का हृदय-कमल खिल उठता है।

जैसे-तैसे एक सप्ताह बीत गया। करुणा मानो राममोहन से भय खाती थी। उसने पति के पास जाने की हिम्मत तक न की। पति के रहते उसके कमरे में भी वह घुसने न पाती। जब राममोहन बाहर निकलता तब वह उसके कमरे में कभी-कभी जाती, वह भी दबी बिल्ली की चाल से। वहाँ की चीज़ों को वह देखा करती थी, किन्तु उन्हें छूने का उसका साहस थोड़ा ही था। यहाँ तक कि पति को आँख उठाकर देखने का भी वह साहस न करती थी। जब पति घर आता तब पत्नी कहीं लुप्त-सी हो जाती थी। राममोहन को यह एक बड़ा ही विकट प्रश्न मालूम होता था, और उसे इस उलझन से सुलझने का कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता था। पति और पत्नी अलग-अलग कमरे में सोया करते। राममोहन की मा करुणा को कभी-कभी समझाया करती कि बेटी, जाओ, उसके कमरे में जाओ। किन्तु लज्जा ने मानो उसके पाँव में बेड़ी पहना रक्खी हो। जाने की इच्छा रखने पर भी वह न जा सकी। वह फ़ैशन भी नहीं जानती थी। और यह फ़ैशन तो पति और पत्नी के बीच क़िला-सा खड़ा था। जब तक यह क़िला भग्न होकर नहीं गिर पड़ता, पति-पत्नी का मिलना भी दूभर था।

(३)

राममोहन को रुपये-पैसे की बिलकुल कमी न थी। उसके पिता शहर के सबसे बड़े धनी थे। जब उसने एम० ए० की डिग्री प्राप्त की तब उसको यह चिन्ता हुई कि अब क्या किया जाय। चुप रहने, लल्लो-चप्पों की बातें करने या गप-शप करने की उसकी आदत न थी। इतना पढ़ा-लिखा होकर घर का रुपया उड़ाते रहना उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने यह भी सोचा कि बिना किसी काम-काज के यदि घर में चुपचाप बैठा रहूँगा तो लोगों की आँखों में गिर जाऊँगा। समाज-सेवा के कार्यों में उसका मन बहुत लगता था। किन्तु समाज की सेवा करना तो त्यागी बनना है। तब फ़ैशन से हाथ धोना पड़ेगा ही। और यही तो उसे पसन्द न था। उसने अपने मन में कहा, यदि किसी कालेज में लेक्चरर बन जाऊँ तो पाँचों घी में हो जायँ। उसमें देश-सेवा की भी गुंजाइश है, साथ ही टेनिस खेलने की, फ़ैशन से रहने की भी। तब तो उसने अँगरेज़ी के अखबारों के वाण्टेड के कालमों के ढूँढ़ने के काम में मन लगाया। उसका प्रयत्न सफल हुआ। शादी के एक महीने पश्चात् उसे सोलमगढ़ के कालेज में लेक्चरर की जगह मिल गई।

112846
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात की बात में सब तैयारियाँ करके वह जाने को प्रस्तुत हुआ। करुणा को वह अपने साथ न ले जा सका। फ़ैशन का काँटा उसके मार्ग में कंटक था। वह उस करुणा को किस प्रकार अपने साथ ले जा सकता था जिसे साड़ी पहनना भी अच्छी तरह न आता था।

(४)

समय का पखेरू पंख मारते-मारते उड़ जाता है, नाक की सीध पर चला जाता है—अनन्त की ओर। वह कभी नहीं रुकता। किसी की आज्ञा नहीं मानता, किसी की विनय नहीं सुनता। राममोहन को सोलमगढ़ गये लगभग एक साल बीत गया। वहाँ भी राममोहन फ़ैशन का नमूना बन गया। विद्यार्थी और शिक्षक सबके सब उसका बड़ा ही आदर करते थे। वह बुद्धिमान् था, वाग्मी था। विद्यार्थियों से मिलता-जुलता था, उन्हें प्यार करता था। वह खेलाड़ी भी पक्का था। फिर दूसरों के दिल पर अपनी धाक क्यों न जमा लेता! कालेज में या बाहर, जहाँ भी हो, यदि कोई उससे कुछ व्याख्यान देने की प्रार्थना करता तो वह खुशी से उसका निमंत्रण स्वीकार करता, और ज़ोरदार व्याख्यान भी देता। किन्तु उसका आदर बढ़ जाने की खास बात यह थी कि वह हाथ खोलकर खर्च करता और दूसरों की आर्थिक सहायता करता। यदि उससे कोई रुपया माँगता तो वह उसे अवश्य देता, कभी-कभी माँगने से अधिक। उसने ग़रीब विद्यार्थियों के लिए दोपहर के वक़्त भोजन देने की व्यवस्था की थी। यदि कोई उससे चन्दा माँगने आता तो जहाँ दूसरे आदमी पाँच देते वह पचास देता। फिर लोग उसका क्यों न आदर करते, उसको क्यों न देवता मानते?

किन्तु घर के कोने में छिपी हुई करुणा उसके हृदय के कोने में भी छिपी रहती थी। कभी-कभी वह सोचता—करुणा का क्या दोष है कि वह अपढ़ है, दोष तो उसके मा-बाप का है। उस बेचारी का क्या दोष है कि वह भोली-भाली है? और भोली-भाली होना क्या एक गुण नहीं है? वह बड़ी लज्जाशील है, किन्तु नवयौवनायें सबकी सब ऐसी ही होती हैं। विवाह के बाद उससे दिल खोलकर बातचीत करने का भी मुझे अवसर नहीं मिला। इसमें करुणा का क्या दोष है? दोष तो मेरा ही है कि मैं बिना कुछ सोचे-विचारे घर से झटपट निकल पड़ा।

इस प्रकार बात की बात में उसकी चिन्तायें पलटा खाती रहती थीं। वह सोचने लगता—अपढ़ होना ज़रूर एक कमी है। जो निरी अपढ़ हो वह कैसे सहृदया हो सकती है? सहृदया न हो तो हमारी ज़िन्दगी में क्या आनन्द है? केवल एक मांसपिंड को क़ीमती कपड़े ओढ़ाकर अपने साथ ले चलना मैं अच्छा नहीं समझता। जब माँ की चिट्ठियाँ आतीं कि बेटा, तुम एक बार घर आ जाओ, बहू को भी साथ ले जाओ। तुम नहीं जानते कि वह कैसी लक्ष्मी है, इत्यादि-इत्यादि, तब राममोहन के मन में पारावार-सा उमड़ पड़ता—उसका हृदय पीड़ा से भर आता। वह क्या करे, क्या न करे। उसकी सारी प्रसन्नता मिट जाती। यदि सोलमगढ़ के लोग जान लें कि उसकी स्त्री ऐसी है तो वे उसकी हँसी उड़ायेंगे। यह आदर तब अनादर में परिणत हो जायगा। लोग उसको घूरने लगेंगे। ऐसी गिरी-हुई अवस्था के बारे में सोचना भी उसे मानो पहाड़ मालूम पड़ता था। और सोलमगढ़ के किसी आदमी से यह कहने की उसकी हिम्मत न हुई कि मैं विवाहित हूँ। लोग समझते थे कि राममोहन अविवाहित है। अतः वह घर न जाना चाहता था। उसे इस बात का भय था कि घर जाऊँगा तो करुणा को साथ ले आने की मा-बाप की आज्ञा हो जायगी। ऐसे संकट से बच जाने का यही एक उपाय है कि घर न जाऊँ। उसने कोई न कोई चाल निकाल ली और गर्मी की छुट्टियों में भी वह घर न गया। सोलमगढ़ में रहकर और इधर-उधर दावतें खा-खाकर उसने तीन महीने बिता दिये।

(५)

मनुष्य का मन एक विचित्र वस्तु है। जब तक हम बड़े संयमी न बन जायँ, तपस्वी न बन जायँ, हमारे मन का ठिकाने से रहना असाध्य नहीं तो कठिन अवश्य है और जब तक हमारा हृदय स्थिर न हो, वह किसी न किसी ओर खींचा जाता है, उसका किसी न किसी जगह झुकाव हो जाता है। दुनिया यदि निर्जीव होती तो मनुष्य का यहाँ रहना मुश्किल हो जाता। किन्तु जब ईश्वर ने दुनिया की सृष्टि की है, उसे सौन्दर्य का स्वर्ग बनाया है, मनुष्य को इस स्वर्ग का राजा बना दिया है। और मनुष्य का मन उस सौंदर्य का रस चूस लेना अपना अधिकार समझता है। उसको सब कहीं प्रेम की झलक दिखाई पड़ती है। वह सौन्दर्य चाहे नश्वर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अनश्वर, वह प्रेम चाहे नित्य हो या अनित्य, मानव का मन उस सौंदर्य के कारण कोमल हो जाता है और वहाँ उस सौंदर्य के प्रति प्रेम का आविर्भाव होता है। और यदि उसका मन किसी ओर बंद हो जाता है तो दूसरी ओर उसके किवाड़ खुल जाते हैं। राममोहन के मन की भी ठीक ऐसी हालत हुई। राममोहन को घर से विदा हुए अब डेढ़ वर्ष हो गया था। अब करुणा की स्मृति भी उसके मन से धीरे-धीरे मिटती जा रही थी। उसका हृदय तो करुणा की ओर से बिलकुल बन्द हो रहा था और दूसरी ओर उसके मन के किवाड़ खुलने लगे और उसके मन पर प्रकाश फैलने लगा। स्नेह से—प्रेम से—उसका अंतःस्थल चिकना बनने लगा।

राममोहन की बुद्धि तीव्र थी। वह हंस की गति पकड़े हुए थी। पानी से दूध को निकालना उसके लिए सरल काम था। लेक्चरर बन जाने के केवल एक ही महीने के पश्चात् उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि अपने छात्रों में कौन-कौन होनहार हैं और कौन-कौन निकम्मे। कालेज में लड़के पढ़ते थे, लड़कियाँ भी। कालेजों की ऐसी रीति है कि पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने की जितनी चाह विद्यार्थिनियों में होती है उतनी विद्यार्थियों में नहीं होती। विद्यार्थियों का तो यही ढंग है कि दो-चार वर्ष कालेज में बिताते हैं वही उनके जीवन का अवकाश-काल होता है। हवा बाँधने और धुएँ के बादल उड़ाने का उनके लिए वही अवसर होता है। पुस्तक के कीड़े बनकर और सारे आनंद की बरबादी कर वे ऐसे सौभाग्य के अवसर से क्यों हाथ धो बैठें? रहीं विद्यार्थिनियाँ सो वे तो रटने में तोतों को जरूर पीछा दिखा देती हैं। पुस्तकों से लड़ पड़ती हैं और पुस्तकों पर अवश्य विजय पा लेती हैं। राममोहन यह अच्छी तरह जानता था कि उसको अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए इन्टरमीडियट क्लास काफ़ी न था। उसके व्याख्यान का वे ही निचोड़ निकाल सकते थे जो चिंता के सागर में बार-बार गोते लगाते हों। उसको अनुभवी आदमियों की ज़रूरत थी। वे उसे बी० ए० क्लास में मिल गये। बी० ए० में साधारणतः दो तरह के छात्र पढ़ते हैं। एक तो प्रथम श्रेणी में, या दूसरी श्रेणी में पास होकर सीधे इन्टरमीडियट क्लास से बी० ए० क्लास में जाकर बैठे हों; दूसरे वे जो मार्च से सितम्बर और सितम्बर से मार्च तक कई बार मार्च करके अनुभवी बनकर आये हों। गंगा के प्रवाह के समान यद्यपि राममोहन बातों की झड़ी लगा देता, तो भी बी० ए० के अनुभवी छात्र उसका पीछा कर सकते थे। बीच-बीच में एक-आध दिल्लगी भी कर देता तो वे जोर लगाकर हँसने को तैयार बैठे थे, दिल्लगियों का वे अच्छी तरह मजा चख सकते थे। अतः राममोहन को बी० ए० क्लास अधिक प्रिय था। और बी० ए० कक्षा की विद्यार्थिनियों से उसे सबसे अधिक प्रेम था। कारण यह था कि वे उसके सबके सब व्याख्यानों को कान लगाकर सुनतीं और जहाँ-तहाँ नोट भी लिखा करतीं। जब कोई हँसी की बात कही जाती तो वे खिल-खिलाकर हँस पड़तीं, और इस प्रकार वे जोर से व्याख्यान देने की उसमें नई स्फूर्ति पैदा कर देतीं।

पहले-पहल व्याख्यान देते वक्त राममोहन लड़कियों की ओर नहीं देखा करता था, कदाचित् भय से, कदाचित् संकोच से। किन्तु जब परिचय बढ़ गया, वह उनकी ओर भी देखता और देखने का उसके दिल पर असर भी पड़ता। वे तो मानो उसे करुणा की याद दिला देतीं और उसके मन को पीड़ा पहुँचातीं।

राममोहन के लेक्चरर बन जाने के क़रीब डेढ़ महीने के बाद एक दिन बी० ए० की जूनियर कक्षा में उसने बर्नार्ड शा के बारे में एक व्याख्यान दिया। शा के 'सन्ट जो आन' नाटक के पढ़ाने का वह पहला दिन था। व्याख्यान के बीच में वह जो आन के बारे में कुछ कहने लगा। तुलनात्मक साहित्य की दृष्टि से उसने पद्मिनी आदि राजपूत वनिताओं की भी श्रोताओं को याद दिला दी। जब उसने पद्मिनी का नाम लिया तब उसने देखा कि कहीं-कहीं मुस्कुराहट हो रही है। जब उसने दुबारा वह नाम लिया तब विद्यार्थी-विद्यार्थिनियाँ सबके सब जोर से हँस पड़े। उसने देखा कि सब लोगों की एक ही ओर निगाह है। अब तक उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा किसी के प्रति न थी। किन्तु आज उसने भी उसी ओर देखा जिधर सब लोग देख रहे थे। थोड़ी दूर पर, भीत के निकट, बेंच पर एक सोलह-सत्रह वर्ष की एक लड़की बैठी थी, जिसका सिर झुका हुआ था, लज्जा से मुख रक्तवर्ण हो गया था और जो चुपचाप पुस्तक की ओर ताक रही थी। उसे देखते ही राममोहन के दिल में ऐसा विकार उत्पन्न हुआ जिसका अनुभव उसने पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी नहीं किया था। उस विकार को दबाने का उसने भरसक प्रयत्न किया। किन्तु वह दबा न सका। उसने क्यों उसे दबाने का परिश्रम किया, यह उसने सोचा भी नहीं। झट उसके हृदय में एक कौतूहल, एक जिज्ञासा पैदा हुई कि उसका नाम अगर मैं पूछूँ। पूछा भी। वह धीरे से खड़ी हो गई और ऐसे ढंग से खड़ी हो गई, मानो सूली पर चढ़ रही हो। मुँह से क्षीण स्वर में इतना ही निकल सका—"पद्मिनी देवी।" हँसी से हाल गूँज उठा। केवल पूछनेवाला और जवाब देनेवाली दोनों अभिमुख खड़े थे। चारों आँखें एक हुई, दो आँखें सकरुण हो गई, दो आँखें क्षमा की प्रार्थना करने लगीं।

उस घटना को एक सप्ताह बीत गया। उसी बीच अँगरेज़ी-विभाग के एक प्रोफ़ेसर रोग-शय्या पर पड़ गये। यद्यपि राममोहन का विद्यार्थियों को शिक्षा देने का पहले कोई अभ्यास न था, तो भी थोड़े दिनों में अपने भाषण के महत्त्व से, अपने सद्व्यवहार से अपने छात्रों और शिक्षकों पर उसने अपना सिक्का जमा लिया था। प्रिन्सपल साहब भी उससे बड़े खुश थे। उन प्रोफ़ेसर की अनुपस्थिति में राममोहन को उनकी जगह नियुक्त कर दिया। अब राममोहन को बी० ए० की ऊपरी कक्षा में पढ़ाना पड़ता, और पद्मिनी के क्लास में जाने की आवश्यकता न थी।

करुणा की याद से राममोहन को अपना दिल आठों पहर भारी मालूम पड़ता था। किन्तु कई दिन बीतने पर भी पद्मिनीवाली कक्षा की स्मृति उसके मन में बनी रही। उस दिन उसके हृदय में जो उथल-पुथल मच गई थी उसे भी वह दूर न कर सका। जब वह कालेज में चलता, नीची निगाह से चलता जिससे पद्मिनी के दर्शन न हो जायँ और वही विकार फिर न जाग उठे। किन्तु कितनी ही सावधानी से वह चलता, पद्मिनी कहीं न कहीं मिल ही जाती। फिर उसके हृदय में वही विकार, वही अनुभव होता जो पहले हुआ था, और सौगुना होकर। राममोहन उसे भूलने का प्रयत्न करता, पर सब व्यर्थ जाता। पद्मिनी कौन है, यह सवाल उसके हृदय में कभी-कभी उठता रहता। मगर किसी से पूछने का उसे साहस न होता। करुणा की जंजीर उसके मन पर पड़ी हुई थी।

दूसरे साल फिर पद्मिनी को पढ़ाने का उसे दुर्भाग्य सीनियर क्लास में हुआ। जब पिछले साल कालेज बंद हो गया तब उसने सोचा कि छुट्टियों के सैर-सपाटे से दिल का बहलाव हो जायगा, पद्मिनी को भूल जाऊँगा और करुणा की ओर हृदय साफ़ हो जायगा। किन्तु मन नहीं बहला, पद्मिनी नहीं भूली और करुणा मन से धीरे-धीरे दूर होने लगी। आख़िर विधाता ने फिर राममोहन को घसीटकर पद्मिनी के आगे ले जाकर खड़ा कर दिया। अब की बार बच जाने का कोई मार्ग न दिखाई पड़ा। वह सोचने लगा—नौकरी छोड़कर चला जाऊँ? कहाँ? घर में। यह तो मानो नरक में जाना होगा। और नौकरी भी कैसे छोड़ सकूँगा जब प्रिन्सिपल साहब से इतनी घनी मित्रता है, छात्रों से इतना बड़ा प्यार है, लोगों से इतना बड़ा मेल-मिलाप है। उसे कोई मार्ग न दिखाई पड़ा।

जब पद्मिनी की कक्षा में राममोहन जाता, वह मन को कुछ कड़ा कर लेता। क्लास में जाने के पहले वह हृदय में दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेता कि मैं पद्मिनी की ओर एक बार भी न देखूँगा। दस-पाँच मिनिट तक वह अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न करता। किन्तु उसके बाद उसका मन बे-क़ाबू हो जाता और आँखें पद्मिनी की ओर दौड़ जातीं और कभी-कभी उसके कोमल मुख-कमल पर एक-आध निमेष तक जमी रह जातीं। व्याख्यान देते-देते वह कभी-कभी रुक भी जाता। मगर पद्मिनी क्या यह सब जानती थी? कदाचित् जानती थी, कदाचित् नहीं।

पद्मिनी के पिता डिप्टी कलक्टर थे। उनके चार सन्तानें थीं—पद्मिनी और उसके तीन छोटे भाई। पद्मिनी किसी क्लास में अब तक फ़ेल नहीं हुई थी। अँगरेज़ी को छोड़ बाक़ी सब विषयों में वह क्लास में किसी से पीछे न थी। किन्तु अँगरेज़ी में वह इतनी कमज़ोर थी कि उस विषय में पास होना भी उसे मुश्किल जान पड़ता था। इन्टरमीडियट में पढ़ते समय अँगरेज़ी के लिए उसे ट्यूटर रखना पड़ा था। अतः वह फ़ेल न हुई, उलटा प्रथम श्रेणी में पास हो गई। छुट्टियों के तीन पूरे महीने वह घर में रहकर अँगरेज़ी की पुस्तकें पढ़ती रही। बी० ए० की पहली परीक्षा में वह सब विषयों में उत्तीर्ण हुई। किन्तु अँगरेज़ी में बुरी तरह फ़ेल हो गई। तब तो फिर ट्यूटर की आवश्यकता आ पड़ी। पद्मिनी के पिता ने प्रिन्सिपल साहब से इस बात की सलाह की कि ट्यूशन के लिए कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति ठीक हैं। प्रिन्सिपल ने राममोहन का नाम बता दिया। राममोहन से प्रार्थना की गई। इससे उसे खुशी हुई या दुःख, यह कोई नहीं जान सकता था। वह इनकार नहीं कर सका, उसने चुपचाप हामी भर ली।

राममोहन दृढ़ता का जो क़िला बनाया करता था, अब वह भी चूर-चूर होकर गिर गया। उसका आख़िरी सहारा भी उसके हाथ से छीन लिया गया। जहाँ से वह भाग निकलना चाहता था, वहाँ से भाग निकलना अब आसान न था।

ट्यूशन शुरू हो गया। राममोहन तो इतना अंधा प्रेमी न था कि वह एक व्यक्ति की उन्नति के रास्ते में काँटे बो दे। उसने अपने मन के प्रेम को अपने मन में ही रक्खा। किन्तु क्या पद्मिनी इतनी भोली-भाली थी कि वह उसके मन की बात न ताड़ ले। जब शेक्सपियर के 'दि मिड् समर नाइटस् ड्रीम' में इस अर्थ की पंक्ति आ जाती कि प्रेम का स्रोत निर्बाध नहीं बह सकता, तब भावमयी दृष्टि से वह राममोहन की ओर देखने लगती। राममोहन के हृदय में यह मानो तीर-सा लग जाता। कभी-कभी 'डे्डमोना' से सहानुभूति प्रकट करती हुई जब वह कहती कि अपनी ब्याही स्त्री को मार डालनेवाला मनुष्य नहीं मनुष्याधम है, तब राममोहन की आँखों में मानो अँधेरा छा जाता। उसका हृदय वेदना की आग में जलकर अंगारा बन जाता।

(६)

राममोहन के सोलगढ़ जाने के बाद करुणा भी धीरे-धीरे बड़े घर की बेटी बन गई। पति जब दूर चले गये तब पत्नी की लज्जा भी न जाने कहाँ उड़ गई। वह घर में बैठकर अँगरेजी भी पढ़ने लगी। पढ़ाने के लिए एक ट्यूटर रख लिया। तीन-चार महीने बीत गये। किन्तु जब मा के बार-बार चिट्ठियाँ भेजने पर भी बेटा घर नहीं आया तब बहू का हृदय दुखने लगा। आख़िर जब गर्मी की छुट्टियों में भी वे घर नहीं आये तब वह समझ गई कि अवश्य दाल में कुछ काला है। अँगरेजी पढ़ने में अब उसका दिल ऐसा न लगता जैसा पहले लगता था। मा के समझाने-बुझाने पर भी उसके मन को शान्ति न मिलती। दिन बीतते बीतते उसका हृदय क्षीण होता जाता था। हृदय की थकावट धीरे-धीरे शरीर में भी फैलने लगी। उसकी सारी प्रसन्नता जाती रही। गुलाब-सा चेहरा पीला पड़ गया। आँखों की ज्योति फीकी पड़ने लगी। शरीर दुबला हो गया। दवा खाते-खाते उसकी नाक में दम हो आया, किन्तु कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वह रोगशय्या पर पड़ गई। तब रामनाथ ने लड़के को लिखा कि बेटा, आ जाओ, करुणा की तबीअत बिगड़ गई है। उत्तर मिला कि पिता जी, यहाँ परीक्षा हो रही है। मुझे छुट्टी नहीं है। अभी नहीं आ सकता। करुणा का स्वास्थ्य बिगड़ जाने की उसे पहले खबर नहीं दी गई थी। अतः राममोहन ने समझा कि रोग का बहाना है और पिता जी ने घर बुलाने के लिए चाल चली है। जब उसकी चिट्ठी आई तब वहाँ की अवस्था शोचनीय थी। पत्र पढ़ते ही मा-बाप के मुख म्लान पड़ गये। उनकी सूरत को देखकर करुणा ताड़ गई कि अब की बार भी वे न आयेंगे। उसने माता जी से पूछा कि मा, क्या वे आयेंगे? माता हिचकती हुई धीरे-धीरे बोली कि बेटी वह ज़रूर आयगा। करुणा ने कहा—नहीं मा, वे नहीं आयेंगे।

(७)

परीक्षा समाप्त हो गई। गुरु और शिष्या का विदा होने का समय आया। राममोहन की आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं। पद्मिनी की आँखें भी भर आईं। राममोहन कुछ बोलना चाहता था। किन्तु उसका गला भर आया और वह कुछ न बोल सका। 'गुडबाई' कहकर वह जाने को ही था कि पोस्टमैन ने आकर उसके हाथ में एक तार दिया। तार का सारांश यह था कि करुणा को ज्वर है और आशंकाजनक है। कागज उसके हाथ से छूट पड़ा। पद्मिनी ने उसे लेकर पढ़ा और पूछा—यह करुणा कौन है? आपकी बहन? पद्मिनी ने राममोहन की ओर देखा और राममोहन ने आसमान की ओर। पद्मिनी एकदम चौंक पड़ी और राममोहन ने चलते-चलते उसे आख़िरी वक़्त देखा। अब भी चार आँखें हुई जैसे पहले-पहल कालेज में हुई थीं। किन्तु दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर था।

(८)

ट्रेन में चार दिन की यात्रा करके जब राममोहन घर आया, उसने उस करुणा की मूर्ति को मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए देखा। वह अपनी आख़िरी साँसें ले रही थी। उसने धीरे से आख़िरी बार अपनी आँखें खोलीं और फिर सदा के लिए बन्द कर लीं। क्या तब भी उसके मुँह पर लज्जा की मुस्कुराहट फैली हुई थी?

राममोहन ने करुणा को भर आँखें देखा और सिर उठाया। जब पीछे फिरकर उसने देखा तो पोस्टमैन ने उसके हाथ में एक तार दिया। उसमें अँगरेज़ी में लिखा था—

बेटी पद्मिनी का ब्याह—एप्रिल दसवीं तारीख दोपहर—आशा है पहले ही आयेंगे।

तार हाथ से छूटकर करुणा की लाश पर गिर पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कवीन्द्र की अमर स्मृतियाँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

रवीन्द्रनाथ केवल सात ही आठ वर्ष के थे तभी से कविता करने लगे थे। कविता करने का श्रीगणेश विचित्र ढंग से हुआ। उन्होंने स्वयं ही लिखा है--"ज्योतिःप्रकाश नामक हमारे एक भांजे थे, अवस्था में वे मुझसे कुछ बड़े थे। एक दिन मुझे अपने घर ले गये। वहाँ मुझे एकान्त में पाकर उन्होंने कहा--'तुम्हें कविता लिखनी होगी।' कविता किसे कहते हैं, यह अभी तक मैंने पुस्तकों में पढ़ा था। मुझे इस बात की कल्पना करने तक का साहस न था कि कविता अपने आप प्रयत्न करने से लिखी जा सकती है। उनके आग्रह करने पर मैंने कुछ शब्दों को जोड़कर थोड़ी-सी पंक्तियाँ लिखीं। बाद में मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे टूटी-फूटी पंक्तियाँ लोगों को बहुत पसन्द आईं। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा भय भी जाता रहा। मैंने तुरन्त नीले कागज़ की एक बड़ी कापी बनवाई और मैं उस पर लाइनें खींचकर बड़े-बड़े अक्षरों में कविता लिखने लगा।"

× × ×

स्कूल के एक अध्यापक रवीन्द्रनाथ के साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार करते थे। यदि रवीन्द्र अपना पाठ न सुना पाते तो वे उन्हें बेंच पर खड़ा कर देते थे। कभी-कभी तो धूप में जलती ज़मीन पर नंगे पैर घंटों खड़ा होना पड़ता था। स्कूल का यह शासन और बन्धन टैगोर को बिलकुल पसन्द न आया अतएव उन्होंने ऐसी पाठशालाओं में पढ़ना त्याग दिया और एक आदर्श पाठशाला खोलने का निश्चय किया। जिसके फलस्वरूप हम आज 'विश्वभारती' देखते हैं।

× × ×

रवीन्द्र को अँगरेज़ी चाल-ढाल अधिक प्रिय न थी। विलायत में भी वे बहुधा देशी पोशाक पहनते थे, जिसे देखकर लोग उनकी हँसी उड़ाया करते थे। कवि ने स्वयं लिखा है। हमारे देशी कपड़ों को देखकर मार्ग में लोग हँसने लगते थे। किसी-किसी को तो इतना आश्चर्य होता था कि वह हँसता-हँसता लोट-पोट हो जाता था और बहुत-से लोग मेरी पोशाक देखने में इतने मग्न हो जाते थे कि गाड़ी के नीचे दबने से कठिनता से बचते। स्कूल के कोई-कोई लड़के तो मेरे सामने ही कहते थे, "अरे जैक् ब्लैकी को तो देखो!" किन्तु मुझे इसमें तनिक भी लज्जा न मालूम पड़ती थी।

"एक शीत-काल की रात्रि को मैंने देखा कि मार्ग में किनारे पर एक व्यक्ति खड़ा है। फटे जूतों के भीतर से उसकी अँगुलियाँ दिखाई देती हैं। पैरों में मोज़े न थे। वक्षस्थल भी खुला हुआ था। भीख माँगने के विरुद्ध नियम होने के कारण वह मुझसे पैसा माँगने का साहस न करता था। किन्तु एक क्षण वह मेरी ओर बड़ी करुणा-दृष्टि से देखता रहा। मैंने उसके हाथ पर एक गिन्नी रख दी और चल दिया। जब मैं कुछ दूर निकल गया तब क्या देखता हूँ कि वह मेरे पीछे भागता चला आ रहा है। उसने मेरे पास आकर कहा--'महाशय आपने भूलकर मुझे एक गिन्नी दे दी है।' वह गिन्नी वापस करने लगा। मैंने उसे रोकते हुए कहा--'इसे आप ही रख लीजिए।'"

× × ×

नोबेल-पुरस्कार मिलने पर टैगोर की इतनी ख्याति बढ़ी कि वे उससे घबरा उठे। जब खुशी से पागल एक डाकिया ने इस सुखद समाचार का तार टैगोर को दिया तब उनकी मुख-मुद्रा सहसा गम्भीर हो गई और डाकिया ने उनके मुख से ये शब्द धीरे से निकलते सुने--"अरे! इसने तो मेरी शान्ति हर ली।"

× × ×

जब टैगोर नोबेल-पुरस्कार लेने के लिए विदेश गये तब वे कोपेनहैगेन स्टेशन पर उतरे। वे कहते हैं--"प्लेटफ़ार्म पर बड़ी भीड़ थी। मैंने समझा कि शायद कोई बहुत बड़ा व्यक्ति गाड़ी से आ रहा है, जिसके स्वागत के लिए ये सब आये थे। किन्तु क्या आप बता सकते हैं कि ये किसकी प्रतीक्षा कर रहे थे? यह सब मेरे लिए ही आये थे और मैं चुपके-से खिसककर एक किनारे जा बैठा था।"

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टैगोर इस घटना को कभी नहीं भूले और बहुधा इसको कहा करते थे। एक बार फ़्रांस में उनसे एक सैनिक मिलने आया। उसने बहुत प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक होकर उनसे कहा--"जैसे ही मैंने अपने कप्तान से कहा कि मैं आपसे मिलने जाना चाहता हूँ, उन्होंने तुरन्त ही मुझे जाने की आज्ञा दे दी। मुझे आपसे मिलना अति आवश्यक था ताकि मैं आपसे यह बता सकूँ कि आपकी कविता ने मेरे जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है और सहायता दी है।"

टैगोर कहा करते थे कि "मेरे लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा सम्मान नहीं हो सकता था।"

कवीन्द्र की 'साधना' का जर्मन-अनुवाद बड़ी शीघ्रता से बिका था। उसकी पचास हज़ार प्रतियाँ तीन सप्ताह के भीतर ही बिक गई थीं।

× × ×

एक उच्च भारतीय अफ़सर ने एक बार डाक्टर टैगोर के चित्र को लन्दन की एक प्रसिद्ध चित्रशाला में देखकर चित्रकार से कहा--"अच्छा! आप हमारे कवीन्द्र को जानते हैं!"

"जी नहीं।" चित्रकार ने उत्तर दिया--"मैं कविता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता, किन्तु हाँ, यह मुखाकृति बड़ी विशाल और भावोत्पादक है।"

× × ×

योरप में लोग उन्हें डाक्टर टैगोर कहते थे। भारतवासी उन्हें रवि बाबू अथवा कवीन्द्र रवीन्द्र कहकर सम्बोधित करते थे, किन्तु चीनवालों ने उनका एक नया नामकरण किया था। वे उन्हें "चू-चेन-तन" कहते थे, जिसका अर्थ है 'विद्युत्ता समान शक्तिशाली भारत का सूर्य'।

× × ×

टैगोर अपनी कविता की प्रथम पंक्ति के बनाने में बड़ा परिश्रम करते थे, तत्पश्चात् शेष पंक्तियाँ अविरोध प्रवाहित हो चलती थीं। उनका कविता लिखने का कोई विशेष समय न था। जभी तरंग आती, कविता लिखने लगते थे। किन्तु वर्षाकाल उनके अधिक अनुकूल पड़ता था। उनका हस्तलेख बड़ा सुन्दर होता था, अक्षर स्पष्ट और अच्छे आकार के होते थे। एक बार लिखकर फिर उसे वे काटते न थे। यदि काटना अति आवश्यक होता तो वे धीरे से एक धीमी रेखा शब्द या वाक्य पर खींच देते थे।

× × ×

एक दिन एक सज्जन ने डाक्टर टैगोर से उनकी काव्य-शक्ति और प्रतिभा के विषय में प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर देते हुए कहा--"भाई, मैं इतने अधिक दिन से कविता लिख रहा हूँ कि अब तो लेखनी मेरी आज्ञाकारिणी हो गई है। अतएव उमंग आने की बात ही नहीं। जब लेखनी उठाई लिखने लगा।" फिर कुछ रुककर मुस्कराते हुए टैगोर ने पूछा--"किन्तु यह तो बताइए कि मेरे ट्रेड सीक्रेट्स (व्यापार-संबंधी गुप्त बातें) जानने का आपको क्या अधिकार है?"

× × ×

विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
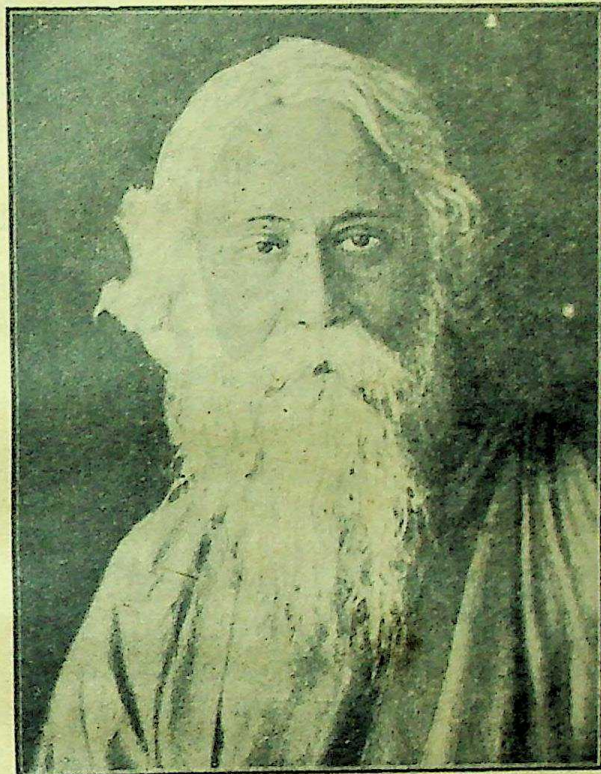
एक अध्यापक ने टैगोर से उनकी ही एक कविता का अर्थ पूछा। कवि ने लिख भेजा, "जिस तरंग में आकर मैंने यह कविता लिखी थी वह कब की समाप्त हो चुकी। अब मैं यह बतलाने में असमर्थ हूँ कि लिखते समय मेरा इन पंक्तियों से क्या अभिप्राय था। अब तो मैं इनका उसी प्रकार अर्थ लगा सकता हूँ जैसा कि आप अथवा कोई अन्य। मैं जानना चाहता हूँ कि लोग मेरी कविता का क्या अर्थ लगाते हैं!"

× × ×

मृत्यु ने टैगोर के सम्मुख अपना नग्न-नृत्य दिखाया। उनकी चिरसंगिनी मृत्युसंगिनी बनी, तत्पश्चात् उनकी एक पुत्री भी स्वर्ग सिधारी और फिर उनके पुत्र ने भी बिदा ली। इस समय टैगोर चालीस वर्ष के थे। ऐसी आयु में टैगोर अपने कुटुम्बियों के निकट ही रहना चाहते थे किन्तु उनपर बिछोह पर बिछोह की मार पड़ी। वे व्याकुल हो उठे। किन्तु उन्होंने शान्ति न छोड़ी और किसी भारी परिवर्तन की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने इस समय के सम्बन्ध में लिखा है—

"यह मृत्युकाल मेरे लाभ के लिए था। मैं दिन-रात इसके विषय में सोचता था और मुझे किसी त्रुटि के पूर्ण होने का—एक विशेष प्रकार की पूर्णता का—अनुभव होने लगा। मुझे विश्वास हुआ कि हम संसार में जिन वस्तुओं को नष्ट होते देखते हैं वे वास्तव में नष्ट नहीं होतीं, संसार का एक कण भी नष्ट नहीं होता... अब मैं जान गया मृत्यु क्या है?...यह सम्पूर्णता थी—किसी वस्तु की कमी नहीं।"

× × ×

पंजाब में मार्शल-ला के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर टैगोर ने अपनी सर की उपाधि और नाइट हुड के तमगे लौटालते हुए लिख भेजा था—"जो सरकार मेरे देश-वासियों पर ऐसे अत्याचार करे, उसके सम्मानों से मैं अपने को विभूषित नहीं करना चाहता।"

× × ×

टैगोर प्रमाण-पत्र देने में बड़े उदार थे। जिस किसी ने कोई नमूना भेजा और प्रमाण-पत्र की याचना की कि वे उसे तुरन्त पत्र लिखकर भेज देते थे। उनके प्राइवेट सिक्रेटरी ने एक दिन उनसे कहा—"गुरुदेव, यदि आप इस उदारता से प्रमाण-पत्र वितरित कीजिएगा तो संसार में कोई वस्तु सम्भवतः न बचेगी जिसे आपका प्रमाण-पत्र न मिले।"

टैगोर ने इसे शान्तिपूर्वक सुन लिया और वे बोले—"यह नितान्त असत्य है। संसार में एक ऐसी भी वस्तु है जिसे मैं कभी भी प्रमाण-पत्र न दूँगा।"

सिक्रेटरी बड़ा उत्सुक हो गया और विनम्र होकर पूछने लगा—"वह कौन-सी वस्तु है?"

आवेगरहित बनकर टैगोर ने अपनी विशाल डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"रेज़र ब्लेड्स्।"

गीत

श्रीयुत "प्रणयी"

मानव-मानव में अन्तर है।

स्वप्न-लोक से बाहर जग में,
उमड़ न सकते राग हमारे।
स्वप्नों की शय्या पर सोये,
युग-युग से तप-त्याग हमारे।
स्वप्नों से उलझे जीवन को सुलझाना कितना दुस्तर है?
मानव-मानव में अन्तर है।

जग जलता है, हम जलते हैं,
गिरते व्यङ्गों के अङ्गारे।
उर-निदाघ से सूख चली यह,
नयनों की गङ्गा-यमुना रे!
आज अमृत के बदले हालाहल पीना कितना मधुतर है,
मानव-मानव में अन्तर है।

घाव बढ़े जाते हैं, लेकिन,
हो पाता उपचार नहीं है।
रो न सकोगे, रोने का भी,
जीवन में अधिकार नहीं है।
पराधीन जीने से मरना सोचो तो कितना प्रियतर है,
मानव-मानव में अन्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय का प्रोग्राम

श्रीयुत आशाराम अनिल

छः अथवा सात मास पूर्व ऐसे बहुत-से व्यक्ति थे जो इस महायुद्ध से उदासीन थे, बहुत-से युद्ध का विरोध कर जेल भी चले गये। परन्तु आज बहुत कम विचारशील पुरुष ऐसे हैं जो मित्रराष्ट्रों की पराजय चाहते हों। जिस दिन जर्मनी ने बिना किसी कारण सोवियट यूनियन पर आक्रमण किया उस दिन से युद्ध का रूप-रंग ही बदल गया। और जापान ने अमेरिका और ब्रिटेन पर आक्रमण करके तो संसार की आँखें और भी खोल दी हैं। साम्राज्यवाद और साम्राज्य-सत्ता के तो विरोधी संसार में अनेक व्यक्ति हैं, परन्तु चीन और सोवियट यूनियन ने किसी का क्या बिगाड़ा है, और सारे योरपीय देशों की दासता और असमर्थता देख किसको खुशी होगी! अतएव पंडित जवाहरलाल ने भी कहा है कि वे मित्रराष्ट्रों की विजय चाहते हैं, और राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने भी सोवियट सेनाओं और उनके बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जापान और जर्मनी ने अपने कुत्सित कारनामों से सिद्ध कर दिया है कि वे न्याय-प्रिय अथवा स्वतन्त्रता-प्रेमी देश नहीं। सारे योरप और चीन के उदाहरण हमारे सामने हैं। देखते-देखते इन देशों की स्वतन्त्रता हड़प कर ली गई और इन देशों की जनता पर जो अत्याचार किये गये हैं उनको सुनकर तो कौन कठोरहृदय रोमाञ्चित न होगा! यदि भारत को स्वतन्त्र ही होना है तो वह अपनी संगठन-शक्ति, अपने आन्दोलन और अपनी निजी शक्ति से स्वतन्त्र होगा। स्वतन्त्रता दान अथवा दक्षिणा के रूप में नहीं मिलती। इस समय प्रत्येक समझदार व्यक्ति के सामने प्रश्न है कि मित्रराष्ट्र किस प्रकार विजयी हों।

युद्ध के समय में उदासीनता मृत्यु समतुल्य है—या तो आप युद्ध के विरोध में हों अथवा उसके साथ। परन्तु जो चीन और सोवियट तथा योरपीय राष्ट्रों और उसके साथ ही भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में सोचते हैं और जो प्रगतिशील शक्तियों की विजय चाहते हैं उनको तो मित्रराष्ट्रों की विजय के सम्बन्ध में अवश्य ही चिन्तित होना होगा। उनको समझना होगा कि विजय के लिए किन चीजों की आवश्यकता है और कौन ऐसी शक्तियाँ हैं जो विजय में बाधक हैं। क्योंकि युद्ध के समय में सरकारें शान्ति से सोच-विचार नहीं सकतीं, और न उनके पास इतना समय और सावधानता ही रह जाती है कि प्रत्येक प्रश्न पर ठीक-ठीक विचार कर सकें। ऐसे समय में जनमत, और जनमत के ग्रामोफोन, समाचार-पत्र और पत्रिकायें तथा नेताओं का न केवल यह धर्म है कि वे इन विजय-पराजय के गंभीर प्रश्नों पर विचार कर प्रशस्त मार्ग देश के सामने रखें, वरन उनका धर्म भी यही है।

एक लेखक का कहना है कि विजय सात चीजों पर निर्भर है। मनुष्य-शक्ति, कच्चा माल, उद्योग-धन्धे, व्यापार के लिए जहाज़ और रेल-सामान खरीदने के लिए बाहर के देशों में लगी हुई पूँजी, खाद्य पदार्थ और रुपया। साथ ही जनता में युद्ध के लिए उत्साह भी होना चाहिए।

(१) मित्रराष्ट्रों के पास जनशक्ति की कमी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत केवल भारतवर्ष में लगभग ४० करोड़ की आबादी है। ब्रिटेन में लगभग ४॥ करोड़, अफ्रीका, बर्मा, मिस्र, आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूज़ीलैंड में मिलाकर भी लगभग पाँच करोड़ व्यक्ति रहते होंगे। इस प्रकार यदि मलाया, सीलोन, हाँगकाँग आदि को छोड़ भी दिया जाय, तो भी ब्रिटिश साम्राज्य की जन-संख्या लगभग पचास करोड़ होगी जो जापान, जर्मनी और इटली तथा समस्त योरप की जन-संख्या के बराबर है। चीन के पचास करोड़ निवासी, सोवियट यूनियन की बीस करोड़ जनता और अमेरिका के राज्यों की लगभग बीस करोड़ जनसंख्या मिलाकर कुल डेढ़ अरब के लगभग व्यक्ति मित्रराष्ट्रों के साथ हैं। संसार की शेष जनता, और योरपीय देशों की भी अधिकांश जनता मित्रराष्ट्रों से सहानुभूति रखती है। आज यह तो प्रायः स्पष्ट हो चुका है कि अन्त में मित्रराष्ट्र विजयी होंगे, परन्तु यदि यह युद्ध योंही दो-तीन वर्ष अथवा दस-पाँच वर्ष तक चलता रहा तो अवश्य ही धन और जन की अतुल हानि होगी और विजय-पराजय तथा विजयी और परास्त में भेद विशेष न रह जायगा; क्योंकि दोनों ही पूरी तरह थक जायँगे। सैकड़ों भेड़ों के झुण्ड को वश में करने के लिए एक गड़रिये की आवश्यकता होती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि जर्मनी और जापान ने अपने को गड़रिया बनाकर संसार को हाँकने में सफलता प्राप्त की तो संसार के सामने इससे बड़ा और कौन-सा आपत्ति का पहाड़ टूट सकता है ? इस जन-संख्या को जागृत कर संगठित करना और इस अपार जन-शक्ति को विजय-प्रोग्राम का मोटर बनाना ही नेता और सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है। परन्तु भारत में ही देखने से पता लगता है कि जन-शक्ति का उचित उपयोग नहीं हो रहा है। ब्रिटेन में भी यही दशा है। आज भी बेकारों की बहुत बड़ी संख्या है।

यदि आँकड़े इकट्ठे किये जायँ तो ज्ञात होगा कि संसार के लगभग ९० प्रतिशत कच्चे माल के प्रभु मित्रराष्ट्र हैं। कोयला, लोहा, ताँबा, राँगा, सीसा, शीशा, रबर, कपास आदि सारे ही खनिज पदार्थ और पैदावार बहुतायत से मित्रराष्ट्रों के अधिकार में हैं। जिस तेल और एल्यूमीनियम के बिना आजकल के वायु-युद्ध अथवा स्थल-युद्ध भी असंभव हैं उनका तो मित्रराष्ट्रों को मानो ठेका ही है। परन्तु यह कहना कि मित्रराष्ट्र अपने कच्चे माल का सदुपयोग कर रहे हैं, उचित न होगा। स्वयं ब्रिटेन में पार्लमेंट के सदस्यों को संदेह है कि सामग्री का सदुपयोग किया जा रहा है। अमेरिका की मजदूर-हड़तालों का उत्पादन-शक्ति पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। और भारतवर्ष का असंख्य टन लोहा, बोक्साइट और मैंगनीज तो भूगर्भ से निकलने की आज भी बाट देख रहे हैं।

कच्चे माल का प्रश्न उठाते ही उद्योग-धन्धों का ध्यान आता है। जब कभी प्रश्न आता है कि भारतवर्ष का उद्योगीकरण होना चाहिए-तो उत्तर मिलता है कि भारत में न तो सस्ती बिजली है, न मशीन और न मशीनों के चलाने के लिये सिखाये हुए इंजीनियर और व्यक्ति। यदि सरकार सहायता दे तो तीनों ही वस्तुएँ उपलब्ध हो सकती हैं। आज युद्ध को छिड़े लगभग ढाई वर्ष हुए और यदि सरकार चाहती तो प्रथम वर्ष में ही अनेक बिजलीघर खोले जा सकते थे, हजारों युवकों को मशीनों को चलाने की शिक्षा दी जा सकती थी, और हजारों और लाखों टन मशीनें अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस से लाकर भारतवर्ष में चलाई जा सकती थीं। स्वयं ब्रिटेन में भी आरम्भ से ही चैम्बरलेन ने उद्योग-धन्धों की ओर ध्यान नहीं दिया. जिसके फल-स्वरूप ब्रिटेन की उत्पादन-शक्ति भी बहुत कुछ पिछड़ी हुई है। अमेरिका में तो लगभग ७०० वायुयान ही युद्ध के आरम्भ में प्रतिमास बन सकते थे। आज अवश्य ब्रिटेन, सोवियट प्रजातन्त्र और इँग्लेंड मिलाकर कुल पाँच अथवा छः हजार वायुयान प्रतिमास बना लेते हैं। परन्तु जर्मनी भी योरपीय देशों की सहायता से लगभग पाँच हजार वायु-यान बनाता होगा, और टैंक तथा अन्य युद्ध-सामग्री में तो मित्रराष्ट्र आज भी पिछड़े हुए हैं। उद्योगीकरण की उन्नति के कारण ही जो सफ़ाई जर्मन-मजदूर और सिपाही के हाथों में है, और जिस ख़ूबी के साथ जर्मन-सिपाही आज-कल के नये कलपुर्जों और शस्त्रास्त्र को चलाता है वह ब्रिटेन अथवा अमेरिका के रहनेवाले आज भी प्राप्त नहीं कर सके। यह सत्य है कि जितना लोहा अमेरिका की भट्ठियों में गलाया जाता है उसका आधा भी धुरी शक्तियाँ काम में नहीं लातीं और इसी कारण भी मित्रराष्ट्रों की विजय में शंका नहीं। परन्तु इस औद्योगिक शक्ति का सदुपयोग कर और भारत तथा अन्य उपनिवेशों में उद्योग-धन्धे चालू कर विजय शीघ्र ही प्राप्त की जा सकती है।

युद्ध के समय में आवश्यक है कि विदेश से व्यापार चलता रहे। क्योंकि आज की दुनिया में आत्म-निर्भरता के कोई अर्थ नहीं, और प्रत्येक देश को एक दूसरे की सहायता का सहारा लेना पड़ता है। भारतवर्ष को यदि पक्का लोहा और मशीनें न मिलें तो यहाँ के उद्योग-धन्धे ठप हो जायँगे। अतएव युद्ध के समय विदेश से व्यापार की और भी अधिक आवश्यकता होती है। साथ ही युद्ध-ग्रस्त देश अपना सामान विदेश को बहुत कम भेज सकता है। इस कारण अधिकांश सामान उसी अवस्था में ख़रीदा जा सकता है जब युद्ध-ग्रस्त देश का विदेशों पर बहुत-सा ऋण हो। ब्रिटेन को तो अमेरिका से बहुत-सी युद्ध-सामग्री उधार और पट्टे के अनुसार उधार लेनी पड़ रही है। परंतु भारत के पास न तो विदेश में लगी हुई पूँजी है, न बहुत-सा सोना और न उधार पट्टा-बिल ही भारत पर लागू होता है। अतएव अमेरिका से व्यापार करने में भारतवर्ष को अनेक कठिनाइयाँ हैं। आवश्यकता यह है कि भारतवर्ष में कच्चे माल की पैदावार बढ़ाई जाय और उसके बदले में अन्य देशों से मशीनें मँगाकर भारतवर्ष का योजनात्मक उद्योगीकरण हो।

परन्तु व्यापार-वृद्धि आयात-निर्यात के साधनों अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़क, रेल और जहाजों के बिना नहीं होती। युद्ध के छिड़ने पर ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा संसार में सबसे बड़ा था—लगभग दो करोड़ टन का। आज अमेरिका का जहाजी बेड़ा भी बहुत बड़ा है। तीसरे नम्बर पर जापान है। परन्तु भारत का कोई नम्बर ही नहीं। यहाँ का जहाजी बेड़ा अभी तक दो लाख टन से अधिक नहीं। पिछले अप्रैल तक ब्रिटेन के बेड़े के एक अंश को जर्मनी की पनडुब्बियों ने या तो समुद्र की सतह में बिठा दिया था अथवा बेकार कर मरम्मत के लिए ब्रिटेन के बन्दरगाहों में डाल दिया था। जर्मनी के जहाजी बेड़े को भी भारी क्षति उठानी पड़ी है, परन्तु प्रथम तो उसका बेड़ा बहुत बड़ा नहीं था और दूसरे उसको नौशक्ति की व्यापार के लिए आवश्यकता नहीं। इधर योरपीय रेलों और सड़कों की व्यवस्था बहुत अच्छी है और वे आज भी अक्षुण्ण हैं, जिनके कारण जर्मनी का व्यापार बिना कठिनाई के चलता रहता है। अमेरिका और ब्रिटेन मिलकर भी बीस लाख टन से अधिक जहाज प्रतिवर्ष नहीं बना सके, और युद्ध-काल में जहाज़ों की आवश्यकता तिगुनी और चौगुनी तक हो जाती है। खेद की बात यह है कि जहाज़ बनाने की भारतवर्ष में कोई विशेष सुविधा नहीं। बड़े प्रयत्नों के बाद विज़ीगापट्टम में सिन्धिया-कम्पनी एक जहाज़ बनाने का कारखाना खोल सकी है, जिसमें केवल २,००० मजदूर काम करते हैं। इन जहाजों के लिए मोटर आज भी विदेश से मँगाये जाते हैं। रेलवे लाइनें बढ़ाने के स्थान में कुछ स्थानों से भारतीय लाइनें उठाकर ईरान और इराक भेज दी गई हैं। नई लाइनें कदाचित् कहीं नहीं डाली गई हैं। विजय के लिए तो आवागमन के मार्गों को शीघ्रातिशीघ्र बनाना चाहिए।

योरप को खाद्य पदार्थों के लिए अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और मिस्र आदि देशों की ओर मुड़कर देखना पड़ता है। मित्रराष्ट्रों के पास खाने की चीजों का भांडार है। परन्तु युद्धकाल में दुर्भिक्ष पड़ते देखे गये हैं। व्यय अधिक होता है और उत्पादन-शक्ति जन-शक्ति के कम होने के कारण कम हो जाती है। ऐसी दशा में खेती में भी उद्योगीकरण और वैज्ञानिक ढंगों के काम लाने की आवश्यकता है। ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा आदि में खेती वैज्ञानिक ढंग से की जाती है, परन्तु भारतवर्ष के पाँच हज़ार वर्ष पुराने हल ज्यों के त्यों हैं और यद्यपि यहाँ की उर्वरा भूमि ऊसरप्राय हो चुकी है तो भी रासायनिक खादों का आज भी नाम नहीं। यही कारण है कि इस युद्ध के बीच में भी जब कि किसान की अवस्था सुधर जानी चाहिए थी, नहीं सुधरी। भारतवर्ष साम्राज्यान्तर्गत पूर्वीय ग्रुप के देशों के केन्द्र में स्थित है और साम्राज्य की आर्थिक योजनाओं में इसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि भारतवर्ष में ही दुर्भिक्ष की अवस्था फैल गई, जैसी कि आज है, तो अवश्य ही युद्ध की तैयारियों को एक बहुत बड़ा धक्का लगेगा।

भारतवर्ष में रुपये की कमी नहीं। रुपया इतना है कि आज भी उसका सदुपयोग नहीं हो सका। सेठ पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सेठ बालचन्द हीराचन्द बारबार उद्योगीकरण की योजनायें सामने लाते हैं परन्तु वे किसी न किसी बहाने ठुकरा दी जाती हैं। युद्ध के समय में तो हर एक पैसे का सदुपयोग होना चाहिए। जिस प्रकार जर्मन, सोवियट अथवा जापानी सरकारें अपने बैंकों पर भी अधिकार करके योजनानुसार उद्योगों की उन्नति करती हैं, उसी प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका अथवा भारतवर्ष में भी वाञ्छनीय उद्योगों की उन्नति होनी चाहिए।

परन्तु इन उपर्युक्त सात चीज़ों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जनता का रुख, उसकी भावनायें और उत्साह। यदि जनता युद्ध को अपना युद्ध नहीं समझती, यदि वह पूर्णरूपेण सहयोग देने को तैयार नहीं, तो देश को दासता से कोई भी नहीं बचा सकता और उस पक्ष की पराजय अवश्यम्भावी है। जनता के उत्साह के कारण ही चीन जैसा दुर्बल देश जापान के विरुद्ध आज ४॥ वर्ष से मोर्चा ले रहा है और इसी उत्साह ने आज रूस के मैदानों में जर्मनी के छक्के छुड़ा दिये और अन्त में जर्मनी को लेनिनग्राड और मास्को तथा मुरमान्स्क से लौटना पड़ रहा है। परन्तु जनता की उत्साहहीनता और नेताओं के दंभ और धोखे के कारण फ्रांस की जैसी सबल सेना का दो सप्ताह में पतन हो गया! कहने का तात्पर्य यह है कि जनता को युद्ध में दिलचस्पी दिलाना और उसमें ऐसा उत्साह पैदा करना कि प्रत्येक व्यक्ति हार को अपनी हार समझे, जीत को अपनी विजय और विजय के लिए जी लगाकर घोर परिश्रम करे, यह नेताओं और सरकार का प्रथम और मुख्य कर्तव्य है।

यह उत्साह कैसे दिलाया जाय? ब्रिटेन में एक लिबरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेता ने शासन की आलोचना करते हुए कहा है कि एक ओर तो जनता जी-जान से मेहनत कर, उत्पादन की शक्तियों को बढ़ा विजय के लिए भरसक प्रयत्न करती है और दूसरी ओर कुछ पुतलीघरों के मैनेजर, कुछ सरकार के विभिन्न विभागों के कर्मचारी उत्पादन में अड़चनें डालकर पाँचवीं क़तार का काम करते हैं। इधर तो जनता युद्ध के टैक्सों और युद्ध के कारण बढ़ी हुई मँहगी के कारण कठिनाई से भोजन प्राप्त करती है और दूसरी ओर कुछ व्यक्ति बहुत-सा, लखों और करोड़ों का लाभ उठा रहे हैं, अथवा खाद्य पदार्थों को छिपाये हुए हैं। इस प्रकार की सट्टेबाज़ी से जनता में भारी असन्तोष होता है और हो रहा है। इसी कारण पार्लियामेन्ट के कुछ सदस्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की योजना के साथी हो गये हैं। सरकार को इन अन्यायों की ओर ध्यान देना चाहिए।

युद्ध की तैयारियों का प्रजातंत्रीकरण भी होना चाहिए और युद्ध के साम्राज्यवादी रूप को बदलकर इसे जन-युद्ध बनाना चाहिए। इस प्रकार के युद्ध में जन-सहयोग और जन-संस्थाओं की आवश्यकता है। ब्रिटेन में ट्रेड यूनियन (मजदूर-सभायें) और जन-सेना बन चुकी हैं अथवा बन रही हैं। परन्तु वहाँ भी जनता के नेताओं की देख-रेख में नहीं, वरन सरकार स्वयं अपने अधिकार में इन संस्थाओं को रखती है। आज भारतवर्ष को इस प्रकार की संस्थाओं की आवश्यकता सबसे ज्यादा है। यहाँ की जनता इतनी संस्कृत और शिक्षित नहीं कि आक्रमणकारी का सामना ठीक प्रकार कर सके। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, नौजवान-सभायें और किसान-मजदूर-संघ, विद्यार्थी-संघ तथा अन्य जन-संस्थाओं, सेवा-दलों और राष्ट्रीय सेनाओं की सहायता के विना भारतवर्ष की रक्षा किस प्रकार सम्भव हो सकती है?

भारतवर्ष जैसे देशों में जन-सहायता प्राप्त करने के अर्थ हैं वहाँ के नेताओं से सहयोग प्राप्त करना, उनकी विभिन्न संस्थाओं को साथ लेना। यदि भारतवर्ष को अपने शासन के पूर्ण अधिकार मिल गये और यदि जैसा कि राजगोपालाचार्य चाहते हैं, केन्द्र और प्रान्तों में उत्तर-दायित्वपूर्ण राष्ट्रीय सरकारें बन गईं तो भारतवर्ष की रक्षा सरलता से हो सकेगी। पंडित जवाहरलाल जी ने हाल में ब्रिटेन को एक वक्तव्य भेजा है उसमें उन्होंने कहा है—हम जानते हैं कि आज ब्रिटेन और अमेरिका प्रगति की शक्तियों के साथ हैं और हम भी इन अग्रगामी शक्तियों के सहायक होना चाहते हैं। परन्तु दास होकर नहीं, स्वतंत्र होकर।

पंडित जवाहरलाल जी ने एक सिद्धान्त की बात कही है। इस वक्तव्य का उपनिवेशों की स्वतंत्रता से संबंध है। यदि हमें विजयी होना है तो उपनिवेशों की असंख्य जनता को जी-जान से अपने साथ लेना होगा और इसके लिए अवश्य ही इन देशों को राजनैतिक स्वतंत्रता देनी होगी।

और इस नीति का न केवल उपनिवेशों पर प्रभाव होगा और वे देश मित्रराष्ट्रों के सहायक होंगे, बरन योरप के दास देशों पर भी इसका प्रभाव होगा। फ़्रांस, बेल्जियम, हालैंड, चैकोस्लोवाकिया, नार्वे आदि में नई जान आ जायगी। और सर्बिया के वीर गुरीलों को नया सहारा मिल जायगा। अभी तक ब्रिटेन को योरपीय देशों में अपना प्रचार करने में सफलता नहीं मिली जब कि सोवियट देश ने जर्मन-सेनाओं तक में प्रचार करके सफलता प्राप्त की है। कारण एक ही है। सोवियट के अन्तर्गत कोई ग़ुलाम देश नहीं और ब्रिटेन आज भी कतिपय उपनिवेशों का सम्राट् है।

इस नीति का प्रभाव जर्मन-जाति पर भी अवश्य पड़ेगा। पिछले युद्ध का ध्यान आते ही प्रत्येक जर्मन युवक रोमांचित हो जाता है। वह कहता है कि चाहे जर्मन-जाति संसार से मिट जाय, परन्तु इस प्रकार का अपमान जर्मनी कभी सहन न करेगा। उनको याद है किस प्रकार पिछले युद्ध के बाद जर्मन-जाति का अपमान हुआ था, किस प्रकार उसपर भारी ऋण लादा गया था, किस प्रकार उसका बेड़ा, उसके उद्योग-धंधे, उसकी रेलें गिरवी रख ली गई थीं। इसकी पुनरावृत्ति जर्मन-सैनिक नहीं देखना चाहता। कुछ नौसिखिये अथवा नासमझ सेना-नायक और कमाण्डर अबकी बार बर्लिन तक जाने के स्वप्न देखते हैं, और श्री डफ़कूपर तक जर्मन-जनता को दोषी ठहराते हैं। इस प्रकार की बातों से जर्मन-जनता का हठ और उसका युद्ध को जारी रखने का प्रयत्न और भी अटल होगा। आज तो आवश्यकता है जर्मनी की शासन-शक्ति को विश्रृंखल करने की; उसकी नेताशाही, जर्मन नात्सी पार्टी को जर्मन-जनता से अलग करने की; उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में मतभेद पैदा करने की। और इसमें भी सोवियट ने मार्ग-प्रदर्शन किया है, और पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। जर्मन-जनता को समराग्नि में झोंकना नात्सी शासन का काम है। जनता का इसमें क्या दोष है। यदि जर्मन-जनता को विश्वास हो जाय कि ब्रिटिश और अमेरिकन सरकार न्याय-प्रिय हैं, और वास्तव में संसार की स्वतंत्रता चाहती हैं जैसा कि भारत में प्रमाणित हो जायगा; और यदि जर्मन-जनता को यह भी आश्वासन मिल गया कि युद्ध के बाद उसके साथ सद्व्यवहार होगा और उसको मित्रराष्ट्रों की अति का शिकार बनना न होगा; उसके ऊपर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अपमानों की गठरी न लादी जायगी तो जर्मन-जनता अवश्य ही शीघ्रातिशीघ्र नात्सी व्यवस्था का पीछा छोड़कर मित्रराष्ट्रों की सहायक हो जायगी। एटलान्टिक घोषणा के कई सिद्धान्तों का खुलासा करना आज भी शेष है। वह जर्मन-राष्ट्र और उपनिवेशों की ओर आज भी मौन है। यह मौन अत्यन्त कटु प्रतीत होता है, विशेषतया ऐसे युद्ध के समय जब जीवन और मरण का प्रश्न उठ गया हो और जिसमें प्रत्येक दिन नित नये दारुण दुःख और नित नई समस्यायें संसार के सम्मुख आ रही हों। छोटी-सी भूल भी संसार की प्रगति को कोसों आगे-पीछे हटा सकती है।

स्वप्नदेवता के प्रति

पण्डित विन्ध्यवासिनीदत्त त्रिपाठी शास्त्री

(१)

स्वप्नदेव, साकार बनो मेरे जीवन में ।
उतरो एक विन्दु भी बनकर मेरे लघु लोचन में ॥

(२)

चिन्तन से ही देव तुम्हारे,
स्वर्ग उतर आता पृथ्वी पर ।
तृष्णाकुल मरु का अन्तर भी,
भाव भरित लहराता उर्वर ॥

(३)

जगत ऊबकर कोलाहल से,
करता गुम-सुम ध्यान तुम्हारा ।
जैसे, जीवन क्षुब्ध सिंधु हो,
एकमात्र तुम देव किनारा ॥

(४)

मूक कंठ की भाषा तुम हो,
सुप्त हृदय के तुम आलोड़न ।
कर्म-जर्जरित आकुल भव में,
तुम नव-जीवन, तुम नव-यौवन ॥

(५)

घोर निराशा पर तुम आशा,
घोर पराजय पर तुम जय हो ।
आश्रयहीन अनन्त विश्व में,
मात्र तुम्हीं मेरे आश्रय हो ॥

(६)

स्वप्नदेव, उतरो अम्बर से, चरण धरो आँगन में ।
भावातुर मैं आज खड़ा हूँ, देव, तुम्हारे अभिनन्दन में ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वे पत्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत दयानन्द गुप्त, बी० ए०, एल-एल० बी०

क्टर प्राणनाथ एम० ए० डी० लिट्० अपने अध्ययन-कक्ष में बैठे हुए एक पुस्तक लिख रहे थे। वे विचार-सागर में पनडुब्बे की तरह डुबकी लगाकर नवीन अन्वेषण की सीपी खोज निकालने की चेष्टा में थे। पुस्तक का नाम 'कवि आनन्द का जीवन और काव्य' था। उक्त पुस्तक में उन्होंने कवि आनन्द की जीवनी तथा उनके काव्य की आलोचना लिखी थी। इस पुस्तक का कुछ अंश फुटकल लेखों के रूप में प्रयोगपूना की प्रख्यात पत्रिका 'साहित्य-साधना' में प्रकाशित भी हो चुका था। कवि आनन्द की मराठी-भाषा के श्रेष्ठतम कवियों में गिनती थी और उन्हें जीवन-काल में ही ५,००० रौप्य मुद्राओं का तीन बार पारितोषिक भी मिला था।

इस समय उनकी मेज पर बहुत-से पुराने हस्तलिखित कार्ड और लिफ़ाफ़े पड़े हुए थे। उन्होंने एकएक कर उन पत्रों को तिथि-क्रमानुसार लगाया और फिर उन्हें पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। डाक्टर महोदय ने उन पत्रों को कई बार पढ़ा और एक बार फिर विचारमग्न होकर आँखें मूँद लीं। वे निष्पक्ष, निर्भीक तथा निर्दोष आलोचक थे। उन्होंने अपने निबन्ध में सत्य का अंचल कभी हाथ से नहीं छोड़ा था। वे उन पत्रों का मूल्य मन ही मन आँक रहे थे। अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले लेखनी उठाना उन्हें कवि के प्रति अन्याय जान पड़ता था। तभी तो वे इतनी उलझन में पड़े हुए थे।

कवि आनन्द ने नारीमनोविज्ञान की कितनी सुन्दर, सजीव, सच्ची तथा सम्पूर्ण अभिव्यंजना अपने काव्य में की थी, उतने उच्च कोटि की परख तथा अनुभूति मराठी तथा अन्य भाषाओं में भी अभी तक किसी कलाकार ने अपनी कृतियों में नहीं दिखलाई थी। वह इस दिशा में बेजोड़ हुआ है ऐसा मत डाक्टर महोदय ने भी अपने लेखों में 'साहित्य-साधना' में प्रतिपादित किया था। वे कवि के गुणों के क़ायल थे। एक चारण की तरह उन्होंने कवि की अपनी लेखनी से प्रशंसा की थी। किन्तु क्या वास्तव में मराठी-साहित्य को यह कवि आनन्द की ही देन थी? क्या कवि आनन्द वास्तविक कवि था? जिन श्रेष्ठताओं का उल्लेख संसार सगर्व ग्रीवा उठाकर अजस्र वाग्धारा से किया करता है, क्या वे वास्तव में कवि आनन्द की अपनी वस्तु हैं? क्या उनकी रचनाओं में दो धारायें गंगा और यमुना की तरह संगम पर स्पष्ट दिखलाई नहीं देती हैं? पराये पंखों से उन्होंने अपनी शोभा बढ़ाई है। वास्तविक कवि क्या कोई दूसरा व्यक्ति ही तो नहीं है जिसकी तरफ़ संसार ने न आँख ही उठाई, न जिसके लिए एक आँसू ही गिराया और जो विस्मृति की अँधेरी कंदरा में ख्याति के प्रकाश से आँख बचाकर स्वयं छिप गया? यदि वास्तव में कोई ऐसा मानव है तो वह असाधारण कवि ही नहीं किन्तु देव-तुल्य भी है। ऐसे त्याग की महत्ता कूँतने के लिए मानव कब आँकड़े बना सका? अन्त में डाक्टर महोदय ने अपने लेख में घोषित किया था कि उनके पास विश्वस्त प्रमाण हैं जिन्हें अनुकूल अवसर पर वे प्रकाशित करेंगे और जिनसे सिद्ध हो जायगा कि कवि आनन्द की कृतियों के सराहनीय अंश किस देवी के लिखे हुए हैं।

डाक्टर महोदय के अध्ययन-कक्ष में आकर एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। सिर के बाल कुछ पके हुए, क़द औसत से आगे निकला हुआ, गेहुँआ रंग, रेशमी वस्त्र तथा सोने की कमानीवाला चश्मा, घड़ी की स्वर्णचेन तथा उसकी रोबीली आकृति ने आलोचक का ध्यान अनायास उधर आकर्षित कर दिया। बिना किसी शिष्टाचार के आलोचक के सामने एक कुर्सी पर वह बैठ गया और कहने लगा—"आपको ऐसी धृष्टता करने का साहस क्योंकर हुआ? कवि आनन्द की उज्ज्वल कीर्ति में आप क्यों धब्बा लगाना चाहते हैं?" उसके स्वर में क्रोध की उष्णता और प्रखरता थी।

"मैं आलोचक हूँ। दूध का दूध और पानी का पानी कर देना मेरा कर्त्तव्य है। डाक्टर महोदय ने गम्भीर और शान्त स्वर में उत्तर दिया।

"आप कवि आनन्द से द्वेष रखते हैं। केवल आविष्कार का यश अर्जित करके स्वार्थ ने आपको अन्धा कर दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरे प्रत्येक शब्द के पीछे प्रमाण रहता है । देखना चाहते हो ?"

"दिखलाओ" ।

आगन्तुक की बात सुनकर डाक्टर महोदय ने पत्रों की एक गड्डी सामने रख दी । उसने दो पत्र पूरे भी न पढ़े थे कि प्रश्न किया :—

"ये पत्र किसी पुरुष ने अपनी प्रेमिका को लिखे हैं । पुरुष का नाम आनन्द अवश्य लिखा हुआ है । इसका प्रमाण आपके पास क्या है कि यह लिपि और हस्ताक्षर आनन्द के ही हैं ।?"

"आप इतने अधीर क्यों हैं ? मैं आपकी इस जिज्ञासा को भी सन्तुष्ट कर दूंगा । पहले आप इन सब पत्रों को पढ़ जाइए ।"

आगन्तुक ने पत्रों की गड्डी मेज पर पटकते हुए उत्तर दिया—"यदि ये पत्र किसी और व्यक्ति के हुए तो पूरे पढ़ने से लाभ क्या होगा ? मैं समय नष्ट करना नहीं चाहता । सबसे पहले यही साबित होना चाहिए कि ये पत्र कवि आनन्द के ही हैं, फ़र्जी तो नहीं हैं ।"

आप ठीक कहते हैं । डाक्टर महोदय ने मेज की दराज में से एक पुस्तक की पांडु-लिपि निकाली और आगन्तुक के सामने मेज पर रखते हुए कहा—"आप इन पत्रों की तथा इस हस्तलिखित पुस्तक की लिपि का मिलान कर लीजिए । दोनों एक ही व्यक्ति की ज्ञात होती हैं या नहीं ।"

फिर यह कैसे ज्ञात होगा कि यह पुस्तक भी उन्हीं की लिखी हुई है ?"

"आपने बड़ा ही सुन्दर प्रश्न किया है ! व्यंग्य-भरे स्वर में डाक्टर महोदय ने उत्तर दिया—"मेरे पास यह पत्र पूना के अजायबघर के संरक्षक का आया हुआ है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस पुस्तक की पांडु-लिपि कवि आनन्द की लिखी हुई है और अजायबघर में दूसरी पांडुलिपियों से सम्पूर्ण मेल खाती है ।"

आगन्तुक ने वह पत्र भी पढ़ा, पांडुलिपि से कवि आनन्द के पत्रों की लिपि का मिलान किया । उसे डाक्टर के कथन की सचाई पर विश्वास हो गया । उसके मुख का रंग फीका पड़ गया और केशों की जड़ें प्रस्वेद से भीग गईं । वह मूक, पराजित, खोया-सा शिथिल बैठा रहा ।

"अभी तुमने एक प्रश्न तो किया ही नहीं," डाक्टर महोदय ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा ।

उसने केवल डाक्टर महोदय की आँखों से आँख मिलते ही सिर नीचा कर लिया और कोई उत्तर नहीं दिया ।

डाक्टर महोदय ने कहना प्रारम्भ किया—"यह कैसे सिद्ध हो कि उन कृतियों के उत्कृष्ट भाग जो कवि आनन्द के कीर्ति-स्तम्भ हैं, किसी और के लिखे हुए हैं ?" डाक्टर महोदय कहते रहे—"इन पत्रों में कई पत्र कवि आनन्द की प्रेमिका यशोधरा के हैं । उसने स्पष्ट लिखा है कि मैं आपको 'कंठ-हार' पुस्तक भेज रही हूँ । उसे आप स्वीकार कर अपने नाम से पवित्र कीजिए । दूसरे पत्र में यशोधरा ने अपनी पुस्तक 'वसन्त के गीत' के कवि आनन्द को भेजने का उल्लेख किया है, जिसकी प्रति की उसे अभी तक कोई सूचना नहीं मिली थी । अन्तिम पत्र के साथ उसने 'यशोधरा' नामक पुस्तक कवि आनन्द को लिखकर भेजी है । इसी प्रकार से शेष पत्रों में समय समय पर अनेक कविताओं के भेजने का प्रसंग आया है । क्या इस सबके बाद भी तुम्हारा शंका-समाधान नहीं हो जाता है ?"

आगन्तुक ने फटे, रुँधे कंठ से उत्तर दिया—"हाँ ।"

"इस संग्रह में सबसे अन्तिम पत्र कवि आनन्द ने अपनी प्रेयसी यशोधरा को भेजा है । उसको पढ़िए—

पूना, ५—६—१८०९

प्राणेश्वरी !

तुमने मेरे लिए अभूतपूर्व त्याग किया है । तुम्हारे कथन में मुझे विश्वास है कि तुम यह तो क्या, अपने रक्त की एक एक बूंद भी माँगने पर दे सकती हो । तुमने अपना अमरत्व मुझे भेंट कर दिया है, लेकिन मुझे दुःख है तो यही कि संसार इस बलिदान की कहानी भी नहीं सुन सका । काश रहस्य अँधेरे से निकलकर उजाले में आ जाता । तुम्हारी शपथ ने मेरी जबान पर भी ताले डाल दिये । क्या सत्य इसी तरह धूल में कुचला जा सकता है ? क्या वह कुचला जाकर फिर न उठ सकेगा ?

तुम्हारा बन्दी,

'आनन्द'

"मैंने पढ़ लिया, अब क्षमा करो," गिड़गिड़ाकर आगन्तुक ने उत्तर दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह यशोधरा है कौन, जिसे कवि आनन्द ने अपनी कृतियाँ समर्पित की हैं? वह यही है और कोई नहीं। संसार जिसे कवि की पत्नी होना कल्पना करता आया है, वह वास्तव में पत्नी नहीं है, किन्तु आनन्द के प्रेम की भूखी एक देवी। यह नासिक की रहनेवाली थी। समाज के नियमों ने उसे कवि आनन्द की पत्नी बनने नहीं दिया, दोनों भिन्न-भिन्न जातियों के थे।"

डाक्टर महोदय थोड़ी देर के लिए रुक गये। आगन्तुक मूक, निश्चल, निर्जीव-सा बैठा था। डाक्टर महोदय ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"कवि आनन्द ने जिसे 'यौवन के प्रभात की उषा' कहकर सम्बोधित किया है वह वही देवी है। वह जीवनपर्यन्त कवि आनन्द की देवदासी अर्थात् अविवाहित सेविका बनकर रही तभी उसके प्रसंग में कवि ने उसे 'जीवन-वृन्त की अधखिली कली' का विशेषण दिया है।"

डाक्टर महोदय फिर रुक गये और सोचकर बोले—"मैं तभी इन पत्रों को अँधेरे से प्रकाश में लाना चाहता हूँ।"

"कृपा करके ऐसा न करिए। मेरा विनाश हो जायगा।"

"क्यों? तुमसे कवि आनन्द का क्या सम्बन्ध?"

"मेरे लिए इन पत्रों का प्रकाशित होना जीवन-मरण के समान महत्त्व रखता है। इस रहस्योद्घाटन पर मेरे जीवन में से प्राण निकल जायँगे।"

"अब तुम यहाँ से जा सकते हो। यह मेरा अध्ययन का समय है," आलोचक ने घृणा-भरे स्वर में आगन्तुक से कहा।

"मैं इसी समय यहाँ से चले जाने को प्रस्तुत हूँ यदि आप इन पत्रों को मुझे दे दें।"

"तुम इन पत्रों का क्या करोगे? इन झूठे पत्रों का!" डाक्टर महोदय के स्वर में व्यंग्य था।

"मेरे लिए ये बड़े ही मूल्यवान् हैं। मैं इनका मूल्य जो आप चाहें अदा कर सकता हूँ।"

"तुम कहाँ क्या करते हो?"

"मैं एक रियासत में मंत्री हूँ। महाराज कवि आनन्द के बहुत बड़े प्रशंसक और भक्त हैं। उनके महल के शयन-गृह में कवि आनन्द का चित्र लगा हुआ है। मैं कवि आनन्द का भतीजा हूँ और इसी नाते महाराज ने मुझे यह पद दिया है। यदि आप इन पत्रों को और अपने लेख को संसार के सामने रख देंगे तो कवि आनन्द की ओर से महाराज का मन फिर जायगा और मैं नहीं कह सकता कि फिर मेरा भविष्य कैसा होगा!"

"अँधेरा!"

"आप तो समझते ही हैं।"

"तो आप अपना भविष्य सदा उजाले में रखना चाहते हैं!"

"आप तो सब समझते हैं," डाक्टर महोदय के चरण छूते हुए उसने कहा।

उसे हाथ से हटाकर डाक्टर महोदय ने कहा—"आप तो सत्य को, इन पत्रों को, मेरे लेख के भाग्य को अँधेरे में क्यों रखना चाहते हैं? एक बार इन्हें भी उजाले में आने दें।"

"इसलिए कि एक बार उजाले में आकर फिर कभी अँधेरे में न जायेंगे। कम से कम इन्हें मेरे जीवन तक तो अँधेरे में और रहने दीजिए।"

"इसका मूल्य क्या होगा? दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रायें।" डाक्टर महोदय को अब आगन्तुक पर दया आगई थी।

"मैं सहर्ष देने को तैयार हूँ।"

"लेकिन ये पत्र तुम्हें फिर भी नहीं मिल सकेंगे।"

"मुझे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं।"

"इन दस सहस्र स्वर्णमुद्राओं से 'यशोधरा-स्मारक पुस्तकालय' खोल दो, जितने काल तक उस पवित्र देवी का यश अँधेरे में रहता है तब तक उसका बदला इस तरह से ही चुक जाना चाहिए।"

"तो मुझे आज्ञा है।"

"हाँ।"

आगन्तुक हलके पगों से खुशी से फूला हुआ फिर रात्रि के अँधेरे में विलीन हो गया। कौन कह सकता है कि वे पत्र फिर कब प्रकाश में आयँगे? यदि नहीं तो उन पत्रों का क्या हुआ? अब डाक्टर महोदय को सन्देह हो रहा था कि सत्य धूल में कुचला जाकर भी फिर उठ सकने का सामर्थ्य रखता है। शायद यह सत्य फिर कभी प्रकाश में आ भी सकेगा और फिर इस तरह कोई और मंत्री का उत्तराधिकारी कभी आकर उनके उत्तराधिकारी की लेखनी की गति को रोक न देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनका साहित्य

श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल

स्वामी दयानन्द सरस्वती सन् १८६३ ईसवी (संवत् १९२० वि०) में कार्य-क्षेत्र में उतरे और सन् १८८३ ईसवी (संवत् १९४० वि०) में स्वर्गलोक सिधार गये। उनके कार्यकाल में आने-जाने के वे साधन न थे जो आजकल सुलभ हैं, तथापि वे बीस वर्ष में बहुत-से स्थानों में पहुँचे, बहुत-से स्थानों में उन्होंने शास्त्रार्थ किये और बहुत-से स्थानों में व्याख्यान दिये।

प्रत्येक मनुष्य स्वामी जी के व्याख्यानों, शास्त्रार्थों अथवा उनकी सेवा में पहुँच नहीं सकता था और न यही बात सम्भव थी कि वे ही प्रत्येक स्थान में पहुँचते। ऐसी अवस्था में अत्यन्त आवश्यक बात यह थी कि वे अपने विचारों को पुस्तक-रूप में मुद्रित कराते, जिससे सभी लोग लाभ उठा सकते। परन्तु कार्य-काल के आरम्भ में विरोधियों से निबटने और जिज्ञासुओं को सन्तुष्ट करने का भार उनपर इतना अधिक था कि वे प्रारम्भ में पुस्तक लिखने का कार्य बहुत कम कर सके थे।

स्वामी जी के समय में पुस्तकालयों की भी बहुत कमी थी और उनके विरोधी भी कुछ कम न थे तथापि उन्होंने अनेक ग्रन्थों को खोजा और उनके आधार पर बहुत कुछ लिखा भी। फलतः उन्होंने कौन पुस्तक कब लिखी और कितने पृष्ठों की लिखी ये सब बातें ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अपना महत्त्व रखती हैं, अतएव उनका उल्लेख उनके रचे जाने के समय तथा उनकी पृष्ठ-संख्या-सहित यहाँ किया जाता है—

ग्रन्थ	रचना-काल (विक्रम संवत् में)	पृष्ठ-संख्या
१ संध्या	१९२०	..
२ पाखण्ड-खण्डन	१९२३	..
३ अद्वैत-मत-खण्डन	१९२७	..
४ वेद-विरुद्ध-मत-खण्डन	१९३१	४३
५ शिक्षापात्री ध्वान्तनिवारण	१९३१	१५
६ सत्यार्थ-प्रकाश	१९३२	७२०*
७ आर्याभिविनय	१९३२	७६
८ संस्कार-विधि	१९३२	२५६
९ वेदान्तध्वान्तनिवारण	१९३३	२८
१० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	१९३३	४६२
११ आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	१९३४	१०
१२ ऋग्वेदभाष्य (अपूर्ण)	१९३४ से १९४० तक	८५७३
१३ यजुर्वेदभाष्य	१९३४ से १९३९ तक	३६००
१४ भ्रान्तिनिवारण	१९३४	४६
१५ अष्टाध्यायीभाष्य	१९३५	..
१६ पंचमहायज्ञविधि	१९३५	४०
१७ वर्णोच्चारणशिक्षा	१९३६	३४
१८ संस्कृतवाक्यप्रबोध	१९३६	५२
१९ व्यवहारभानु	१९३६	४४
२० भ्रमोच्छेदन	१९३७	२३
२१ सन्धिविषय	१९३७	१०४
२२ गोकरुणानिधि	१९३७	२६
२३ नामिक	१९३८	६६
२४ कारकीय	१९३८	४६
२५ सामासिक	१९३८	६३
२६ स्त्रैणताद्धित	१९३८	१७८
२७ अव्ययार्थ	१९३८	२८
२८ आख्यातिक	१९३८	३९२
२९ सौवर	१९३९	२४
३० पारिभाषिक	१९३९	५६
३१ धातुपाठ	१९३९	७२
३२ गणपाठ	१९३९	५६
३३ उणादिकोष	१९३९	१३८
३४ निघण्टु	१९३९	६४

* प्रथम संस्करण ४०० से कुछ अधिक पृष्ठों का ही था।

(क) पहली तीन रचनाओं की कोई प्रति मेरी दृष्टि में नहीं आई, किन्तु यह बात जाननी चाहिए कि वे तीनों रचनायें बहुत छोटी छोटी थीं। इनके सिवा 'अष्टाध्यायीभाष्य' की भी कोई प्रति अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आई है।

(ख) संवत् १९३० तथा इसके पश्चात् स्वामी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने हिन्दी-भाषा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। इससे पहले वे संस्कृत को ही प्रयोग में लाया करते थे। फलतः उक्त समय से पूर्व तथा संवत् १९३१ तक की उनकी समस्त कृतियाँ संस्कृत में ही हैं।

(ग) १७, १८, १९, २१, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३ और ३४ का एक ही नाम 'वेदाङ्ग-प्रकाश' है। इनमें से ३४ अर्थात् निघण्टु एक प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु वह नवीन व अच्छे ढंग से सम्पादित है। १८ और १९ की बाबत बहुत कम लोग यह जानते हैं कि ये दोनों ग्रन्थ 'वेदाङ्ग-प्रकाश' के ही अंग हैं।

(घ) ऋग्वेद में कुल मण्डल १०, सूक्त १,०२८ और मंत्र १०,५८९ हैं। इनमें से मंडल ७ के सूक्त ६१ के मंत्र २ तक अर्थात् कुल ५,६२९ मंत्रों तक का भाष्य स्वामी जी महाराज अपने जीवन में कर सके थे।

(ङ) अष्टाध्यायी-भाष्य के छपने की नौबत स्वामी जी के जीवन-काल में नहीं आई थी। इसकी हस्त-लिखित प्रति खंडित भी हो गई थी। अब सन् १९४० ईसवी तक के भीतर दो भाग निकले हैं। बाक़ी अंश कब तक छपे, कुछ नहीं कहा जा सकता।

शास्त्रार्थ

श्री स्वामी जी ने अपने जीवन में अनेक शास्त्रार्थ किये थे। उनमें से जिनको उन्होंने स्वयं लिखा था वे ये हैं--

नाम	रचना-काल संवत् में	पृष्ठ
(१) काशी-शास्त्रार्थ	१९२६	१६
(२) प्रतिमा-पूजन-विचार	१९३०	२७
(३) सत्य-धर्म-विचार	१९३७	३०

श्री स्वामी जी के उद्योग से संपूर्ण क़ुरान भी हिन्दी में सन् १८७९ ई० (संवत् १९३६ वि०) में हो गया था। उसकी हस्त-लिखित प्रति अजमेर (वैदिक यंत्रालय) में है। उसके छपने की नौबत नहीं आई। मेरा खयाल है कि सबसे पहले यही क़ुरान हिन्दी में हुआ है।

अब यह जानना चाहिए--

(१) जिन रचनाओं के पृष्ठों का उल्लेख ऊपर हुआ है उनमें से 'वेदान्तिध्वान्तनिवारण' के पृष्ठों का आकार ७½ × ४½ इंच है और 'प्रतिमा-पूजन-विचार' के पृष्ठों का आकार लगभग ८ × ५ इंच है। बाक़ी सबके पृष्ठों का आकार लगभग ९½ × ६ इंच है। इस बड़े आकार में स्वामी जी की बदौलत लिखी गई सामग्री लगभग १५ हज़ार पृष्ठों की ठहरती है।

(२) उक्त सारे पृष्ठों में हिन्दी की ही मात्रा अधिक है।

(३) इनमें से कुछ ग्रन्थों का प्रकाशन अब तक बहुत ज़्यादा हुआ है। सन् १९३८ ई० तक सत्यार्थप्रकाश केवल हिन्दी में तीन लाख दो सौ प्रकाशित हो चुका है। संवत् १९८१ वि० अर्थात् सन् १९२५ में मथुरा में स्वामी जी की जन्म-शताब्दी मनाई गई थी। उसके उपलक्ष्य में १४ रचनाओं का एक संस्करण दो भागों में 'दयानन्द ग्रन्थ-माला---शताब्दी-संस्करण' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उससे पता चलता है कि अनेक ग्रन्थ सन् १९२४ ई० तक कितने प्रकाशित हुए थे।

पिछले बीस वर्षों में यद्यपि कांग्रेस की विचार-धारा ज़ोरों पर थी, तथापि कुछ ग्रन्थों का बहुत ज़्यादा संख्या में प्रकाशित होना एक असाधारण बात है; यदि अब सुधार के प्रश्न को एक ओर रख दिया जाय और केवल हिन्दी के नाते ग्रन्थों को देखा जाय तो मानना पड़ेगा कि हिन्दी का बहुत बड़ा प्रचार श्री स्वामी जी के ग्रन्थों-द्वारा हुआ है।

(४) मूल्य की दृष्टि से प्रत्येक रचना सस्ती ही है। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि ९½ × ७ इंच आकार के ४०० पृष्ठों का अथवा ७½ × ५ इंचवाला लगभग ८०० पृष्ठोंवाला सत्यार्थप्रकाश अधिक से अधिक छः आने में साधारणतया मिल जाता है।

(५) खण्डन-मण्डन की दृष्टि से देखा जाय तो मण्डन की सामग्री खण्डन से कहीं अधिक ठहरेगी।

(६) स्वामी जी की जो कृतियाँ हैं उनमें से अधिकांश उनके कार्यकाल के अन्तिम दस वर्षों की हैं।

अब अन्त में यह जता देना भी आवश्यक है कि उक्त सारे ग्रन्थों की तैयारी में कई पंडितों का सहयोग रहा है, तथापि जो कुछ हुआ है वह श्री स्वामी जी की बदौलत ही हुआ है। यदि वे स्वयं निरीक्षक न होते अथवा उन पंडितों से काम न लेते तो इतना काम कदापि न हुआ होता। फलतः श्री स्वामी जी की बदौलत जो कुछ कार्य हिन्दी में हुआ है वह कुछ कम महत्त्व का नहीं है। उनको यदि अधिक पंडितों का यथायोग्य सहयोग मिलता तो संभवतः और अधिक काम हुआ होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हिमालय की उपत्यका—सहस्रधारा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत जगमोहनलाल कुकरेती

गिरिराज हिमालय अनेक विचित्रताओं के आकर हैं। ये सुन्दरतामय विचित्रतायें पृथ्वी के सुदूरस्थ कोणों के निवासियों को प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में अपनी ओर आने को विवश कर देती हैं। नीचे धरातल पर कुछ भी हो रहा हो, मानो नगराज को इसकी विशेष चिन्ता नहीं रहती। वे तो अपने नगों-नागों, वनों और वनराजों को लिए अनन्त योगनिद्रा में निमग्न रहते हैं। इसी लिए तत्त्वान्वेषी जन संसार के कोलाहल से मुक्ति पाकर आत्मचिन्तन करने के लिए अनादिकाल से हिमवान् के गुहा-गृहों के अतिथि बनते आये हैं।

इन्हीं विचित्रताओं में से एक सहस्रधारा की उपत्यका भी है। यह उपत्यका देहरादून शहर से उत्तरपूर्व की दिशा में है। यहाँ पहुँचने के लिए पहले राजपुर जाना होता है जो शहर देहरादून से ७ मील उत्तर की ओर मसूरी जानेवाली सड़क पर है। देहरादून से राजपुर के लिए मोटर-ताँगे और पहाड़ी टट्टू हर समय मिलते रहते हैं। सहस्रधारा राजपुर से ४ मील पूर्व की ओर है। राजपुर से वहाँ पहुँचने के लिए डाँडी का किराया डेढ़ रुपये और घोड़े का एक रुपया होता है। यदि आप पैदल चल सकें तो कुली आपका सब बोझा अपनी पीठ पर लादकर और केवल आठ आने लेकर आपको निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। राजपुर में एजेन्सियाँ स्थापित हैं, जो यानों, खाद्य सामग्रियों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करती रहती हैं। इस कारण यात्रियों को कोई असुविधा नहीं होती।

राजपुर से कुछ ही दूर चलने पर नागल नाम का एक क़सबा मिलता है, इसे टेहरी-राज्य और देहरादून की सीमा पर बसा हुआ समझना चाहिए। टेहरी-राज्य के साथ व्यापार का यह प्रधान केन्द्र है। राज्य भर की निर्यात की वस्तुएँ पहले यहाँ लाई जाती हैं और फिर यहाँ से अन्यत्र भेजी जाती हैं। इस क़सबे से कुछ आगे चलते ही ऐसा ज्ञात होता है मानो हम किसी ऐसे भूखण्ड में आगये हैं जो हमारे लिए सर्वथा नया है। रीति-रस्म, चाल-ढाल, वेष-भूषा सभी कुछ भिन्न प्रकार का। पर्वतश्रेणी को पार करके जब एक छोटी-सी घाटी में प्रवेश करते हैं तब नीचे गहराई की ओर देखने पर नदियों से निकाली गई नहरों की बल खाती हुई सर्पाकार आकृतियाँ बड़ी सुहावनी लगती हैं। हिमालय के ग़रीब निवासियों के छोटे-छोटे घर और उनपर रखे हुए घास-फूस के ढेर इस जाति की आर्थिक अवस्था का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं। घाटी को पारकर एक सूखी नदी में उतरना होता है और कुछ दूर तक बालुकामय मार्ग पर चलना होता है। जहाँ रेतीली भूमि का अंत होता है, वहाँ पर्वतश्रेणी लतावेष्टनों से आवेष्टित बड़ी ही मनोरम दिखाई पड़ती है। घंटों देखते रहिए, आँखें थकती ही नहीं, न हृदय उस स्थान को छोड़कर आगे बढ़ना चाहता है। इस सुन्दर हरीतिमा के मध्य भाग से उठे हुए कच्ची चट्टानों से निर्मित उत्तुङ्ग भूधर शृंगों पर कपिगण बारहों मास किष्किंधा का दृश्य उपस्थित किया करते हैं। कभी-कभी वन-प्रान्त हिंस्र-जन्तुओं के नाद से भी काँप उठता है। यह भी यहाँ की सुन्दरता का ही एक चिह्न है।
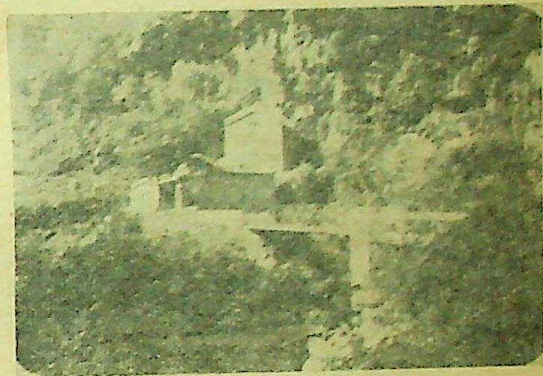
गुहा के द्वार पर पर्वत से होनेवाले निरंतर जलवर्षण का एक दृश्य

भूमि पद-पद पर नया रूप धारण करती है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, रहन-सहन का ढंग बदला हुआ दिखाई पड़ता है। न यहाँ कोट दिखाई पड़ते हैं, न पैंट। घुटनों तक धोती पहने तनीदार अँगरखी कसे और सिर पर पगड़ियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वत और जलप्रपात

बाँधे पहाड़ी पुरुष दिखाई पड़ते हैं—खेती-बारी या गृहकार्यों में संलग्न या हाथों में दरातियाँ लिये कमर में रस्सियाँ बाँधे घास काटने के लिए अग्रसर पहाड़ी स्त्रियाँ तलहटी के इन विचित्र जन्तुओं को विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखती हुईं। कुछ आगे बढ़ने पर छोटे-छोटे खेत दिखाई पड़ते हैं। हमारे लिए यह समझना भी कठिन हो जाता है कि ये छोटे-छोटे ढालू खेत जोते किस तरह जाते होंगे ? परन्तु वे पहाड़ी कृषक कठिन परिश्रम के द्वारा और साहसपूर्वक वनैले पशुओं का सामना करते हुए धरतीमाता के अंक से उदर-पोषणार्थ कुछ न कुछ निकाल ही लेते हैं।

धीरे-धीरे सहस्रधारा निकट आ जाती है। जलाशयों की प्रचुरता हो जाती है। पर्वतों से निकल-निकलकर जल छोटी-छोटी नहरों के रूप में आस पास के खेतों में बहने लगता है। ज्येष्ठ में भी ऐसा लगता है मानो घोर वर्षा-काल है। हरियाली के बीच-बीच वन्य फूलों की चटकती कलियाँ वहाँ की शोभा में चार चाँद जोड़ देती हैं। खेतों के मेड़ों पर पोदीना-पिपरमेण्ट के पौधे उगे दिखाई पड़ते हैं जो वायु में सुगन्ध वितरित कर अभ्यागतों का स्वागत करते हैं। जलप्रपातों की घड़घड़ाहट और उनके किनारे लगी हुई पनचक्कियों का शब्द एक में मिल जाता है।

गर्मियों में भारत के गर्म प्रान्तों के जो लोग मसूरी, चकरौता, कालसी आदि में वायु-परिवर्त्तनार्थ आते हैं वे सहस्रधारा के दर्शन भी अवश्य करते हैं। फलतः इन्हीं दिनों सहस्रधारा में यात्रियों की संख्या बढ़ जाती है। दिन भर टोलियों पर टोलियाँ सहस्रधारा की ओर अग्रसर दिखाई पड़ती हैं। मुख्य स्थान पर पहुँचने पर हिमालय की त्रिविध समीर मार्गजनित श्रम को हर लेती है। दोनों ओर विशालकाय पर्वतों के बीच से बहनेवाली एक सरिता की कलकल ध्वनि और घास काटनेवालों के मर्मभेदी राग दर्शकों के चित्त को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। मार्ग में स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे जल-स्रोत अपनी तुच्छ भेंट लेकर महानदी के अंक में विलीन होते बड़े सुन्दर लगते हैं।

दोनों प्रान्तों की तलहटी में कई ऊँची-ऊँची चट्टानें नदी के किनारे-किनारे दूर तक चली गई हैं। इन्हीं में से एक के ऊपर एक धर्मशाला बनी हुई है। है तो यह यात्रियों के आराम के लिए, पर इसका प्रयोग किसी एक आध सौभाग्यशाली के ही बाँट में पड़ता है। जो यात्री सवेरे पहुँच गया, उसने अपना आसन जमाकर उसे गृहस्थी का विराट् रूप दे डाला। फिर औरों के लिए वहाँ पैर रखना मुश्किल हो जाता है। फिर भी उसके पास का विस्तृत क्षेत्र ऐसा है, जहाँ यात्री दोपहरी सुख से बिता सकते हैं। सामने ही पर्वत की तलहटी में सहस्रधारा का उत्तुङ्ग शिखर दिखाई पड़ता है। पर्वत दूर तक फैला हुआ है और अनेक प्रकार के फूलदार पौधों तथा लताओं से घिरा हुआ है। इन लताकुंजों की जड़ों में होकर जल बहता रहता है जो पानी की बड़ी-बड़ी सहस्रों धाराओं के रूप में पर्वतशिखर से श्रावण की झड़ी की भाँति झरा करता है। इसी पर्वत के अन्तस्तल में सहस्रधारा की

सहस्रधारा में नदी और झरनों का एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
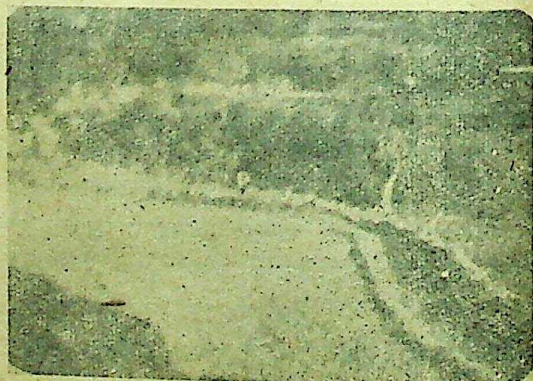
प्रसिद्ध गुहा है। पर्वत के ऊपर से जलवृष्टि गुहा के सामने के एक संकीर्ण मार्ग पर हुआ करती है। गुहा देखने जाने के लिए पर्वत के किनारे-किनारे जाना होता है। ऊपर से जलवृष्टि होती रहती है। २०-३० गज चलकर गुहा के द्वार से होकर अन्दर जाना होता है। यह गुहा १५-२० फ़ुट लम्बी चली गई है। २-३ मनुष्य एक साथ इसमें जा सकते हैं। गुहा पक्की सीमेंट की बनी हुई-सी मालूम होती है क्योंकि यहाँ के इस जल में सीमेंट का असर है। कुछ दिन तक पेड़ की पत्तियाँ, लकड़ी आदि इस जल में रहने से पत्थर की भाँति सख़्त हो जाती हैं। गुहा के अन्दर निर्मल जल बहता रहता है। सामने की ओर से गुहा खुली हुई है। सामने का पर्वतशिखर, नीचे बहती हुई सरिता तथा उसमें अवगाहन करता हुआ जनसमुदाय, स्नान-ध्यान से निवृत होकर पास ही किसी विशाल शिला की आड़ में धूप से बचकर बैठी हुई रसिकमंडली की हर्ष-ध्वनि--ये दृश्य आनन्ददायक होते हैं। गुहा के अन्तिम भाग में एक बहुत गहरे जल-कुंड में अनन्त जलराशि भरी हुई है। वहाँ पर कोई स्नान नहीं करता। दूर से ही देखकर लोग लौट आते हैं। फिर लौटते समय ऊपर से जलवृष्टि का नयनाभिराम दृश्य नेत्रों के सामने पड़ता है।

गुहा से लौटकर कुछ गज के फ़ासले पर एक बहुत बड़ी शिला के ऊपर एक मन्दिर की स्थापना की गई है। इस मन्दिर के दो भाग हैं। ऊपर के भाग में शिव-मूर्ति की स्थापना की गई है तथा नीचे के भाग में एक अत्यन्त शान्त तथा नीरव कमरा ध्यान तथा प्राणायाम के लिए है। इसी

पर्वत से सटा हुआ एक सुन्दर मंदिर
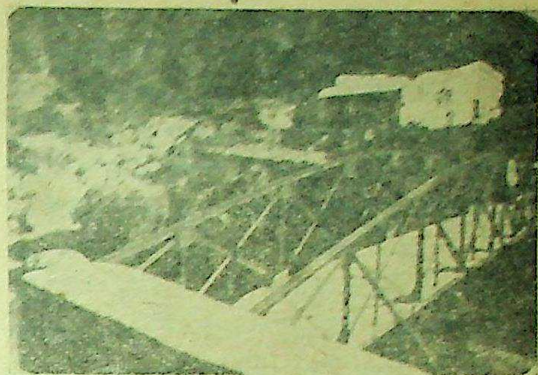
धर्मशाला और नदी का पुल
इसी धर्मशाला के नीचे गंधक का सोता है।

पत्थर की जड़ में होकर सरिता बहती है। मन्दिर के पास ही एक दूसरा मन्दिर पर्वत से बिलकुल मिला हुआ है। उसके गुम्बज पर्वत की ऊँची चोटी पर मिल गये हैं। दूर से देखने पर ये गगनचुम्बी कलश अत्यन्त भले मालूम होते हैं। मन्दिर के पास के एक या दो कमरों में २-४ संन्यासी सदा ही निवास करते हैं।

मन्दिरों तथा गुहा को देखने के पश्चात् यात्रीगण नीचे सरिता में अवतरण करते हुए पास ही गंधक के चश्मे में अवगाहनार्थ आ विराजते हैं। यहाँ पर पहाड़ की जड़ में धर्मशाला के नीचे पानी फ़ौवारे की तरह जमीन से फफक-फफक कर बाहर निकलता रहता है। यह जल पास ही बने हुए एक कुण्ड में इकट्ठा होता रहता है। यह कुछ पीले रंग का दिखाई देता है। पीले ही रंग की कुछ काई पत्थरों पर जम जाती है। यही गंधक का जल है जो नदी के जल से कुछ अधिक ठंडा रहता है। इससे आस-पास के स्थानों में गंधक की बू फैलती रहती है। यात्री लोग ख़ूब देर तक इस पानी में स्नान करते हैं। यह स्नान चर्म-रोगों के लिए बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ है और इस जल को पीना उदर-रोगियों को लाभदायक कहा गया है। दूर-दूर के चर्मरोगी यहीं पर रहकर १-२ माह में दुष्ट रोगों से छुटकारा पाकर चंगे होकर घर लौटते हैं। एक तो पर्वतों का जलवायु यों ही स्वास्थ्यप्रद होता है फिर यहाँ गंधक के जल होने से और भी विशेषता हो जाती है। यहाँ का निवास भी अधिक ख़र्चीला नहीं है। 'सहस्त्रधारा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निवासियों के बनवाये हुए कई मकान ऐसे हैं जो कि किराये पर प्राप्त हो सकते हैं। एक साधारण से कमरे का किराया २-३ रुपये से अधिक नहीं होता। खाद्य तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्री शहर देहरादून के भाव से थोड़े ही अन्तर पर प्राप्त हो सकती है। कारण, न तो शहर यहाँ से अधिक दूरी पर है और न यातायात के साधन दुर्लभ हैं। दूध-दही पास ही के निवासियों से शुद्ध तथा उचित भाव पर प्राप्त हो सकता है।

अन्यान्य स्थानों की भाँति आर्डर देने पर यात्रीगण सब प्रकार का भोजन उचित मूल्य पर पा सकते हैं। यदि कोई टोली पिकनिक के तौर पर स्वयं अपना भोजन तैयार करने की इच्छा करे तो बर्तन-भाँड़े तथा दाल-चावल, घृत, मैदा आदि वस्तुओं की व्यवस्था भी हो जाती है।

गंधक के सोते के पास ही मूर्ति बनाने के श्वेत पत्थर की छोटी खान है। यहाँ से बहुत-सा पत्थर खोद-खोदकर बाहर ले जाया जाता है।

चाँदनी रात में सहस्रधारा का दृश्य और भी रमणीय हो जाता है। उस समय के प्रशान्त वातावरण में वनदेवियों का गान और झरनों का वाद्य स्पष्ट सुनाई पड़ता है। प्रस्तरखंडों पर बिछली हुई चंद्रमरीचिकायें सहस्रों सहस्र-धाराओं की प्रतिबिम्ब-सृष्टि कर देती हैं और मानव-हृदय में उस महत् शक्ति के सौन्दर्यपूर्ण गौरव का आभास देती हैं जिसकी विराट्ता में इस हिमालय की ही क्या, इस भूमंडल की सत्ता भी एक अणु के बराबर है। वस्तुतः पहाड़ ही ऐसे स्थान हैं जहाँ हमें जगन्नियंता की विशालता साकार रूप में दिखाई देती है।

अतीत

श्रीयुत शान्तिनन्दन, एम० ए०

है चित्र कहाँ वह ? ओ अतीत !

वह उषा-काल शीतल समीर,
वह हरित वाटिका सरित-तीर,
वे तरु-माला पर व्योम-वीर
प्रमुदित गाते स्वच्छन्द गीत।
है चित्र कहाँ वह ? ओ अतीत !

आलिंगन करती लता-बेल,
मुख चूम खेलते फूल खेल,
मधुमय जीवन का मधुर मेल
हो प्रसरित करता छवि पुनीत।
है चित्र कहाँ वह ? ओ अतीत !

लजती संध्या प्रिय सुध विभोर,
वन, उत्सुक, सरिता उर हिलोर,
जाती हरिनी हो हरिन ओर,
इठलाती गर्वित रहित भीत।
है चित्र कहाँ वह ? ओ अतीत !

तारों से नभ की भरी गोद,
सर उर पर कुमुदिनि सप्रमोद,
शिशु खेल खेलते कर विनोद
गा चन्द्रप्रभा में अमृत गीत
है चित्र कहाँ वह ? ओ अतीत !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर

श्रीयुत दीपक रामनगरी

"ज़रा सुनो तो !"

डेवढ़ी के बाहर क़दम रखकर महेन्द्र फिर रुक गया। उसने पूछा—"क्या कुछ कह रही हो ?"

"हाँ।" कमला पास आकर बोली—"कहाँ जा रहे हो ?"

सिगरेटकेस से सिगरेट निकालते हुए महेन्द्र ने कहा—"जहाँ रोज़ जाता हूँ— डिस्पेंसरी।"

"भाड़ में जाय तुम्हारी डिस्पेंसरी, एक दिन के लिए भी तुम्हें डिस्पेंसरी से फ़ुर्सत नहीं मिलती।"

"यह तुमको आज क्या हो गया है, कमला ?" महेन्द्र ने हँसते हुए कहा—"डिस्पेंसरी भाड़ में चली जायगी तो ये जो मुट्ठी-मुट्ठी भर रुपये आते हैं, कहाँ से आयँगे ?"

"मुझे रुपये नहीं चाहिए, मैं तो तुम्हें चाहती हूँ।"

दोनों कोच पर बैठ गये।

"तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, कमला। जब से तुम आई हो तभी से डिस्पेंसरी चलने लगी है। इससे पहले तो सुबह से शाम तक हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता था, किसी की सूरत ही नज़र न आती थी।"

"डाक्टरों का पेशा भी कितना बुरा होता है। इनके यहाँ छुट्टी तो कोई चीज़ ही नहीं।"

महेन्द्र हँसने लगा।

कमला कहती रही—"डिस्पेंसरी भी देखो और मेरे पास भी रहो। यह क्या कि हर समय डिस्पेंसरी, डिस्पेंसरी।"

"तुम भी अजीब हो !" महेन्द्र उठ खड़ा हुआ।

"तो चले कहाँ ?"

"कह तो दिया, डिस्पेंसरी।"

"कब तक आओगे ?"

"कह नहीं सकता, जैसी सूरत हो।"

"थोड़ा और बैठो।"

"आज सुबह ही सुबह तुम्हें क्या हो गया है ?"

"तुमसे बातचीत करने को जी चाहता है।"

"रात भर तो दिमाग चाटती रही हो।"

"और तुम चुप थे ?"

महेन्द्र सिगरेट की राख झाड़ने लगा।

"आज तुम्हें दिन भर मेरे पास रहना होगा।"

"ज़रा यह तो सोचो, कितने आदमी मेरी राह देख रहे होंगे।"

"कमला चुप थी।"

महेन्द्र पत्नी के पास बैठ गया। "बिना गये काम न चलेगा, कमला।"

"आज तुम नहीं जा सकते।"

महेन्द्र समझ गया कि आज कमला आसानी से माननेवाली नहीं। उसने डायरी निकालकर देखी। कई रोगियों को देखना था।

"मुझे आज जाने दो, कमला। कल दिन भर तुम्हारे पास रहूँगा।"

"नहीं, आज न जाओ। देखो आजकल तुम मेरी कोई बात नहीं मानते !"

"भला मैं तुम्हारी कौन-सी बात नहीं मानता ?"

"यही एक बात नहीं मान रहे हो।"

"कह तो दिया, आज लाचारी है।"

"तो कब तक वापस आओगे ?"

"जहाँ तक जल्द सम्भव होगा।"

"वही खाने के समय आओगे, खाकर फिर चले जाओगे ! और रात को वापस आओगे। तुम्हीं सोचो, मेरा समय कैसे कटता होगा।"

"रेडियो सुना करो, कोई किताब लेकर...."

"मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।"

"अच्छा, आज बहुत जल्द आने की कोशिश करूँगा।"

"अच्छा एक बात का वादा करो।"

"कहो, क्या कहती हो ?"

"आजकल एक बहुत अच्छा फ़िल्म चल रहा है, मुझे मैटनी-शो में ले चलोगे—तीन बजे ?"

"अच्छा, यह बात है ! तो साफ़ क्यों नहीं कहती ? मैं ज़रूर ले चलूँगा।"

"सच कहते हो ?"

"बिलकुल सच।"

"और अगर घर ही न आये ?"

"मैंने तुमसे कभी झूठा वादा नहीं किया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं। मेरा मतलब यह नहीं है। मैं कहती हूँ, अगर कोई काम निकल आया?"

"अगर कोई काम आया भी तो उसे लौटकर करूँगा। मैं अभी फ़ोन से टिकट बुक कराये लेता हूँ।" महेन्द्र उठ खड़ा हुआ।

निस्संदेह कमला का समय बड़ी व्यग्रता के साथ बीतता। घर में और कोई था नहीं। महेन्द्र नित्य बहुत रात गये घर आता। वह इतना थका होता कि अच्छी तरह बात-चीत भी न कर सकता। इधर कमला को सिनेमा से बहुत प्रेम था। लेकिन महेन्द्र को अपनी व्यस्तता से इतनी फ़ुर्सत ही न मिलती कि वह कमला को सिनेमा ले जाता। कमला कभी-कभी अपनी सहेलियों के साथ जाती, मगर उसे इनके साथ जाने में आनन्द न आता।

कमला महेन्द्र के बारे में भी सोचती, बेचारे दिन भर कितनी जान तोड़ मेहनत करते हैं। सुबह जलपान करके चले जाते हैं और कभी एक बजे दिन को आते हैं! भला इतने बेवक्त कहीं खाना खाया जाता है? इसी से तो इतने दुर्बल हो गये हैं। चेहरा कैसा निस्तेज हो गया है? पहले कमला भी महेन्द्र की प्रतीक्षा में बैठी रहती, और उसी तरह वक्त-बेवक्त खाना खाती थी।

महेन्द्र कहता—"तुमने यह क्या किया, कमला?"

कमला ज़रा-सा हँसकर कहती—"क्या?"

"तुमने अभी तक खाना क्यों नहीं खाया?"

"तुम भी तो अभी इसी तरह हो।"

"मेरी बात और है। मैं तो वक्त-बेवक्त खाने का आदी हो गया हूँ।"

"तुम्हारे साथ मुझे भी इसकी आदत हो गई है।"

"नहीं कमला, ऐसा न किया करो। नहीं तो तुम्हारा स्वास्थ्य खराब हो जायगा।"

"तो समय से आकर खाना क्यों नहीं खा लिया करते?"

"तो क्या मैं जान-बूझकर बेवक्त आता हूँ?"

कमला चुप हो जाती!

महेन्द्र कहता—"सुनो कमला। मैं जो कुछ कहता हूँ एक डाक्टर की हैसियत से कहता हूँ। अगर इस उम्र में तुम समय से खाना न खाओगी और तुम्हारा स्वास्थ्य खराब हो गया तो सोचो तुम्हारे बच्चे कितने दुर्बल होंगे!"

महेन्द्र के बहुत समझाने से कमला समय से खाना खाने लगी।

कमला इसी तरह चिन्ता-सागर में डुबकियाँ खाती रही। 'अगर आज उसके कोई बच्चा होता तो उसका जीवन कितना आनन्दमय होता?' उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। दो बार अवसर भी आया, परन्तु उसकी मा बनने की अभिलाषा पूरी नहीं हुई! उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। लोग उसे बाँझ कहेंगे। लेकिन वह तो बाँझ नहीं है। क्या दूसरों के बच्चे नहीं मरते? उसके भी मर गये। कमला ने अपने आँसू पोंछ डाले।

महेन्द्र ठीक साढ़े तीन बजे घर वापस आया। कमला को अकेले में नींद नहीं आती थी। वह चुपचाप पलँग पर लेटी हुई थी! महेन्द्र को देखकर उठ बैठी। उसने कहा—

"तुम आगये! कितने बजे होंगे?"

महेन्द्र ने घड़ी देखकर कहा—"साढ़े तीन।"

कमला ने हँसकर कहा—"चलो जल्दी से हाथ-मुँह धोकर खाना खा लो। मुझे कपड़ा पहनने में कुछ समय लगेगा।"

"चलो" महेन्द्र ने बैग को टेबुल पर रखते हुए कहा। कमला बोली—"तुम खाना खाकर ज़रा देर आराम करना जब से मैं तैयार हो जाऊँगी!"

(२)

चार बजने में कुछ मिनट बाक़ी थे सिनेमा-हाउस क़रीब ही था, घर की मोटर थी, कमला ने सर के बाल सँवारने के बाद पूछा—"बताओ तो कौन-सी साड़ी पहनूँ?"

"अब इसे मैं क्या जानूँ?"

"नहीं बता दो।"

"तुम जिसे पसन्द करो पहन लो।"

"तुम उठा दो कोई-सी।"

"हमेशा बच्ची ही बनी रहोगी तुम?"

कमला हँसने लगी!

महेन्द्र पलँग पर लेटकर अँगरेज़ी का एक मैगज़ीन देखने लगा, मगर वह बहुत थका हुआ था, जी न लगा! वह कमला के बारे में सोचने लगा। कमला सचमुच, अकेलेपन से घबड़ाती होगी। घर में कोई नहीं जिससे वह बात-चीत करके समय गुज़ारे। मगर वह भी क्या करे? वह चाहता तो है कि कमला के पास रहे, उससे बात-चीत करे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर समय ही नहीं मिलता। वह इतना परिश्रम किसके लिए करता है? अपने लिए नहीं, कमला के लिए। इसलिए कि उसके बाद कमला को किसी तरह की तकलीफ़ न हो। वह नहीं चाहता कि कमला किसी के लिए भार हो! उसने कमला के लिए बहुत कर दिया है। और अभी बहुत कुछ करने की इच्छा है।...अच्छा अगर कमला के स्थान पर वह होता उसे भी कमला की तरह अकेले रहना पड़ता। सिवा खाने-पीने, बैठने, सोने, रेडियो सुनने व किताब पढ़ने के कोई काम न होता—तो उसका जीवन कैसा होता।"

"क्या सोच रहे हो पड़े-पड़े?"

"तुम्हारे ही बारे में, आज तुम कितनी सुन्दर मालूम हो रही हो।"

"लगे बनाने।"

"बनाता नहीं सच कह रहा हूँ। बहुत जल्द तैयार हो गईं अभी तो देर है। आओ ज़रा बैठो।"

"कितने दिनों पर आज तुम इस समय घर पर हो।" कमला महेन्द्र के पास बैठ गई।

"समय ही नहीं मिलता, तो क्या करूँ कमला?"

"समय नहीं मिलता, समय नहीं मिलता, सुनते-सुनते कान पक गये। अच्छा अब तैयार हो जाओ! समय हो गया!"

"मैं तो तैयार हूँ।"

इतने में नौकर ने कमरे के बाहर से आवाज़ दी—"साहेब!"

"क्या है रे भोला"—महेन्द्र ने पूछा।

"एक बाबू साहब आये हैं, आपको बोला रहे हैं!"

"क्या नाम बताया है, इसके पहले भी कभी आये थे?"

"जी नहीं। कहते थे बहुत ज़रूरी काम है!"

कमला बोली—"बस हो चुका सिनेमा जाना!"

महेन्द्र उठकर बैठ गया। सुन कह दे, आज डाक्टर साहब को समय नहीं है। कल आइएगा!"

नौकर चला गया।

"अब तुम सिनेमा नहीं जा सकते"—कमला ने कहा।

"नहीं कमला ऐसा नहीं, आज मैं तुम्हारे साथ ज़रूर सिनेमा चलूँगा।"

इतने में भोला ने फिर आकर कहा—"साहेब वह नहीं जाते कहते हैं, बड़ी ज़रूरत है! कृपा करके ज़रा चले आयें।

महेन्द्र को क्रोध आगया—"कह दो वह किसी तरह नहीं आ सकते?"

भोला बाहर चला गया।

"इस समय मैं कहीं न जाऊँगा।"

"हर्गिज़ नहीं।"

"अच्छा तो अब चलना चाहिए, पाँच बजे शो शुरू होगा, साढ़े चार बज गये!"

दोनों ऊपर से उतरने लगे, भोला आकर सामने खड़ा हो गया। "वह नहीं जाते, साहेब।"

"हे ईश्वर! अच्छा कमला! तुम चलकर गाड़ी में बैठो, मैं अभी आ रहा हूँ।"

कमला जाकर गाड़ी में बैठी, और महेन्द्र परदा खिसकाकर मुलाक़ात के कमरे में दाखिल हुआ। देखा एक आदमी घुटने से ऊपर तक मैली-मैली धोती पहने बैठा है! चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। बहुत परेशान है।

"कहिए जी, आप क्या कहना चाहते हैं? डाक्टर महेन्द्रकुमार मेरा ही नाम है।"

"वह आदमी एक ठंडी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ।

"डाक्टर साहेब! मेरा घर बरबाद हो रहा है! मेरी बीवी खतरे में है।"

"लेकिन मैंने कहलाया था कि इस समय हमें फ़ुर्सत नहीं है।"

"अगर आप कृपा न करेंगे तो मेरी बीवी न बचेगी।"

"मैं बिलकुल मजबूर हूँ।"

"मैं आपके पाँव पड़ता हूँ; ज़रा आप चले चलिए।"

"किसी और डाक्टर को क्यों नहीं ले जाते, साहब! मुझे नाहक़ परेशान कर रहे हैं।"

"लोगों ने आप ही के लिए जोर दिया है। डाक्टर साहब डिलेवरीकेस है, आपके बग़ैर काम न चलेगा!"

"लेकिन मेरा जाना नामुमकिन है।"

"मेरा घर यहाँ से बिलकुल क़रीब है।"

"कुछ हो, लेकिन मैं नहीं जा सकता।"

"डाक्टर साहब दर्द से उसका बुरा हाल है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लेकिन मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ।"

"पास ही तो मेरा मकान है, डाक्टर साहब!"

"फिर भी मैं जाने से मजबूर हूँ।"

"अगर आप न गये तो उसका जीवन न बचेगा।"

कमला ने कार पर बैठते-बैठते हार्न दिया।

तुम जानते हो ऐसे केसों में मेरी फ़ीस कितनी होती है?"

"फ़रमाइए, मुझे तो नहीं मालूम!"

कमला ने फिर हार्न दिया!

"१२५) रुपये।"

वह आदमी एक बार चौंका, फिर जल्द ही सँभलकर बोला—"अच्छा दूँगा डाक्टर साहब।"

"लेकिन साहब बात यह है कि मुझे फ़ुर्सत ही नहीं है।"

"महेन्द्र जल्दी से कमरे के बाहर निकल गया, वह आदमी भी पीछे-पीछे लपका, डाक्टर साहेब... डाक्टर साहेब...।"

महेन्द्र ने कार का दरवाज़ा खोलते हुए कहा—"देख रहे हो कि मैं दूसरे काम से जा रहा हूँ! मेरे पास बिलकुल समय नहीं है।"

"डाक्टर साहेब.....।"

"जल्दी चलो, तुमने इतनी देर कर दी। अगर समय से न पहुँचे तो चलने से फ़ायदा?" कमला ने क्रोधित होकर कहा।

महेन्द्र ने गाड़ी स्टार्ट कर दी! वह आदमी निराश नेत्रों से देखता रह गया!

(३)

खेल समाप्त हुआ, गाड़ी स्टार्ट करते हुए महेन्द्र ने पूछा—"सीधे घर ही न चलूँ कमला?"

"तो और कहाँ चलोगे?"

"कैसा तमाशा था, कमला तुम्हें पसन्द आया?"

"निहायत मनोरंजक, तुम्हें पसन्द आया कि नहीं?"

"अरे कुछ न पूछो, मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि तमाशा का नशा हो जायगा।"

"इसी से तो मैं तुमसे कहती थी बार-बार देखने को!"

"अब मैं कभी-कभी जरूर देखा करूँगा।"

महेन्द्र ने गाड़ी की स्पीड बढ़ा दी। घर पहुँचकर कमला ऊपर चली गई और महेन्द्र गाड़ी रखने गैरज में गया। गाड़ी रखकर महेन्द्र कुछ गुनगुनाता हुआ मकान में प्रविष्ट हो रहा था कि उसकी नजर अपने मुलाक़ाती कमरे पर पड़ी और शामवाले आदमी का निराशाजनक और करुणापूर्ण चेहरा उसे याद आगया। महेन्द्र को अफ़सोस होने लगा कि मैंने उसके साथ इतनी निर्दयता क्यों बरती? क्यों न उसके साथ चला गया? अगर मैं कमला से समझाकर कहता तो वह ज़रूर आज्ञा दे देती। फिर 'डिलेवरीकेस' था! इसलिए मुझे किसी तरह इनकार करना मुनासिब न था! वह इसी तरह पछताता और अफ़सोस करता ऊपर गया।

"तुम इस भाँति चुपचाप क्यों हो?" कमला ने उसके चेहरे का भाव देखकर पूछा!

"मैंने बहुत बुरा किया, जो उस आदमी के साथ चला नहीं गया।"

"किस आदमी के साथ?"

"वही जो शाम को बुलाने आया था। बहुत परेशान था, उसकी बीवी 'डिलेवरीकेस' में फँसी हुई थी।"

"डिलेवरीकेस में?" कमला चौंक पड़ी, उस समय तुमने मुझसे क्यों नहीं बतलाया?

महेन्द्र ने कुछ जवाब न दिया!

"तुम्हें फ़ौरन जाना चाहिए।"

"अभी जाता हूँ!"

"पता मालूम है?"

"हाँ सामनेवाली गली में नम्बर २४ का मकान बताया था।"

"तब तो बिलकुल क़रीब ही है! बस चले ही जाओ!"

"जा ही रहा हूँ।"

महेन्द्र ने जल्दी-जल्दी बैग में ज़रूरी आलात रक्खे और मकान से निकल गया। रात के आठ बजे थे, कमला की सिनेमा की तमाम खुशी काफ़ूर हो गई। उसे एक अजीब तरह की चिन्ता का अनभव हो रहा था। वह दिल ही दिल में कहने लगी—"हे ईश्वर! बेचारी की मुसीबत दूर हो जाये! और कुशलपूर्वक गर्भ से छुटकारा मिल जाये!"

एक पतली-सी अँधेरी गली में मकान था, इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे खोजने और वहाँ तक पहुँचने में महेन्द्र को कुछ देर हो गई। मकान के अन्दर बिल्कुल सन्नाटा था! महेन्द्र ने धीरे-धीरे दरवाज़े को खटखटाया, कोई न बोला। उसने ज़ोर-ज़ोर से ज़ंजीर खटखटाई फिर भी किसी का पता न चला। अब महेन्द्र ने ज़ोर-ज़ोर से किवाड़ में धक्का देना शुरू किया। इस बार अन्दर से वही शामवाला आदमी निकला और महेन्द्र को देखकर फूट-फूटकर रोने लगा!

महेन्द्र को सब भेद ज्ञात हो गया। उसकी दशा अपराधी-सी हो रही थी! उसने धीरे से पूछा—"कब मरी?"

"पाँच बजे!" उसने रोते हुए जवाब दिया!

"बच्चा?"

"वह भी मर गया।"

"किसी दूसरे डाक्टर को नहीं बुलाया?"

"कोई नहीं मिला।"

उस समय महेन्द्र की ऐसी दशा हो रही थी, जैसे कोई हथौड़े से उसका सीना तोड़ रहा हो! वह चुपचाप घर वापस चला गया।

कमला ने उसकी सूरत देखते हुए पूछा—"क्या हुआ?"

"पाँच बजे उसका अन्त हो गया!"

"ऐं, अन्त हो गया?"

"हाँ, और बच्चा भी मर गया।"

"ऐ है। तुम चले क्यों नहीं गये।" कमला का दिल दुःख से भर गया।

"कैसे चला जाता, कमला?" महेन्द्र बैठ गया।

"हाँ तुम ठीक कहते हो, उसकी मृत्यु का कारण मैं ही हूँ।"

"तुम ऐसा क्यों विचार करती हो, कमला?"

"मेरी ही वजह से तो तुम देखने नहीं जा सके।"

"यह कोई बात नहीं।"

"क्यों नहीं है? अगर तुम्हें मेरे साथ सिनेमा न जाना होता तो तुम क्यों जाने से इनकार करते?"

महेन्द्र के हाथ से बहुत-से मरीज मर चुके थे और आगे भी मरेंगे। परन्तु आज महेन्द्र को ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे वह स्त्री अपनी मौत से नहीं मरी, महेन्द्र ने उसे मार डाला!

मध्य-भारत

पंडित भैरवदीन मिश्र, साहित्य-रत्न

अभी तक अवशेष रक्खी सभ्यता अपनी पुरानी।
मध्य-भारत! धन्य है तू अमर है तेरी कहानी॥
युगों से तेरे हृदय में प्रेम की रस-धार बहती।
सोन, रेवा, ताप्ती की लोल-लहरों में उछलती॥
'मालवा' के अधर पर मुस्कान तेरी खेलती है।
अनिल के कोमल हृदय में सुधा-धार उँड़ेलती है॥
सरस होते हैं जिसे पी कल्पना के प्राण-प्यासे।
रंगशाला 'मेघ' की रचती कला निज करुण कर से॥
सरल शिशु-सा खेलता है प्रकृति छवि की गोद में तू।
ओस के कण ढालता है पुलक के कण मोद में तू॥
चिर-युगों से रच रहा तू वीरता के गान निर्मम।
विजय-पट को कर रहा है रक्त-रञ्जित-प्राण कुंकुम॥

सजग प्रहरी-सी खड़ी हैं सतपुड़ा-विन्ध्या भुजायें।
फैलकर रक्षार्थ 'दक्कन' की मिटातीं आपदायें॥
भूमि 'बाघेली-बुँदेली' में भरा आह्लाद तेरा।
धर्म की छाया तले है दूर सब अवसाद तेरा॥
शुचि-पुरातन संस्कृतियों की किरण-रेखा रुचिर है।
रँग रही है तूलिका से मुकुल तेरा उर अजिर है॥
यह विराट 'विराटपुर' है खेलता तेरे हृदय में।
विजय का अरमान छाया 'अजयगढ़' के खण्डहर में॥
'तानसेन' महान गायक ने मनोहर गान गाये।
'छत्रसाल' बुन्देल थे तेरा सुयश जग में बढ़ाये॥
मेघ-मालायें गरजतीं खड्ग-विद्युत ले करों में।
हैं अमर आख्यान तेरे वीरता भरतीं स्वरों में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारतीय उद्योग और युद्ध

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

(२)

योजना आवश्यक है

भारत का उद्योगीकरण किया जाय, इसमें दो मत नहीं हो सकते। मगर यह योजनापूर्वक होना चाहिए। यह उद्योगीकरण की योजना सम्पूर्ण राष्ट्रीय योजना का एक भाग होनी चाहिए, क्योंकि एक क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित करने से कुछ लाभ नहीं, जब अन्यों में अव्यवस्था हो।

राष्ट्रीय योजना-समिति राष्ट्र के लिए एक योजना बना रही है और वह शायद इस लड़ाई के समाप्त होने से पहले प्रकट भी न हो। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी योजनायें बनाई हैं। इनमें सर मोक्षमुण्डम विश्वेश्वरैया की योजना पिछले पाँच-छः साल से देश के सामने है। उसने देश को अपनी ओर आकर्षित भी किया है। उसके अनुसार युद्ध-काल में कम से कम ५०० नये उद्योग-धंधे जारी हो सकते हैं।

उस योजना का सार इस प्रकार है—आधुनिक उद्योगों और तैयार माल को २४ शीर्षकों के नीचे लाया जा सकता है और ये भी तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं—(१) इंजीनियरिंगवर्ग, (२) रासायनिकवर्ग और (३) व्यक्तियों-द्वारा चलाये उद्योग, जैसे वस्त्र-व्यवसाय, जहाज-निर्माण और नन-फेरस (लोह-विहीन) धातु, जिनमें इंजीनियरिंग या रसायन-शास्त्र या दोनों का उपयोग होता है।

केन्द्रीय गवर्नमेंट हर एक प्रान्तीय गवर्नमेंट को कुंजी उद्योग चलाने के लिए कहे। चाहे वह कम्पनी चलाये या सरकारी फंड से या दोनों के संयुक्त धन से चलाया जाय और सरकार सूद की गारंटी दे। साथ ही देहाती जनता को काम और रोजी देने के लिए छोटे-छोटे उद्योगों का जो उस ज़िला या प्रदेश में सम्भव हों, प्रारम्भ किया जाय। ये उद्योग गृह-व्यवसाय भी हो सकते हैं। कुंजी उद्योग से उस इलाके के लोगों की माली हालत सुधरेगी और सहायक उद्योगों से वह इलाका अपनी आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर हो जायगा। उद्योग प्रारम्भ करने से पहले वहाँ की सर्वे कर लेना ज़रूरी है। स्रोतों, पेशों और उद्योगों की जाँच करने के बाद उत्पादन का एक स्टैंडर्ड बनाना चाहिए और आमदनी उसके मुताबिक़ करनी चाहिए। इस समय पाँच जनों का एक ग़रीब परिवार औसतन १२) रु० प्रतिमास कमा रहा है। अधिक घंटे और लाभजनक पेशे में काम करने से आमदनी दुगनी हो सकती है और होनी चाहिए और यथाशीघ्र २५) हो जानी चाहिए। देहातों में एक परिवार की आमदनी २५) मास से अधिक नहीं है। इनकी आमदनी भी कम से कम समय में ४०) या ५०) हो जानी चाहिए। आर्थिक प्रगति की योजना का निकट भविष्य में यही उद्देश्य होना चाहिए।

पेशों की सर्वे

लोग क्या काम कर रहे हैं और किस-किस पेशे में लगे हुए हैं, इसकी सर्वे भी होना आवश्यक है। लोगों को प्रेरणा करनी चाहिए कि वे अलाभजनक पेशे को छोड़कर लाभजनक पेशे में लगें। एक ज़िले का संगठन करने के लिए सुपरिंटेंडेंट और उसके दो या तीन सहायक होंगे। इस स्टाफ़ का ख़र्च सरकार को उठाना चाहिए। खेती और उद्योग दोनों के लिए पूँजी आवश्यक होगी। इसके लिए ज़िले के सब स्रोतों से उत्पन्न कुल आमदनी के आधे के समान धन कम सूद पर उत्पादन कार्यों, विशेषतः उद्योगों के लिए चलन में रहना चाहिए। उद्योगों और कार्यों की तालिका और आँकड़े तैयार करने के लिए सुपरिंटेंडेंट के साथ एक स्टाफ़ रहना चाहिए। औद्योगिक उत्पादन और जनता में सहयोग स्थापित करने के लिए ज़िले के प्रतिनिधि नागरिकों और व्यवसायियों की एक कौंसिल सुपरिंटेंडेंट को सलाह देने के लिए होनी चाहिए। खेती, उद्योग, व्यापार और अन्य पेशों की पैदावार बढ़ाने के लिए जनता में प्रचार करना आवश्यक है, ताकि सारी जनता की शक्ति योजना को पूरा करने में लगी रहे।

खेती और उद्योगों का विस्तार करना चाहिए। आधुनिक ढंग की कम्पनियों व सहोद्योग-समितियों जैसी संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिए। लोगों को अनुशासन में रहकर काम करने की शिक्षा देनी चाहिए और आधुनिक ढंग से व्यवसाय करना बतलाना चाहिए। प्रतिवर्ष गाँवों की आमदनी का लेखा तैयार करना चाहिए। इससे मालूम होगा कि उत्पादन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमदनी में किस कम से वृद्धि हो रही है। अमरीका के प्रतिकूल हमारे देश में देहाती जनता बड़ी संख्या में है और उसको साल में ४ से ६ मास तक कोई काम नहीं रहता। हमारी आबादी का केवल १० प्रतिशत पढ़ और लिख सकता है, जब कि अन्य सभ्य देशों में सब लिख-पढ़ सकते हैं। यदि स्वभाव और व्यवहार में ज़रूरी परिवर्तन किये जायँ तो जीवन-निर्वाह का मानदण्ड अपने आप ऊँचा हो जायगा।

खेती पर जीवन-निर्वाह करनेवाली आबादी में से कम से कम आधी आबादी को उद्योगों, व्यापार, ट्रान्सपोर्ट और अन्य उपेक्षित पेशों में लगाना चाहिए। भारत में इसपात का उत्पादन शीघ्र १२,५०,००० टन हो जायगा और ५,००,००० टन इसपात का इस समय आयात होता है। जनता के जाग्रत होने पर कम से कम यह उत्पादन अगले दस सालों में दसगुना हो जायगा। इस प्रकार यह आधारभूत उद्योगों को और देश की आवश्यकता को पूरा करेगा। मैशीनरी और मैशीन के कल-पुर्ज़ों का ज्ञान आवश्यक है। मैशीनरी और मैशीन के कल-पुर्ज़ों के उत्पादन की ज़रूरत है। ज़िलों की या जो भी युनिट बनाया जाय, उसकी आमदनी के आधे के बराबर सरकारी गारण्टी पर क़र्ज़ लिया जाय और उससे उद्योग जारी किया जाय। गवर्नमेंट को केवल पहले तीन या चार साल ३ लाख रुपये की ग्राण्ट देनी होगी। इसके बाद उद्योग की आमदनी से ही आर्थिक प्रगति के लिए बनाये संगठन का सारा खर्च निकल आयेगा।

५०० करोड़ रुपया

सर मोक्षमुण्डम विश्वेश्वरैया का प्रस्ताव है कि ५०० करोड़ रुपया उधार लिया जाय और बैंकों के द्वारा ४-५ साल के अन्दर प्रतिवर्ष १०,००० करोड़ रुपया खेती व उद्योगों को आरम्भ करने के लिए क़र्ज़ दिया जाय। उद्योगों से ही केवल साल के अन्त में १०,००० करोड़ रुपये की आमदनी हो जायगी। भूखे और ग़रीब होने के कारण हम सबसे अधिक सस्ता पैदा कर सकते हैं। ढलवाँ लोहा, इसपात, खाण्ड, सीमेंट और अन्य कुछ चीज़ें इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। मगर पूँजी की कमी के कारण उद्योगों का विकास नहीं हो पाता। १८६० में मैसूर का बना इसपात इँग्लैंड जाता था और ब्रिटिश इसपात से उच्चकोटि का समझा जाता था। १८९८ में बम्बई का सूती कपड़ा जापान को निर्यात होता था। मगर इन दोनों चीज़ों का प्रवाह भारत को उलटा बहने लगा है। मैसूर ३० साल से छोटे वाष्प एंजिन बना रहा है। ग्रेट-ब्रिटेन से भारत में रेल-पथ ज़्यादा लम्बा है, मगर रेलवे एंजिन अभी तक आयात ही हो रहे हैं।

सरकारी नीति

१७ दिसम्बर, १९४० भारत के औद्योगिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण दिन समझा जाता, यदि सरकार भारत को आत्म-निर्भर बनाने के उद्देश्य से विमान बनाने का कारखाना खोलने में मदद देती। बँगलौर का विमान बनाने का कारखाना दो साल में आयात कल-पुर्ज़ों को जोड़कर केवल १०० विमान बना सकेगा। मई, १९३८ से सरकार के सामने मोटर का कारखाना खोलने की योजना विचाराधीन है, मगर अभी तक उसको उसने स्वीकृति नहीं दी है। सरकार यदि चाहती तो अपनी ज़रूरत पूरी करने की खातिर ही भारत में मोटर बनाने का कारखाना खोल सकती थी। १९३९ में भारत-सरकार ने ५,००० यांत्रिक ट्रक खरीदे थे। अर्थसदस्य का खयाल था कि १९४०-४१ में २४ करोड़ रुपये की ६०,००० मोटरगाड़ियाँ खरीदी जायँगी। भारतीय कम्पनी केवल प्रतिवर्ष ६,००० ट्रक सरकार को देना चाहती थी; जो वह हर साल पुरानों की जगह नये लिया करती है। मगर भारत-सरकार भारत में कारखाना न खोलकर संयुक्तराष्ट्र अमरीका को सन्तुष्ट करना चाहती थी और उसको भारत के वास्ते २०,००० से ३०,००० मोटरगाड़ियाँ बनाने का आर्डर दिया गया है। किसी विदेशी स्रोत पर निर्भर रहना, जो कि कभी बन्द हो सकता है, बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। सरकार ने अपने बचाव में जो कारण दिये हैं, वे युक्ति के सामने टिकते नहीं हैं। भारतीय कारखाना विदेश से आये कल-पुर्ज़ों को जोड़नेवाला न होता, न यह कारखाना खोलनेवालों की योजना थी। मोटर तैयार करने के लिए मैशीनरी यदि मिल भी जायगी, तब युद्ध-सामग्री तैयार करनेवाली फ़ैक्टरियों से निपुण कारीगरों के लिए प्रतियोगिता होगी और इस प्रकार युद्ध-प्रयत्नों को नुक़सान पहुँचेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि सेना विभिन्न स्रोतों से रसद लेने में आपत्ति करेगी। मगर सरकार की यह आपत्ति भी सच नहीं थी। भारतीय उद्योग के प्रस्तावकों ने स्पष्ट कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था कि वे उन कारीगरों को न लेंगे, जिनको सरकार अपने लिए सुरक्षित रक्खेंगी। इस आश्वासन के बाद सरकार के पास कोई जवाब नहीं रह गया था। पर वस्तुतः कारण और ही था। आप तैयार माल नहीं खरीदेंगे, मगर मैशीनरी खरीदेंगे और उसका मूल्य डालर में देंगे। सरकार डालर-विनिमय को बचाना चाहती थी। इसपर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि भारत की रक्षा के लिए और भारत के पैसे से नियुक्त सेना भारत में मोटरगाड़ी बनाने के मार्ग में बाधा देगी। जहाज़ बनाने के संबंध में सरकारी नीति पर हम विस्तारपूर्वक अलग कहना चाहते हैं।

भारत-सरकार ने सम्पूर्ण भारतीय डालर-स्रोत पर कमान कर लिया है और 'एम्पायर-पूल' में डालकर ब्रिटेन को स्वाधीन कर दिया है। इसके विरुद्ध आस्ट्रेलिया ने अपने सम्पूर्ण डालर-स्रोत को अपने अधीन रक्खा है। यही नहीं, डालर-स्रोतों की रक्षा के लिए उसने अपने नागरिकों को कुछ चीजें ब्रिटिश युद्ध-फंड में देने तक से रोक दिया है। आस्ट्रेलिया ने अपने डालर-स्रोतों को बचाकर मैशीनरी का आयात किया और बड़े और महत्त्वपूर्ण उद्योगों की स्थापना की। भारत डोमीनियन होता तो वह भी यही करता।

सरकार ने युद्धोत्तर-काल के लिए पुनर्निर्माण बोर्ड बनाया है। यह सरकारी सदस्यों से पूर्ण है। यह क्या काम करेगा, अभी तक प्रकट नहीं हुआ है। भारत की मूल समस्यायें हैं—ग़रीबी, बीमारी और निरक्षरता। पिछले डेढ़ सौ साल के ब्रिटिश शासन में रेलवे, सिंचाई, डाक-तार, सड़कों आदि से देश की उन्नति उलटे मार्ग पर हुई है। जनता ग़रीबी की चरम सीमा पर पहुँच गई है, रोगों से पीड़ित है और अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई है। जीवन-निर्वाह का व्यय बढ़ता जाता है, इसी के अनुपात में वेतन व आय नहीं बढ़ रही है। मन्दी आने पर भारत का क्या हाल होगा, जब योरप के सब देश मिलकर अपना माल हमारे जैसे देशों में उत्पादन-व्यय से भी कम दाम पर बेचेंगे? सरकारी नीति का यह फल है कि भारत को महँगे और चढ़े बाज़ार में नक़ली घटे मूल्य में अपना माल बेचना पड़ रहा है। युद्धकालोत्तर सस्ते और गिरते बाज़ार में कृत्रिम रूप से बढ़ाई क़ीमतों पर अपना माल बेचना पड़ेगा। युद्ध समाप्त होने पर योरप से आने-वाले सस्ते माल के हिम-प्रवाह को रोकने के लिए क्या किया गया है? क्या कोई योजना बनाई गई है? युद्ध-क्षेत्र के समान आर्थिक क्षेत्र में भी वही विजय-लाभ करते हैं जो दुश्मन के हमले का प्रतिरोध करते हैं और मुक्के का जवाब मुक्के से देते हैं। इसलिए मन्दी के विरुद्ध कवच यही है कि स्वस्थ और शक्तिशाली आर्थिक नीति ग्रहण की जाय। मगर क्या सरकार का ध्यान इधर है?

वास्तविक उद्देश्य

सरकार क्या भारत का उद्योगीकरण करना चाहती है? 'बेविन बायज़' का भेजना क्या सूचित करता है? ब्रिटेन के श्रम-मंत्री मिस्टर बेविन का यह आशावाद क्या मिथ्या है—"मैं वस्तुतः विश्वास करता हूँ कि आज हम भारतीय और अँगरेज़ मज़दूरों में एकता करके एक नवीन इतिहास का निर्माण कर रहे हैं। हम जानते हैं कि भारत का उद्योगीकरण अवश्य होना चाहिए। हम जानते हैं कि उद्योगीकरण से हमारे समान आपका जीवन भी बदल जायगा।" 'बेविन बायज़' के स्वागत में श्रममंत्री के कहे ये शब्द अभी कानों में गूँज ही रहे थे कि लन्दन के टाइम्स ने ब्रिटिश सरकार की भारतीय औद्योगिक नीति पर प्रकाश डालकर हमारी आँखें खोल दीं। टाइम्स लिखता है—"स्पष्ट है कि नवीन युद्ध-उद्योग की स्थापना करने से सामग्री और जन-शक्ति का ग़लत दिशा में प्रयोग होगा, जब कि आवश्यक प्लाण्ट और दक्ष श्रम विद्यमान नहीं हैं या साम्राज्य के अन्य भाग से प्राप्त किये जा सकते हैं, जो कार्य करने की इससे अधिक अच्छी हालत में होंगे।" पूर्वीय साम्राज्य-परिषद् के आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि सर वाल्टर मैसीग्रीन ने भी कुछ दिन पहले ऐसी ही बातें कही थीं। टाइम्स आगे लिखता है—"टैंक, जंगी जहाज़ सदृश चीज़ें बनाने के लिए भारत में नये कारखाने खोलने के लिए व्यक्तियों को सिखाने और शिक्षा देने और फ़ैक्टरियों की साज सज्जा पूरी करने में चिर काल लगेगा। इसलिए भविष्य में विमान बनाने की अपेक्षा इस समय विमान का ढाँचा बनाना अधिक बेहतर है। यह सिद्धान्त है जो कि स्वीकार किया गया है और इसी के अनुसार कार्य किया जा रहा है।" टाइम्स का यह कथन स्पष्ट रूप से बता रहा है कि आज के समान ही युद्धकालोत्तर भी भारत ब्रिटेन का बाज़ार और उसके लिए आवश्यक कच्चा माल उपजानेवाला ही रहेगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं पर बस नहीं है। युद्ध-प्रयत्नों को ज़ोरदार बनाने के लिए और लड़ाई का आवश्यक सामान तैयार कराने के लिए पूर्वीय समूह कौंसिल (ईस्टर्नग्रुप कौंसिल) की स्थापना की गई है। परन्तु भारतीय व्यापार-संघ इसकी स्थापना को अवांच्छनीय समझता था। उसने सरकार को चेतावनी दी थी—"भारत इन सालों में महत्त्वपूर्ण उद्योगों के सम्बन्ध में आर्थिक दृष्टि से स्वाश्रयी और आत्मनिर्भर बनने की लालसा रखता आया है और संघ आशा करता है कि राष्ट्रीय अर्थनीति के इस मूल सिद्धान्त के बारे में कान्फ़रेंस (ईस्टर्न ग्रुप) के साथ कोई समझौता न किया जायगा।" संघ ने यह बात आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि सर वाल्टर मैसीग्रीन के इस कथन से भयभीत होकर लिखी थी कि भारत को कोई नया उद्योग शुरू नहीं करना चाहिए। मगर हुआ वही जिसका भय था। आज आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि सर बरदाम गर्व से कह रहे हैं—"मैशीन के कल-पुर्ज़े बनानेवाली फ़ैक्टरियाँ लड़ाई से पहले केवल तीन थीं और आज ५० हैं। भारत में अभी मैशीन के पुर्ज़े बनाने का उद्योग ठीक रीति से शुरू भी नहीं हुआ है। विमान बनाने पर ७५ करोड़ रुपया खर्च हो रहा है। ३ विनाशक, १० सुरंगनाशक तैयार किये जा रहे हैं और ४०,००० वैज्ञानिकों को शिक्षा दी गई है। "आगे आपने कहा—"यह स्वाभाविक है कि पूर्वीय समूह कौंसिल में से हम अधिक भाग देनेवाले हों। हमें यह विचारना पड़ा कि साम्राज्यान्तर्गत सहयोग की इस व्यापक योजना में भारत का क्या स्थान रक्खा जाय। क्या वह चली आई परम्परा के अनुसार साम्राज्य का धान्यागार बना रहे और कभी कोई महत्त्वाकांक्षा न रक्खे?" सर वार्ट्रम स्टीवेन ने यह भी कहा—"मैं विश्वास करता हूँ कि पारस्परिक रक्षा के लिए पूर्वीय समूह के देशों के सहयोग में भावी के लिए व्यापक सहयोग के बीज विद्यमान हैं............ हम आपको मैशीनरी से लेकर ब्लूप्रिण्ट तक, टेक्नीशियन से लेकर कल्पना और विचार दे सकते हैं। इसके बदले में भारत का आध्यात्मिक उत्तराधिकार हम लेंगे। भारत को नई व्यवस्था में गर्व के साथ अपना यह पार्ट स्वीकार करना चाहिए।" सर वार्ट्रम के ये शब्द बता रहे हैं कि युद्धकालोत्तर साम्राज्य में आर्थिक दृष्टि से भारत की क्या स्थिति होगी। भारत-मंत्री मिस्टर अमरी ने जिस 'नवीन व्यवस्था' का स्वप्न भारत को दिखाया था वह यही है। ओटावा पैक्ट से जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी वह अभी जारी है। उससे पहले भारत का बाज़ार केवल ब्रिटेन के लिए सुरक्षित था। १९३२ से उसमें डोमीनियनों को भी भाग दिया गया। नवीन-व्यवस्था में भारत इसी प्रकार सहयोग देगा। भारत पहले एकमात्र ब्रिटिश पूँजीवाद का क्षेत्र समझा जाता था। अब इसका आधार विस्तृत कर दिया गया है। डोमीनियनों और संयुक्त-राष्ट्र को भी इसमें अब सम्मिलित कर लिया गया है।

आस्ट्रेलिया की प्रगति

भारत की हीन अवस्था और युद्ध-काल में भारत-सरकार की अकर्मण्यता, उपेक्षा और उदासीनता का हम उस समय तक ठीक-ठीक अन्दाज़ा न लगा सकेंगे, जब तक कि युद्ध-काल में आस्ट्रेलिया-द्वारा की गई प्रगति को हम एक नज़र से न देख लेंगे। १९४० से पहले तक औद्योगिक दृष्टि से आस्ट्रेलिया भारत के समान ही पिछड़ा हुआ था। पिछली लड़ाई में जिस प्रकार तामा का कारखाना भारत में खुला था उसी प्रकार वहाँ भी एक लोहा और इसपात का कारखाना खुला था। आज आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य का युद्ध-सामग्री का कोठार हो रहा है। आस्ट्रेलिया की औद्योगिक उत्पादन-शक्ति २० गुना बढ़ गई है और इस साल के अन्त तक ६० गुना बढ़ जायगी। जंगी वाहन, औद्योगिक उपकरण और लड़ाई की छोटी और बड़ी चीज़ें बनाने में वहाँ १,५०,००० लोग काम कर रहे हैं। लड़ाई में भी ६ लाख सैनिक गये हैं जब कि इसकी कुल आबादी ७० लाख है।

विक्टोरिया, क्वींसलेंड, दक्षिण आस्ट्रेलिया और न्यू साउथ वेल्स प्रान्तों के कारखानों में युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिए इस साल १,५०,००,००० पौंड खर्च किया जायगा। इस संख्या के बढ़ने और विक्टोरिया, न्यू साउथ वेल्स और दक्षिण-आस्ट्रेलिया-विभाग के कारखानों का विस्तार करने और नये कारखाने खोलने की अधिक सम्भावना है। १९३७-३८ में आस्ट्रेलिया में २०,००,००० पौंड की केवल युद्ध-सामग्री तैयार की गई थी। इस समय सरकारी और निजी दोनों कारखाने पूरे ज़ोर पर चल रहे हैं। वहाँ के एक निजी कारखाने की उत्पादन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति से अन्यों का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। १७ मास पहले एक प्राइवेट कारखाने ने युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिए ४०,००,००० पौंड पूँजी जमा की। इस समय तक व्यवहारोपयोगी माल वहाँ तैयार होता था। मगर अब सब तरह का सैनिक सामान--फ़ौजी गाड़ियाँ एम्बुलेन्सकार, सैनिकों के लिए ट्रैक्ट, विमानवेधी तोपें, चल वर्कशाप पाकशाला इत्यादि तैयार कर रहा है। आस्ट्रेलिया आज इँग्लैंड, भारत, दक्षिण-अफ़्रीका न्यूज़ीलेंड, ब्रिटिश उपनिवेशों को युद्ध-सामग्री देता है। सिंगापुर में जो आस्ट्रेलियन सेना भेजी गई है, उसकी सारी रण-सज्जा आस्ट्रेलिया की बनी हुई है।

फ़्रांस के पतन के बाद आस्ट्रेलियन माल की माँग बढ़ गई और ८ मास के अन्दर गोलों का काम १५ गुना, बमवर्षकों का २५ गुना, बन्दूकों का १५ गुना और मैशीनगनों का १६ गुना बढ़ गया है। यही दशा अन्य विभागों की है। २५ पौंडी फ़ील्ड गनें, विमानवेधी तोपें, टैंकवेधी तोपें, स्वयं चालित बन्दूकें और छोटी-बड़ी बन्दूकें बनाने का काम जारी है।

पिछले युद्ध में ३,००० से अधिक व्यक्तियों ने कभी आस्ट्रेलिया में लड़ाई का सामान तैयार करने में भाग नहीं लिया था। इस बार युद्ध शुरू होने पर सरकारी कारखानों में ५,००० स्त्री-पुरुष काम करते थे। जून १९४० में यह संख्या १५,२०० पर पहुँच गई और इस साल यह बढ़कर १,५०,००० से ऊपर चली गई है। इनमें से २५,००० केवल विमानवेधी तोपें, गोला बारूद, बन्दूकें आदि बनाते हैं। १९४० में २५ पूरक कारखाने खोले गये। आस्ट्रेलिया ३,००,००० पौंड का माल बाहर भेज चुका है और अभी उसकी माँग बनी हुई है। वह अपने और साम्राज्य के लिए ४,००,००,००० टन के ५० जहाज बना रहा है। व्यापारिक जहाज़ तैयार करने के लिए ६,००,००० पौंड की पूँजी जमा की गई है। आस्ट्रेलिया आज उस अवस्था में पहुँच गया है कि औद्योगिक क्षेत्र में जिस किसी चीज़ की माँग उससे की जाय वह उसको पूरा कर सकता है। फ़ौलादी शिरस्त्राण, पैराशूट्, फ़ौजी कपड़े, युद्ध-सामग्री सब तैयार करता है। एक शब्द में वह सूई से लेकर जहाज़ तक और बन्दूक की गोली से लेकर टैंकपर्यन्त सब सामान वह तैयार करने लगा है। क्या भारत का रसद-विभाग आस्ट्रेलिया के रसद-विभाग के काम की ओर दृष्टिपात करेगा?

चेतावनी

भारत पराधीन है। उसकी इच्छा का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए ब्रिटेन भले ही युद्ध-कालोत्तर भी भारत को आज के समान ही बना रहने दे मगर उसकी यह नीति अदूरदर्शितापूर्ण होगी। यह लड़ाई औद्योगिक लड़ाई है। औद्योगिक दृष्टि से जो देश जितना अधिक बलवान् और सक्षम होगा वह उतना ही अधिक शीघ्र विजयी होगा। विजित योरप आज हिटलर को प्रतिमास ४०,००,००,००० डालर से अधिक का माल दे रहा है। इसका अर्थ है कि ५,००,००,००,००० डालर का माल प्रतिवर्ष हिटलर विजित योरप से पा रहा है। परन्तु ब्रिटेन तो आज भारत से सैनिक ले रहा है। यहाँ लड़ाई का तरीक़ा सर्वथा बदल गया है। यदि भारतीय स्रोतों को लड़ाई जीतने में ब्रिटेन सहायक बनाना चाहता है, तो इसका एकमात्र उपाय भारत का उद्योगीकरण है। सुदूरपूर्व में युद्ध के बादल गरज रहे हैं। क्या यह रण-गर्जना ब्रिटेन की आँखें खोलने में समर्थ होगी? युद्धकालोत्तर भारत का भविष्य इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर कविता

श्रीयुत मदनमोहन मिश्र

र्मला किसी सम्पर्क से मेरी मौसी लगती थी। हाटखोला के उस ओर उसकी ससुराल थी। किन्तु कुछ अधिक आना-जाना नहीं था। बीच में केवल उड़ती हुई खबर सुनी थी कि उसकी एक वर्ष की पहलौठी लड़की एक ही दिन के ज्वर आने के पश्चात् अकस्मात् मर गई।

इस विशाल संसार में वह कोई ऐसी घटना नहीं थी कि उसके लिए एक पल भी रोने-पीटने में व्यय किया जाता। समाचार-पत्रों में हम नित्य अनेक छोटे-मोटे संवाद पढ़ते हैं और भूल जाते हैं। उसी प्रकार यह घटना भी सुनी-अनसुनी हो गई। सोचने-विचारने से भी इसी परिणाम पर पहुँचा कि निर्मला का अभी नवीन विवाह हुआ है, उसके यौवन में वसन्त का प्रारम्भ है, अभी उसकी सारी अवस्था पड़ी है, उसके दीर्घ जीवन में साल भर की एक लड़की का क्या स्थान है, क्या मूल्य है।

इस घटना को बिलकुल भूल चुका था। इसी बीच में प्रायः एक मास पश्चात् देखता क्या हूँ कि निर्मला मेरे घर आई है। मेरी मा से लड़की मरने के पश्चात् उसकी यह प्रथम भेंट थी। सोचता था कि खूब रोने-पीटने का अभिनय होगा। इसके विपरीत देखकर आश्वासना हुई। किन्तु उससे भी अधिक हुआ विस्मय। पास के कमरे से सुना कि वह एकदम उस विषय के पास भी नहीं जा रही है, इधर-उधर की बातें कर रही है, ज़रा ज़रा-सी बात पर हँस देती है, मुस्करा देती है। वह कह रही थी—मोटरलारी का रास्ता मानो कटता ही नहीं था; इतनी अधिक गर्मी पड़ रही है, वर्षा न जाने कब होगी; हमारे घर में एक मास में कितना कोयला खर्च होता है, इत्यादि इत्यादि।

मैंने देखा मा भी उस विषय से बिलकुल दूर थीं। उन्होंने भी लड़की की मृत्यु के विषय में कुछ जिज्ञासा नहीं की। उन्होंने कहा—इस भरी दोपहरी में, इतनी कड़ी धूप में......

बात पूरी भी न हो पाई थी कि निर्मला खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली—न आती तो करती क्या? करने के लिए कुछ काम भी तो चाहिए।

मा बोलीं—पीनू से कितने दिन से कह रही थी, तुझे एक बार देख आता—

"मैं स्वयं ही आकर एक दिन उपस्थित हो गई।" हँसी से उसका मुख धूप में पड़ी हुई रंगीन सीपी के समान झलकने लगा। उसने फिर कहा—पीनू, पिनाकी कहाँ है? मैं उसी से मिलने आई हूँ। उससे मुझे एक बहुत ज़रूरी बात कहनी है।

मैं उस समय मेज़ पर सिर झुकाये बैठा लिख रहा था। सहसा अन्धकार में प्रकाश की एक मलिन दीर्घ रेखा के समान निर्मला ने कमरे में प्रवेश किया और आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। उसका सारा शरीर शरद् के निरभ्र आकाश की तरह नील, स्निग्ध और प्रखर था। दोनों आँखें आनन्द से छलक रही थीं। उसकी साड़ी की चमकती हुई धारियों से भी मानो उसी आनन्द की मृदु-मदिर धारायें बह रही थीं।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि निर्मला मुझसे दो वर्ष छोटी थी। उस समय उसके साथ मेरा व्यवहार समवयस्कता का न था।

मेरी मेज़ के ऊपर झुककर उसने प्रश्न किया—क्या लिख रहे हो?

मैंने कहा—एक कहानी।

निर्मला एक बेत की कुर्सी उठा लाई और समीप ही बैठ गई। बैठने के साथ ही परिश्रान्ति के कारण उसके शरीर से कोमलता झलकने लगी। मैंने उसे अच्छे प्रकार देखा। बहुत दिन के बाद उसका इस प्रकार अकस्मात् आना और घनिष्ठता के साथ इतनी देर ठहरना किसी प्रकार भी मेल न खाता था। साड़ी में पड़ी हुई सिकुड़नें करुण आलस्य की सूचना दे रही थीं।

म्लान स्वर से उसने उत्तर दिया—कहानी क्यों? क्या आजकल कविता नहीं लिखते हो?

मैंने क़लम स्टैण्ड पर रख दिया और पीठ को कुर्सी का सहारा देकर बोला—कभी-कभी। बहुत कम।

निर्मला ने लजाते और मुस्कराते हुए गम्भीर तथा करुण स्वर में कहा—मैंने एक लिखी है।

मैंने स्तम्भित होकर कहा—क्या कह रही हो? तुमने कविता लिखी है?

सम्भवतः मेरे कहने के ढंग से निर्मला यह समझी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं आ रहा है। मैंने देखा कि लज्जा के कारण उसकी आँखें डबडबा आई थीं। मालूम होता था कि वह कुर्सी में डूब गई है। एक भीषण अपराधी के समान उसने त्रस्त एवं क्षीण स्वर से कहा—हाँ, एक लिखी है—केवल एक—वह भी बड़ी कठिनता से, काटा-कूटी करके।

मैंने बिना किसी आवेश के यों ही उत्तर दिया—किसी दिन दिखलाना।

"हाँ तुम्हें दिखलाने के लिए ही ले आई हूँ।"

निर्मला का सारा शरीर सुन्न हो गया। प्रतीक्षा में दोनों भौंहें तनकर धनुषाकार हो गई।

मुझे ऐसी आशा न थी। कविता—विशेषतः सर्व-प्रथम कविता—के सम्बन्ध में सभी लेखकों को एक स्वाभाविक संकोच होता है। उसको लोगों के सामने रखने में उतनी ही लज्जा होती है जितनी अपने नग्नरूप में सबके सामने आने में। कम से कम मुझे तो यही अनुभव होता। किन्तु निर्मला की इस निर्भीकता और निर्लज्जता को देखकर मुझे मर्मान्तिक वेदना हुई।

ब्लाउज़ के नीचे से उसने कागज़ के कई अलग-अलग टुकड़े निकाले। उनको पृष्ठ-संख्या के अनुसार लगाती हुई वह आगे मेज़ के पास तक आगई। बड़े धीमे स्वर से, मानो कोई जघन्य पाप स्वीकार कर रही है, निर्मला बोली—किन्तु किसी से कहना मत। एक महीने के निरन्तर परिश्रम के बाद यही एक लिखी है। कृपया इसे देखकर ठीक कर दो। कहीं-कहीं मुझसे ठीक नहीं बन पड़ी है।

कागज़ के टुकड़ों को अपने हाथ में लेते हुए मैंने कुतूहल से पूछा—सभी क्या एक ही कविता है?

निर्मला लौटकर अपनी कुर्सी पर बैठ गई और बोली—हाँ। और तिस पर भी सब बातें नहीं लिख पाई हूँ। तुम पढ़कर देख न लो। बतलाओ न, क्या-क्या बात और लिखी जाय।

एक साँस में कविता पढ़ गया। क्योंकि निर्मला से मेरा सम्बन्ध है इसीलिए उसको कविता कहता हूँ। वह मेरे अत्यन्त निकट बैठी हुई थी। आखिर वह लड़की ही तो थी। उसका समस्त शरीर सन्तान के शोक से इतना शीर्ण था, उसके बैठने के उदास ढंग से वह एक प्रेत की अस्पष्ट छाया-मात्र मालूम होती थी। इसी लिए मैं कविता पढ़कर हँसी के वेग को रोके रहा। नहीं तो ऐसी कविता मुझ-जैसे पुरुष के हाथ में पड़ने पर, शपथ खाकर कहता हूँ, आज अपनी सायंकाल की साहित्य-गोष्ठी में लोगों को खूब हँसाता!

इसमें सन्देह नहीं कि उसने अत्यन्त परिश्रम किया था और बहुत कुछ काट-कूट भी की थी और अनेक प्रकार से उसे सुन्दर बनाने का भी यत्न किया था। किन्तु छन्द और तुक तो दूर रहे, शब्द भी अशुद्ध लिखे थे। मिल्टन के 'पैराडाइज़ लास्ट' के समान ही कविता का विषय अत्यन्त गम्भीर था। वह उसकी लड़की की मृत्यु पर एक बृहद् शोकगाथा थी। उसका कहीं अन्त न था। एक बढ़े हुए उद्वेलित समुद्र के समान वह एक ओर से दूसरी ओर तक फैली हुई थी।

तिस पर भी वह सब बातें नहीं लिख पाई! और क्या बात लिखी जा सकती थी, यह सोचते हुए मैं विचलित हो उठा। उसकी लड़की अच्छी तरह घुटनों चलकर चौखट पार कर जाती थी। उसके कारण आलमारी में जूते सजाकर नहीं रक्खे जाते थे। जल की सुराही उसने दो-दो बार तोड़ डाली थी—कोई भी बात उसने नहीं छोड़ी थी। उसके ऊपर के मसूड़े में दो दाँत निकलनेवाले थे। दाँत निकलते समय उसे क्या-क्या कष्ट हुआ, कौन-कौन डाक्टर आये—ढूँढ़-ढूँढ़कर सब बातें उसने पद्य-रूप में परिणत कर दी थीं। उसको कौन किस नाम से पुकारता था—उसकी एक सूची भी दी हुई थी। केवल निर्मला के रक्खे 'बूड़ी' के नाम से वह तुरन्त उत्तर देती थी। उसके बायें कन्धे के ऊपर एक छोटा-सा तिल था। कब और कितनी बार वह अपने आपको न सँभाल सकने के कारण फ़र्श पर गिर पड़ी थी। इसी प्रकार दिन प्रतिदिन पर्व-पर्व करके निर्मला एक बृहद् महाभारत लिख लाई थी। उसके शोक के उस असीम आडम्बर को देखकर—क्या कहूँ उसके प्रति श्रद्धा न कर सका।

असन्तोष को छिपाते हुए कहा—इसको क्या करना होगा? निर्मला उत्साह से चमक उठी; धीरे-धीरे पूछने लगी—कैसी है? क्या छप सकेगी?

आश्चर्यचकित होकर मैंने कहा—कहाँ?

"किसी मासिक पत्र में। तुम्हारा बहुतों से परिचय है। कहीं छपा नहीं सकोगे?"

समझ न सका कि क्या कहूँ। बोल उठा—बड़ी बहुत है।

"बड़ी कहाँ है? छपने पर तो बहुत थोड़ी रह जायगी।" निर्मला ने करुण दृष्टि से मेरी ओर देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कहा—"और भी बहुत-सी बातें लिखने को थीं। और बहुत-सी बातें लिखने पर हृदय को शान्ति मिलती।"

इस बार मुझे अत्यन्त कठिन होना पड़ा; कहा—इसमें तो कुछ भी कवित्व नहीं है।

"इसी लिए तो तुम्हारे पास आई हूँ।" निर्मला धीमे से हँस पड़ी। जहाँ कहीं आवश्यकता हो, छन्द ठीक कर दो न। तुम तो अभ्यस्त हो, तुम्हें कितनी देर लगेगी?

"छन्द ठीक होने से ही क्या होगा?" उसकी ओर देखकर अकस्मात् विवश होकर कहना पड़ा—"तुम्हारी इस कविता को कोई भी सम्पादक न छापेगा।"

"क्यों?" निर्मला मानो खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिर पड़ी—"बतलाओ वे क्यों छापेंगे? तुम्हारी लड़की के मरने से पाठकों का क्या आता-जाता है? उसे पहचानता ही कौन है?"

निर्मला ने गुर्राकर कहा—तब ये जो प्रतिमास ढेर की ढेर प्रेम-कवितायें छपती हैं उनसे हमारा अथवा पाठकों का क्या आता-जाता है? उनमें से हम किसको पहचानते हैं। सबकी सब ही तो. झूठी बातें हैं—केवल कुछ बातों का बतंगड़ है।

मैंने हँसकर कहा—किन्तु उनमें व्यक्तिगत सीमा से ऊपर उठकर सर्वसाधारण के आकर्षण की वस्तु है।

निर्मला स्तब्ध होकर मेरी ओर देखती रही। मैंने समझाते हुए कहा—ये इस प्रकार लिखी जाती हैं जिससे कि सभी पाठक लेखक के समान ही अनुभव कर सकें।

निर्मला फिर आशान्वित हो उठी। बोली—मेरी कविता भी तो वैसी ही है। क्या संसार में ऐसा कोई घर होगा जहाँ किसी न किसी मा की गोद ख़ाली करके उसकी सन्तान न मर गई हो। मेरी कविता पढ़कर निस्संदेह उन सब माताओं को सान्त्वना मिलेगी।

तर्क करना व्यर्थ था। काग़ज़ों को एक पुस्तक से ढँकते हुए मैंने कहा—इसे रहने दो, मैं तुम्हें एक नई कविता लिख दूँगा।

निर्मला उदास होकर बोली—उस कविता में तुम मेरी इतनी बातें कभी न लिख सकोगे।

"हाँ वह अवश्य ही थोड़ी छोटी होगी। किन्तु वह कविता होगी।"

"रहने दो उस कविता को। जिस कविता में मेरी 'बूड़ी' नहीं उसे लेकर मैं क्या करूँगी।" निर्मला ने जल्दी से उन काग़ज़ों को उठा लिया और कमरे से बाहर चली गई।

मैं मन ही मन हँसा। और निर्मला के घर चले जाने पर जब उस विषय को लेकर सबके साथ समालोचना हुई तब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। सभी हँस पड़े। यह निर्मला का सौभाग्य था कि उसकी लड़की मर गई। क्यों नहीं! तभी तो एक महीना भी नहीं होने पाया और वह सिद्ध कवयित्री बन गई! पहले तो वह अपना नाम भी शुद्ध-शुद्ध न लिख पाती थी। कहना न होगा कि यह साहित्य का सौभाग्य है।

सभी ने यही मत स्थिर किया कि वह बहुत आगे बढ़ गई है। उसका यह कार्य शोचनीय ही नहीं, हास्यास्पद भी है। ख़ाली घड़ा ही छलका करता है। किसी के मर जाने पर क्या उसके लिए कविता करनी पड़ती है?

इस घटना के पश्चात् बहुत दिन तक निर्मला से साक्षात्कार न हुआ।

एक दिन साँझ को उस मुहल्ले में गया था। इच्छा हुई कि निर्मला को भी देखता चलूँ। घरवालों की संख्या अधिक न थी। उस समय तक उसके पति नारायण के लौटने का समय नहीं हुआ था। कहारिन नीचे बर्तन माँज रही थी। दरवाज़ा खुला पड़ा था। सीधा ऊपर चला गया।

ज़ीने के ऊपर ही बाईं ओर निर्मला का कमरा था। अगल-बग़ल अड़ोसियों-पड़ोसियों के मकान थे। बीच में पर्दा खिंचा हुआ था। दो-एक बार आने-जाने से उसके घर की चौहद्दी मुझे याद हो गई थी—

दरवाज़े के सामने थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा। निर्मला दरवाज़े की ओर पीठ किये हुए नीचे फ़र्श पर पीठ के बल लेटी हुई बड़े मनोयोग के साथ किसी सूक्ष्म कार्य के करने में व्यस्त थी। पीठ पर बाल बिखरे हुए पड़े थे, और उलटी-पलटी पड़ी हुई साड़ी से उसके मन की असहिष्णुता सूचित हो रही थी। उसके शरीर की समस्त चेष्टाओं से उत्सुकता झलक रही थी।

जब खड़े-खड़े बहुत देर हो गई तब मैंने पुकारा—निर्मला!

निर्मला चौंक उठी। इतने थोड़े दिन में उसके मुखमण्डल पर इतना परिवर्तन हो जायगा, यह कभी आशा भी न की थी। मुझे देखकर वह स्वाभाविक सौजन्य-वश हँस अवश्य पड़ी, किन्तु वह हँसी उसकी आँखों के उनींदेपन, शरीर की क्लान्ति और उसके चारों तरफ़ की घोर-निर्जनता को छिपा न सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कुर्सी आगे करके उसने कहा—बैठिए।

मैंने कहा—बैठी-बैठी क्या कर रही थी?

उसने हँसते हुए निस्संकोच भाव से उत्तर दिया—चित्र बना रही थी।

मैंने विस्मय के साथ पूछा—किसका?

और किसका, दीवार की ओर दृष्टि डालते हुए उसने अभिमान के साथ कहा—देखिए न एक-एक करके कितने चित्र बना डाले हैं।

चारों ओर दीवारों पर अनेक चित्र टँगे थे। उनकी ओर देखते हुए मैंने कहा—तुम तो कई प्रकार के चित्र बनाना जानती हो। चूहा, ख़रगोश—किन्तु कंगारू का चित्र बनाने में तो बड़ा कमाल किया है।

निर्मला खिल-खिलाकर हँस पड़ी और बोली—कोई भी ख़रगोश और चूहा नहीं है।

"कोई भी नहीं?"

"नहीं। सब मेरी उसी लल्ली के चित्र हैं। निर्मला के मुख की मुस्कराहट अभी तक बन्द नहीं हुई थी। वे सब उसकी विभिन्न मुद्राओं एवं शरीर-स्थितियों की प्रतिकृतियाँ थीं—किसी में वह बैठी थी, किसी में घुटनों चल रही थी और किसी में चित लेटी हुई हाथ-पाँव चला रही थी, उसका कोई फ़ोटो खींचकर नहीं रक्खा गया था। इसी से बड़ी असुविधा होती थी—कोई ख़रगोश बन गया था कोई कंगारू।

निर्मला फिर एक बार हँस पड़ी।

मैंने अप्रतिभ होकर उत्तर दिया—क्या ये बिगड़ नहीं गये हैं? निर्मला ने प्रेम-परिपूर्ण कण्ठ से कहा—मन से ही खींचना होता है। बहुतेरा मन लगाकर देख लिया उसके मुख का एक अंश भी स्मरण नहीं आता। और न यही ध्यान में आता है कि सिर चौड़ा था या छोटा। नाक नुकीली बनानी चाहिए अथवा चपटी, यही सोचते-सोचते सारा दिन बीत जाता है। उसके पैर के गट्टों का गठन कैसा था, हज़ार माथा-पच्ची करने पर भी यह निर्धारण नहीं हो पाता। बड़े संकट में पड़ गई हूँ।

मैंने कहा—बहुत-से चित्र तो बना चुकी हो। अब क्या बनाये ही चली जाओगी?

"अभी तक एक भी तो इच्छानुसार नहीं हुआ।" फिर कुछ हँसी और कहने लगी—"तुमने भी तो कम कविता अथवा कहानियाँ नहीं लिखी हैं। फिर भी क्या बन्द करने पाते हो? जीवन के अन्तिम समय तक लिखना ही होगा, क्या कहते हो? किसी न किसी तरह से तो मन को शान्त ही करना होगा। अन्यथा बचने का उपाय ही क्या है?"

मैं कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया, बोला—तुमने उस कविता का क्या किया?

"कविता तो छापने को दी नहीं। उसको बाँधकर सामने दीवार पर टाँग दिया है। मैं अकेली ही उसको पढ़ती हूँ। और करूँ भी क्या? मेरा दुःख तो पृथिवी की अन्य मृतवत्सा मातायें समझ ही नहीं सकतीं। मैं ही उसको पढ़-पढ़कर उन सबके लिए आँसू बहाया करती हूँ।

मैंने उदासीन भाव से कहा—तुम बैठी-बैठी यह सब क्या करती रहती हो?

"कहा न! बचने के लिए कोई उपाय तो करना ही होगा।"

उसके मुख पर तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए मैंने कहा—बचने का उपाय करते-करते शरीर का जो हाल कर लिया है उसको ज़रा एक बार शीशे में तो देखो।

निर्मला हँस पड़ी। इस बार उसके प्रशान्त मुख-मण्डल पर दुख का लेश भी नहीं था। बोली—मैं रहूँ चाहे चल बसूँ; किन्तु मेरी लल्ली तो बच जायगी। अन्त में मैं भी तो अन्य लेखकों या कलाकारों की तरह इसी इच्छा को लिये मर सकूँगी।

इस बार और भी घनिष्ठता दिखाते हुए मैंने धीरे-धीरे करुण स्वर से कहा—निर्मला! जो सदा के लिए इस संसार को छोड़ चुकी उसकी मूर्ति अंकित करने के लिए इतना आडम्बर करने से क्या लाभ?

"कौन कहता है कि चली गई?"—निर्मला का मुख धूप में चमकती हुई तलवार के समान ही उद्दीप्त था—"उसे क्या मैंने जाने दिया है? इस समय वह अपने काँपते हुए पैरों से चलना सीख रही है। अब मुझे स्पष्ट रीति से मा कहकर पुकारती है। उसके लिए मैं अब भी यथावत् फ़्राक सीती हूँ। यह देखो रात को वह मेरे पास आकर सोती है। खाट पर पड़े हुए बिछौने की ओर संकेत करके वह खिला-खिलाकर हँस पड़ी।"

मैंने देखा एक छोटे तकिये पर सिर रक्खे एक बड़ी गुड़िया सोई हुई थी। गले तक वह दोहर ओढ़े हुए थी। सिरहाने बहुत-सी बिछौनियाँ एक-दूसरे के ऊपर चुनकर रखी थीं। खाट से वह गिर न पड़े इसलिए दोनों ओर मोटे-मोटे तकिये लगे हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने चौंककर कहा—यह क्या !

निर्मला फिर हँस पड़ी—जानते नहीं ? यह मेरी लल्ली है, अकेली सोने से तो मुझे नींद ही नहीं आती।

निर्मला की सास से बातचीत हुई। उन्होंने निर्मला पर फटकारों तथा व्यंग्य-वचनों की बौछार लगा दी। देखा निर्मला पर उनका कुछ भी प्रभाव न हुआ। उसकी भौंहों में बल तक न आया। दिन के ढलते हुए प्रकाश में एकाग्र भाव से वह चित्र अंकित करती रही। सास ने फिर बकझक शुरू की। इधर गृहस्थी नष्ट हो रही है उधर वह चकला-चूल्हा छोड़कर तूलिका और रंग लेकर बैठी है। सुख हो या दुःख हो सबकी अपनी-अपनी सीमा है, उसी में वे अच्छे मालूम होते हैं। मैं पूछती हूँ तुम्हें किस बात का दुःख है। अभी अवस्था ही क्या है, एक छोड़ न जाने कितने बच्चों की अभी तुम मा होगी। इस प्रकार फूट-फूटकर रोने का तुम्हारा समय नहीं है। जिसके लिए तुम शोक करती हो उसके लिए तो दुःख नहीं होता, केवल शोक करनेवाले को देखकर हँसी आती है। जाओ, चूल्हे में आग सुलगाओ, जाओ।

"मा अभी जाती हूँ।" निर्मला ने चित्र बनाते-बनाते ही कहा—"थोड़ा ही रह गया है।"

नारायण दफ्तर से लौटकर आगया था। सूरज एक-एक करके दीवारों के पीछे छिपता चला जा रहा था। घर में अवास्तविकता की एक अमूर्त लम्बी छाया पड़ रही थी। दिन के उस ढलते हुए निस्तब्ध धूसर प्रकाश में यह कोई नहीं कह सकता था कि निर्मला इस लोक की निवासिनी—मानवी है।

नारायण बुद्धिमान् चतुर एवं सज्जन था। उसको स्वभाव से वस्तु की उचित सीमा का ज्ञान था। प्रारम्भ में तो उसे भी घोर दुःख हुआ। किन्तु जैसा पुरुषों का धर्म है, हानि हो जाने पर वह उसपर बुद्धिपूर्वक विचार करता था। उसको सदा के लिए मन में रखकर तोता नहीं पाल लेता था। प्रारम्भ में निर्मला के प्रति सन्तान की ममता समान होने के कारण—उसे भी सहानुभूति थी—किन्तु अब तो वह विरक्ति तथा असहनीयता की अन्तिम सीमा पर पहुँच चुका था। इस समय वे दोनों अकेले-से थे, उन दोनों के बीच में मृत बालिका की मूर्त्ति थी।

कठोर व्यंग्य बोलते-बोलते नारायण निष्ठुर हो उठता था। निर्मला को सुनाकर वह मुझसे कहने लगा—दिन-रात लल्ली और लल्ली, मानो लल्ली को छोड़कर उसके जीवन में और किसी के लिए स्थान ही नहीं है।

"उसे छोड़कर और क्या है ?" हवा से उड़ती हुई तसवीरों को ठीक करते हुए निर्मला ने कहा—"लल्ली को पाने से ही तो मुझे सब कुछ प्राप्त होगा।"

नारायण ने हँसकर कहा—"पीनू बाबू ! इसी लिए कभी-कभी मेरा विचार होता है कि मरने पर तो इतनी सेवा होती है, और मरे बिना हमारा कुछ मूल्य नहीं।

उस शनैः शनैः बढ़ते हुए अन्धकार में निर्मला चौंककर चिल्ला उठी—तो क्या यह कहना चाहते हो कि लल्ली को मैं एकबारगी बिलकुल भुला दूँ ? फ़र्श पर, दीवार पर कहीं उसका एक चिह्न भी शेष न रहे ? ऐसी दशा में उस भीषण निर्जनता में मैं किस प्रकार जीवित रह सकूँगी ?

किन्तु सभी वस्तुओं की सीमा निर्धारित होती है, यहाँ तक कि समय की भी; नारायण ने कहा; अति सर्वत्र वर्जित है। तुम्हारे इस शोकोत्सव को देखकर सभी को सन्देह होता है। निर्मला क्या सचमुच तुम्हें इस समय लल्ली से स्नेह है ? नहीं, तुम्हें अपने दम्भ की ममता है।

"नहीं, लल्ली से तो मुझे किसी दिन भी प्रेम नहीं था।" निर्मला उस अन्धकार में अद्भुत प्रकार से हँस पड़ी। "तुम तो यह कहोगे ही, उसको खोकर मैं कितनी सुखी हूँ, मेरा कितना ऐश्वर्य बढ़ गया है ?"

अन्धकार में अवरुद्ध एक दीर्घ निश्वास की तरह निर्मला धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई।

"पागल ! निरी बच्ची है।" नारायण ने निस्सहाय होकर कहा, "कौन उसको समझावे, कौन बरजे ? आजकल तो वह मुझसे भी नहीं बोलती-चालती है। मुझे अपनी लल्ली का शत्रु समझती है। कहती है; मैं चाहता हूँ कि वह अपनी लल्ली को भूल जाय।"

मैंने कहा कि यहाँ से उसे ले क्यों नहीं जाते।

"पागल ! कौन उससे यह बात कहे ? इसी कमरे में वह कुण्डी दिये बैठी रहती है। घर बदलने की बात सुनना भी उसे असह्य है।" नारायण का स्वर धीमा पड़ गया; "अड़ोसी-पड़ोसियों से भी तो उसे कम भर्त्सना और तिरस्कार नहीं सहना पड़ता, उससे भी उसको होश नहीं आता।"

मैंने जाने का उपक्रम करते-करते कहा—इतना आडम्बर देखकर तो लोग हँसी-ठट्ठा करेंगे ही।

"बाहरी लोगों की बात जाने दीजिए, अब तो मेरे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में उसके प्रति सहानुभूति नहीं होती।" नारायण का स्वर रूखा होता जा रहा था। "थोड़ी देर के लिए सहानुभूति होती है किन्तु आगे चलकर वही विरक्ति में परिणत हो जाती है। क्यों न हो देखो तो सही, नींद में बार-बार उठकर उस गुड़िया की बिछौनी बदलती है। समयानुसार उसको स्नान कराती है। भोजन के समय उसको गोद में लेकर बैठती है। कभी-कभी उसको पास के किसी घर में रख आती है और बाहर से आवाज़ देती है, हमारी लल्ली क्या तुम्हारे घर में है?" नारायण बड़े ज़ोर से हँस पड़ा; "कुछ कहने से तो सारा घर ही सिर पर रख लेती है। स्त्री के लिए तरह-तरह की फ़ैशन की चीज़ें लानी होती हैं किन्तु मेरे भाग्य में तो ये विचित्र बातें लिखी हैं।"

उतरते समय निर्मला ने ज़ीने में मुझे रोक लिया; कहने लगी, तुम्हें एक चीज़ तो अभी दिखाई ही नहीं।

मैंने कहा—क्या?

"कच्ची मिट्टी की लल्ली की एक मूर्ति बनाई थी वह अभी समाप्त नहीं हुई है। और किसी दिन आकर देख जाना।"

घर आकर यह कथा सविस्तर सबको सुनाई। लल्ली की तसवीर बनाते-बनाते चूहा बना जाती है; गुड़िया की वह बिछौनी बदलती है। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। इस प्रकार की विचित्र कहानी किसी ने कभी सुनी न थी।

जिन्होंने उसकी लल्ली की मृत्यु के समय गम्भीर सान्त्वना दी थी, वे ही अब उसके शोक को ढोंग समझते थे।

आश्चर्य!

तत्पश्चात् बहुत दिनों बाद खबर मिली कि निर्मला ने अब समस्त शोक-सामग्री दूर कर दी है और अब वह धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविक दशा में आ रही है। दीवार पर के सब चित्र उतारकर फेंक दिये थे; वह कविता जला दी थी; गुड़िया के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे; लल्ली के विषय में जो कोई उससे बात करता है उससे वह एकदम अप्रसन्न हो जाती है, और खसोटकर उसको लोहूलुहान कर देती है। अब वह लल्ली को बिलकुल ही भूल गई है।

उसको देखने के लिए गया। उसने कच्ची मिट्टी की लल्ली की एक मूर्त्ति बनाने का उद्योग किया था; जाकर देखता क्या हूँ कि वह अपनी ही मूर्त्ति बनाये बैठी थी। दरवाज़े की कुण्डी बाहर से बन्द थी। नारायण ने कहा कि इस समय तो वह कुछ ठीक है, शायद तुम्हें पहचान भी ले।

नारायण के साथ धीरे-धीरे पैर रखता हुआ उस कमरे में गया। वहाँ खूब प्रकाश था। फ़र्श के ऊपर ज़मीन में निर्मला एक मांस के पिण्ड के समान गुड़ी-मुड़ी बैठी थी। बड़े एकाग्र भाव से अपने अँगूठे के नाखून से फ़र्श को खोदने की चेष्टा कर रही थी। हमारे आने से उसकी समाधि में कुछ भी विघ्न न हुआ। नितान्त उदासीन थी।

नारायण ने कहा—निर्मला इनको चीन्हती हो, ज़रा इधर देखो। निर्मला ने एक पलक भी न हिलाया। फ़र्श की ओर देखती हुई चुपचाप मन ही मन हँसती रही। उसकी ठोड़ी पर हँसी की उस अमूर्त्त रेखा को देखकर भय लगने लगा। तो भी मैं साहस करके उसके पास गया और पुकारा—निर्मला!

इस बार भी कुछ उत्तर न मिला। केवल हँसी की वही रेखा कुछ और प्रसारित हो गई। न जाने उसकी कौन-सी चेष्टा को देखकर नारायण घबरा उठा और कहने लगा—इस समय भाग चलो, अब और भी उन्माद बढ़ेगा।

मैं भाग आया। नारायण ने दरवाज़ा बन्द कर दिया।*

---

* श्री अचिन्त्यकुमार सेन की एक कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत-काव्य : एक झलक

श्रीयुत वि० मुकर्जी 'गुंजन'

—"मानस-सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें,
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें।"

यहीं से गीत-काव्य का श्रीगणेश होता है। स्रष्टा ऋषि भी हैं और गायक भी। जब उसका मानस-चित्र उसकी भाव-भूमि के सम्बन्ध की सहायता से विभिन्न शब्दार्थ के विचित्र विन्यास में ध्वनित होकर अप्रतिहत अनाविल रस-कालिन्दी में ही उसके हृदय को तैराने लगता है,—तभी तो सुमधुर संगीत की निर्मल-निर्झरिणी पुलिनस्थित 'संवेदन' के शिलाचरण से टकराती, बलखाती-सी मन्द-मन्द प्रवाहित होने लगती है। दोनों तट दो सैकत शय्या हैं। एक पर आजानु-विलम्बित काली घटा-सी चिकुर फैलाये लेटी जागती रहती है—मधुर 'भावना' एवं अपर पर अपलक नेत्रों से ताकती दिखलाई पड़ती है 'वस्तु'। या यों कहिए कि उन दोनों का एकीकरण ही यानी काव्य और हृदय की एकात्मता ही हमारा गीतकाव्य है। भावुकता या तन्मयता में ही तो इसका जन्म होता है। इसलिए गीतकाव्य मानव का जीवन-काव्य है।

चराचर प्रकृति का कोई भी प्राणी बिना गुनगुनाये जी नहीं सकता;—अपने को हलका ही नहीं कर पाता। अतः संगीत आत्मा का भोजन है। इस अनन्त संस्कृति के अणु-परमाणु में गीत परिव्याप्त है। सभी गाते हैं—पर सभी समझ नहीं पाते! है भी तो वास्तव में यही बात कि इसे समझने के लिए भी तो युगों तक साधना की आवश्यकता अपेक्षित है। मानव जब अपनी रागात्मिका वृत्ति को चराचर की रागात्मिका वृत्ति से एकाकार कर देगा तभी तो साध्य मूर्त्तरूपेण प्रोद्भासित हो उठेगा और तभी स्रष्टा सुमधुर गायक के रूप में सहृदय जन-साधारण के सम्मुख रंगस्थल पर परिदृश्यमान होगा। मानव चिन्तनशील प्राणी है;—संगीत उसकी जननी है। अबोध शिशु जैसे मा के बिना तड़पता रहता है ठीक उसी प्रकार अबोध मानवात्मा भी संगीत के बिना कलपता रहता है। वह प्रकृति के दरवाजे-दरवाजे पर संगीत की भीख माँगता फिरता है—

"सिखा दो ना हे मधुपकुमारि!
मुझे भी अपना मीठा गान!
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना कुछ-कुछ मधुपान।"

गीत आत्मा की लय है। यह तर्कजनित नहीं कल्पना-जनित है। इसमें हृदय सतत क्रियमाण परिलक्षित होता है—मस्तिष्क नहीं। इसके दो छोर हैं—'कल्पना' एवं 'संवेदन'। हमारी परिचारिकायें* यानी ज्ञानेन्द्रियाँ जब सक्रिय रहती हैं तभी संगीत का प्रादुर्भाव होता है, निष्क्रियावस्था में नहीं। कहने का मतलब यह है कि प्रसुप्तावस्था में गीत का जन्म नहीं होता।

अथक परिश्रम के कारण—चाहे वह कायिक हो या मानसिक—परिश्रान्त-पथिक जब अपने दुस्तर परिश्रम का कुछ भार किसी पर देना चाहता है तो उसे सिवाय संगीत के और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। उसका हृदय संगीत को बुलाने के बहाने गुनगुना उठता और देखते-देखते उसके उस गुनगुनाहट के ताल-ताल पर ही सारा परिश्रम जाता रहता है, उसे पुनर्जीवन प्राप्त हो जाता है। द्विगुणोत्साह से वह अपने कार्य में निरत दिखलाई पड़ता है—यही गीत की माया है।

× × ×

काव्य की दो धारायें काव्य के जन्म के साथ ही साथ अब तक भी प्रवाहित होती चली आ रही हैं—(क) ऊहात्मक एवं (ख) भावात्मक। वास्तव में भावात्मक काव्य ही गीत-काव्य है। एक तरह से गीत-काव्य को दूसरी संज्ञा मुक्तक-काव्य दी जा सकती है। इसकी उम्र काफ़ी लम्बी है। इसे हम वैदिक-काल में भी देखते हैं। सामवेद तो पूर्णतया गीत-वेद ही कहा जा सकता है। यों तो कितनी ही ऋचायें गेय हैं जिसे हम आज तक भी गिन नहीं पाये! ऋचाओं के प्रमाण से यही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गीत-काव्य अजर है। गीत-काव्य सचमुच लोक-

*ज्ञानेन्द्रियाँ इसलिए परिचारिकायें हैं कि वे सभी अंतस् का सम्बन्ध बाह्य से कराती हैं। अतः वे 'ज्ञाता' की उपाधि नहीं प्राप्त कर सकतीं।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य भावभूमि की वस्तु है क्योंकि यह सीधे अपने प्रभाव की रंगीन तूलिका से जनता के अन्तरपट को अति-रंजित कर देता है।

लोरी भी तो एक तरह से गीत ही है। इस लोरी के ज़रिये हम छोटे-छोटे बच्चों से अपना मनोऽनुकूल कार्य करा लेते हैं। जैसे—बच्चा सो नहीं रहा है या नहाना नहीं चाहता। ऐसी गुरुतर परिस्थिति में अगर हम अपनी कार्य-सिद्धि के लिए उसके सामने उसके मन के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं तो हम उससे वह काम कदापि बलात् नहीं करा सकते जो हम चाहते हैं। यानी—उसे न तो हम सुला ही सकते हैं और न नहला ही सकते हैं। ज़बर्दस्ती करने पर सम्भव है वह क्रन्दन करने लगे। ऐसी परिस्थिति में हम क्या करते हैं !—लोरी की शरण लेते हैं या यों कहिये कि संगीत का प्रश्रय लेते हैं और उस बच्चे से मनोनुकूल कार्य करवाकर ही विश्राम लेते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि संगीत क्लीव नहीं। प्रभाव भर ही उत्पन्न करके वह बैठने-वाला जीव नहीं है, वह बरबस मनुष्य को कार्य में भी प्रेरित करता है। ऐसे अनेक गीत हमारे आधुनिक काव्य में आज भी जीवित हैं जिन्हें पढ़कर हमारी धमनियों में रक्त की धारा तीव्र गति से बहने लगती है; दाँतों की कड़-कड़ाहट से अन्तर में भूचाल उपस्थित हो जाता है। दीपक राग एवं मलार राग जैसे रागों से रागान्वित होकर लौ-हीन-दीपक भी बल उठता है और सूखे बादल में भी गड़गड़ाहट आ जाती है—अनायास वह बरस पड़ता है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संगीत निर्जीव नहीं—सजीव है, निस्तेज नहीं—सतेज है। अस्तु। अब उपर्युक्त बातों से यह प्रमाणित हो चुका कि गीत का मानव-समाज में कितना बड़ा हाथ है। हम अपनी दृष्टि को इसी बीच कुछ देर के लिए हिमालय के उस पार या सात समुद्र-पार फेंकना चाहते हैं, यह देखने के लिए कि वहाँ भी इसका कोई सम्बन्धी रहता है या नहीं !

पद्य-रचना की प्रथा हमारे यहाँ तभी से जारी है जब योरप के पूर्व पुरुष दरख़्तों पर कूद-फाँद करते थे। किन्तु भला इसे वे कब मानने को तैयार हैं !

हममें सदा से यही प्रवृत्ति काम करती आई है कि हम अपने इतिहास को कोसों दूर छोड़ते आये हैं। कभी भी हमने अपने इतिहास की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। यही कारण है कि जिसने जो कुछ कहा उसे 'देवादेशः प्रमाणम्' की नाईं अकाट्य समझकर सिर झुकाकर मान लिया। हमरा गीत-काव्य अवश्य योरप के गीत-काव्य से वयोवृद्ध है किन्तु पाश्चात्य विद्वान् अपनी 'लिरिक् पोयट्री' को ही अग्रज ठहराने के लिए व्यर्थ प्रयास पर तुले हुए हैं। उनका कहना है कि 'लिर' जो वीणा के आकार का ही होता है उसका सर्वप्रथम आविष्कारक हमारे ही यहाँ का 'हर्मेस' है जिसने कछुओं की पीठ की हड्डियों को इकट्ठा करके स्वरानुसन्धान किया था।

पाश्चात्य विद्वान् कितना भी प्रमाण क्यों न दें हमारा गीत-काव्य उनकी 'लिरिक पोयट्री' से अवश्य प्राचीन है। सृष्टि-ग्रंथि खुलने के साथ ही साथ जिस समय पिनाकी का डमरू बज उठा था जिससे सर्वप्रथम चौदह ही स्वर निकले थे उस समय न तो 'हर्मेस' का ही पता था और न हर्मेस के पिता का ही। हम अवश्य यह सम्बन्ध अब भी जोड़ने के लिए तैयार हैं कि उनकी 'लिरिक पोयट्री' और हमारा गीत-काव्य दोनों परस्पर भाई हैं,—क्योंकि वह भी वीणा के सहारे गाई जाती थी और यह भी वीणा के सहारे गाया जाता था। पर अग्रज उसे हम कदापि नहीं मान सकते। अस्तु।

× × ×

संगीत गीत-काव्य के प्रधान अंगों में होते हुए भी आमतौर पर इन दोनों में एक मुख्य अन्तर पाया जाता है। वह यह कि—एक तो 'लक्षण' से मतलब रखता है एवं अपर 'लक्ष्य' से। एक में नियम का प्रतिबन्ध है तो दूसरा इससे उन्मुक्त। "गीत-काव्य जीवन-काव्य है। इसे या यों कहिए कि यह एक अन्तर्जगत् काव्य है। इसमें विचारों की एकरूपता संक्षिप्त होकर व्यक्तित्व को साथ ले संगीत के सहारे प्रकट होती है। आराध्य से आत्म-निवेदन के उल्लास में रचना गेय हो जाती है और भावना के घनीभूत हो जाने के कारण स्वतः संक्षिप्तता आ ही जाती है। गीत-काव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से ही होती है।

हिन्दी-संसार के रंग-मंच पर सबसे पहले गीत-काव्यकार के रूप में हमारे सामने जगनिक आते हैं। उनकी अमर कृति "आल्हखंड" आज भी श्रावण के पुनीत दिनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर ग्राम में बड़ी मस्ती के साथ गाया जाता है। 'छप-छप-छप-छप बजे सिरोही' के साथ ही साथ हमारी प्रसुप्त विपंची के सातों तार भी एक ही बार झन-झनाकर 'सिरोही' के सुर में सुर मिलाने लगते हैं। यद्यपि इसके पहले भी बिसलदेवरासो एवं नाटच-पंथियों का 'नीति-काव्य' इसी मार्ग पर चलाया गया था। पर वे उतने सफल न हो पाये। उधर वंग जगत् में 'जयदेव' ने सारी झोप-ड़ियों में घूम-घूमकर संगीत की सुमधुर धारा बहा दी। जिससे मलयज-शीतल शस्यश्यामल स्वर्णमयी वंग वसुन्धरा का हृदय एक अतीन्द्रिय लोकानन्द में कुछ काल के लिए सराबोर हो गया।

इधर मिथिला की अमराइयाँ गम्भीर विरह में व्याकुल हो प्रतिपल आठ-आठ आँसू बहा रही थीं। धीरे-धीरे मधुमास आ पहुँचा। विद्यापति का कोकिल-कंठ सुनाई दिया। 'पिया बिनु कोना गमायब रतिया' के सुर-गुंजन में आज मिथिला का मानस-सरोज खिल उठा। अमर कवि विद्यापति का यह गीत-काव्य अनन्तकाल तक आशा एवं आनन्द की वार्ता विस्तृत जगती के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाता रहेगा; प्रेम-पुष्प को मधुर-मधुर स्वप्नों से रंजित कर प्रस्फुटित करेगा; तदुपरान्त--

"हंसा प्यारे! सरवर तजि कहँ जाय ?
जेहि सरवर बिच मोती चुनते, बहु बिध केलि कराय।"

कहते हुए रहस्यवादी कबीर बाबा हमारे सामने आते हैं। किन्तु इनकी उलट-बासियों के भयंकर चक्कर में पड़कर साधारण जनता का कोमल हृदय इनके गीतों का यथार्थ रसास्वादन न कर पाया। गीत जनता की वस्तु है। जिस गीत तक सहृदय जन-साधारण की पहुँच नहीं होती हमारी दृष्टि में वह गीत वास्तव में गीत ही नहीं है।

विद्यापति की वीणा ने अगर किसी की हृत्तन्त्री को पूर्णतया झंकृत किया है तो वह है एकमात्र करील-कुंज में बैठा हुआ अमर तपस्वी कवि-शिरोमणि 'सूर'।

सूर के मधुर गीतों से परिप्लावित हो कवि कुलगुरु तुलसी का महान् हृदय भी--"तू दयाल, दीन हौं; तू दानी, हौं भिखारी," कहकर गुनगुना उठा और उधर 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' गाती हुई संगीत के मधुर ताल-ताल पर रुनझुन का समन्वय करती हुई मीराबाई हमारे सामने गीत-काव्य के रंगमंच पर आई।

वास्तव में अगर देखा जाय तो भक्तिकाल सम्पूर्णतया एक तरह से गीतकाल ही कहा जा सकता है।

जो दिन-रात जागता है उसी की आँखों में निद्रा किलोल करती है। यही कारण है कि हमारा गीत-काव्य रीतिकाल में एक तरह से काल की कठोरता में ही दब गया। अवकाश पाकर पुनः आज वह--

"न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग;
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य-विहगों के गान!"

के रूप में फूट पड़ी। इस गीत-काव्य के संक्रामककवि श्री 'पंत' जी के 'विश्ववेणु' के फूँकते ही आधुनिक काल के कपोत-चित्रित कंठ से--

"कहा जो न, कहो!
नित्य-नूतन, प्राण, अपने
गान रच-रच दो!"

की ही प्रतिध्वनि प्रतिपल सुनाई दे रही है। उधर विश्व-कवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ जी के सितार की खूँटी भी कस गई और देखते-देखते अनाविल संगीत की स्रोतस्विनी बह निकली--

"जबे तुलसी तलाय
प्रिय, संध्या बेलाय
तुमि करिबे प्रणाम;
तव देवतार नाम निते
भूलिया बारेक--
प्रिय, निओ मोर नाम!"

× × × ×

इस आधुनिक गीत-काव्य की धारा इतनी तेजी से दौड़ पड़ी है कि कवियों को कौन पूछे कवयित्रियाँ भी आचमन-मार्जन में तत्पर दिखाई पड़ रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल;
प्रियतम का पथ आलोकित कर!'

× × × ×

प्रबन्ध-काव्य में इतिवृत्तात्मक गुण है। उसमें प्रधानतया मस्तिष्क ही काम करता हुआ दिखलाई पड़ता है। किन्तु गीत-काव्य इतिवृत्तात्मकता से परे की चीज़ है। इसमें हर हालत में हृदय का ही एकाधिकार दिखलाई देगा। गीत-काव्य का मुख्य उद्देश्य समन्वयता ही होनी चाहिए। जिस पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। प्रबन्ध-काव्य की तरह गीत-काव्य में प्रसार या विस्तार महान् हानिकारक हैं। प्रसादगुण एवं माधुर्यगुण से सुसंश्लिष्ट होकर ही गीत काव्य को जन्म ग्रहण करना चाहिए। तभी वह गीत-काव्य मानवात्मा से एकीकरण का सम्बन्ध स्थापित करता हुआ मानवात्मा के ही पूर्ण स्पष्टीकरण में सफलीभूत हो सकता है। जहाँ तक आनन्दोद्रेक में गीत का हाथ रहेगा वहीं तक वह गीत श्रेष्ठतम गीत कहलाने का भी दावा कर सकता है। कोमल शब्दचयन भी गीत-काव्य का अंग समझना चाहिए। भाव-तीव्रता ही उसका प्राण है। प्रायः देखा जाता है कि गीत-काव्य के तीन ही आधार हुआ करते हैं।

कोमलतमभाव शब्दसाधना वस्तुतत्त्व की सारता।

'शुष्को वृक्षः तिष्ठत्यग्रे' के स्थान पर 'नीरस तरुरिह विलसित पुरतः' ही हमारे गीत-काव्य का संकेत है।

आज कवि का मूक क्यों स्वर ?

श्रीयुत अंचल

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
कर रहा चीत्कार जब संसार सारा नष्ट होकर,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
जल रही सुख-शान्ति संशय से मनुज का व्याप्त जीवन,
आगया जब नाश सम्मुख ले मरण के नग्न बन्धन,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
ले सतत आधार जिसका था खड़ा अपदस्थ मानव,
ढह रहा वह युग-विनिर्मित चेतना का स्तम्भ ज्यों शव,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
रुक गया जब आज जगती की प्रगति का स्रोत सारा,
विश्व-चिन्तन के प्रवाहों की पड़ी अवरुद्ध धारा,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
यह निहत्थों औ' निरीहों का महा बलिदान कातर,
दीर्घ शोषण का चरम बीभत्स यह विद्रूप लखकर,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
सृष्टि के आदिम युगों की मुक्त बर्बरता लजाती,
त्राण संसृति का न दिखता मृत्यु की भरती न छाती,

आज कवि का मूक क्यों स्वर?
इस महासंक्रान्ति में असहायता का घोर तम तल,
क्या न जीवन का उठेगा उल्लसित विजयी महाबल?

आज कवि का मूक क्यों स्वर?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाम्पत्य सुख

श्रीयुत धनञ्जय भट्टाचार्य्य

भूमध्यसागर के किनारे एक मकान में चाय की मेज़ पर यारों की महफ़िल जमी थी। सूरज दूर पश्चिम के अंचल में मुँह छिपा चुका था, पर आकाश अब भी उसकी अन्तिम किरणों से गुलाबी हो रहा था। चाय-पान के साथ-साथ बातें भी गरमागरम हो रही थीं। प्रेम की बारीकियाँ छाँटी जा रही थीं।

'प्रेम!'

जिसका संसार के इतिहास की तरह बहुत ही पुराना इतिहास है, परन्तु संसार के इतिहास की तरह जटिल और अज्ञेय नहीं, बल्कि अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचलित। हाँ, है वह भी एक गुत्थी ही, जिसपर मनुष्य सदा से अपनी बुद्धि लड़ाता आया है। इतने पर भी आज तक उसकी बारीकियों को कोई समझ नहीं सका। राजा से लेकर रंक तक, दार्शनिक बुद्धिवालों से लगाकर महा-मूर्खों तक--कौन है जिसने इसके फेर में पड़कर संसार की ख़ाक नहीं छानी? यह प्रेम अब भी जारी है और सनातन सत्य के रूप में मौजूद है। इसके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी तो प्राणिमात्र को ही है--पर अपनी वाणी से कोई उसकी व्याख्या और अनुभूति का विश्लेषण नहीं कर सकता। यही इसकी विशिष्टता है।

मित्र-मंडली उस समय इसी अनादि समस्या पर विचार कर रही थी। गोधूली का समय था और सभी के मन शान्त और स्थिर थे। यही कारण है कि वार्तालाप में कोई विशेष जीवन न था।

प्रेम! प्रेम!

यह चित्ताकर्षक शब्द बार-बार ज़बानों पर आ रहा था, कभी मर्दों की ज़बानों पर और कभी स्त्रियों की ज़बानों पर;--और कमरे में ऐसे गूँज जाता था जैसे कोई बुलबुल मनोहर स्वर में कलरव करके हृदय के सुप्तभावों को जगा रही हो।

"क्या यह संभव है कि आदमी आयुपर्यन्त अपने प्रेम में निश्चल और शुद्ध रहे?"

एक दल ने आशंका प्रकट की।

बात अभी समाप्त न होने पाई थी कि एक व्यक्ति ने जिसकी निगाहें समुद्र के शान्त नीलवर्ण तल पर फैली हुई थीं, एक ओर संकेत करके कहा--

"देखो! वह क्या है?"

आकाश में जो थोड़ा-सा प्रकाश मौजूद था उसकी सहायता से दूर एक बहुत बड़ा-सा टीला कुछ धुँधला दिखाई दे रहा था। स्त्रियाँ आश्चर्य और भयमिश्रित दृष्टि से उधर देखने लगीं, जैसे वे कोई अनहोनी वस्तु देख रही हों।

एक मित्र ने कहा--

"यह वही कारसीका टापू है जहाँ वीरता का साक्षात् अवतार नैपोलियन पैदा हुआ था। प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण यह टापू यहाँ से साल में दो बार ही दिखाई देता है।"

टापू के उच्चत्तम हिमाच्छादित पर्वतशृंग दिखाई दे रहे थे। सभी को आश्चर्य था कि सहसा समुद्र में से यह क्या निकल आया है?

"सुनो!"

अभी मित्रमंडली सँभल न पाई थी और सभी कोई अपने अपने विचारों में डूबे हुए थे कि उस व्यक्ति ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए फिर कहना शुरू किया--

"आज इस टापू के दर्शन होने से मुझे एक बहुत विचित्र घटना स्मरण हो आई है। मैंने वह घटना इस टापू में अपनी आँखों से देखी थी।"

"तुमने क्या देखा था?"

एक महिला ने अधीर होकर पूछा।

"मैंने वहाँ प्रेम के साक्षात् दर्शन किये थे।"

यह कहकर उस व्यक्ति ने करवट बदली और इस तरह कथा सुनाई--

\+ \+ \+ \+

पाँच वर्ष बीते कि मैं कारसीका की सैर करने गया था। वहाँ समतल भूमि नहीं है। सारा टापू छोटी-बड़ी पहाड़ियों और बीहड़ वनों से भरा पड़ा है। आबादी भी अशिक्षित, अनपढ़, गवाँर, लड़ाका और जंगली है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लोग बहुत सरलहृदय, निष्कपट और अतिथि-सेवी हैं। प्रत्येक यात्री के लिए उनका द्वार खुला है। अतिथि का प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार करते हैं। वहाँ न होटल हैं, न रेस्तराँ, न सरायें हैं और न मुसाफ़िरख़ाने। धर्मशालायें भी वहाँ नहीं हैं। परन्तु इतने पर भी किसी यात्री को रहने या खाने-पीने का कोई कष्ट नहीं होता। परदेसी किसी भी झोंपड़े पर पहुँच जाये, खाने को पहाड़ियों का दाल-दलिया और रात्रि व्यतीत करने को पुआल का बिस्तर बिना माँगे मिल जायगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं थका-माँदा एक छोटे से घर के सामने पहुँचा। अन्दर एक स्त्री थी। उसने मेरा स्वागत किया। आयु तो काफ़ी थी--पर उसका स्वास्थ्य और गठन बहुत सुन्दर था। समीप ही एक वृद्ध सरकंडों की कुर्सी पर बैठा था। मुझे देखकर उसने भी मेरी अभ्यर्थना की और बिना कुछ कहे-सुने बैठ गया।

"इन्हें क्षमा कीजिए।"

वह स्त्री बोली--

"ये बहरे हैं, ८८ के ऊपर पहुँच चुके हैं।"

उसकी भाषा साफ़ पता दे रही थी कि वह फ़्रेंच प्रजा है।

"तुम इस टापू की तो मालूम नहीं देतीं?"

मैंने तुरन्त प्रश्न किया।

"नहीं!"

उसने गम्भीरतापूर्वक कहा--

"हम फ़्रांस के हैं और हमें यहाँ रहते ५० साल से अधिक बीत गये।"

मैंने आश्चर्य और शंका के साथ उसके मुँह की ओर देखा। मैंने सोचा, फ़्रांस के नागरिक और इस उजाड़ टापू में! ५० साल से!

अभी मैं इसी उधेड़-बुन में था कि एक बूढ़ा चरवाहा आगया और हम खाना खाने के लिए उठ गये। खाना बहुत सादा और संक्षिप्त था। हम शीघ्र ही उठ गये। मैं बाहर आकर दरवाज़े पर बैठ गया और आस-पास की निर्जन, शुष्क पहाड़ियों को देखने लगा। गृहस्वामिनी भी आगई और उसने बात चलाकर मेरे सम्बन्ध में जिज्ञासा आरम्भ की।

"हाँ, तो क्या तुम फ़्रांस से आ रहे हो?" उसने पूछा।

"हाँ, मैं सैर करने के लिए आया हूँ।"

"शायद ख़ास पेरिस के ही रहनेवाले हो?"

"नहीं, मेरा घर शहर नांसी में है।"

मुझे लगा जैसे नांसी शहर नाम का सुनकर उसके चेहरे का भाव बदल गया हो। वह हकलाकर कहने लगी--

"तुम नांसी के हो?"

इसी बीच में उसका वृद्ध पति भी आगया। वह बधिर है, यह बात उसकी मुखाकृति से ही टपकती थी।

"कोई हर्ज नहीं है, ये सुनते नहीं हैं।" उस स्त्री ने शीघ्रता से कहा--एक क्षण रुककर वह बोली--

"तो तुम नांसी के कुछ लोगों से परिचित भी होगे?"

"हाँ, मैं सबको जानता हूँ।"

"सेंट आलिवर परिवार को भी?"

"ख़ूब अच्छी तरह। इस परिवार के कई व्यक्ति मेरे पिता के मित्र थे।"

"तुम्हारा नाम!"

मैंने नाम बता दिया। वह देर तक एकटक मुझे देखती रही, फिर बेहद उदास और क्षीण स्वर में कहने लगी--

"हाँ, हाँ, मुझे अब तक याद है। अच्छा यह तो बताओ कि बर्जमर परिवार का क्या हाल है?"

"नष्ट हो गया!"

"और सिरमूँ परिवार को भी जानते हो?"

"भले प्रकार जानता हूँ। इस परिवार का अन्तिम नामलेवा एक सेनापति था।"

यह सुनते ही उसके मुख पर एक विचित्र प्रकार की घबराहट छा गई। वह एकदम सन्नाटे में आगई। उसके चेहरे पर एक भाव आता था और एक जाता था।

"हाँ, हैनरी द सिरमूँ।"

वह एकाएक उत्तेजित होकर बोल उठी--

"मैं भी उन्हें जानती हूँ। वे मेरे पिता थे।"

मैंने आश्चर्य से अधीर होकर उसकी तरफ़ ध्यान से देखा। मुझे तुरन्त याद आगया कि मुद्दत हुई नांसी के भद्र परिवारों में एक घटना से त्रास फैल गया था। बात यह थी कि एक नवयुवती सूज़ाँ द सिरमूँ अपने सेनापति पिता के अधीन काम करनेवाले एक सैनिक के साथ भाग गई थी। वह सिपाही किसी किसान का पुत्र था--परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही बाँका और सुन्दर युवक था। उसने अपने सेनानी की एकमात्र सन्तान से प्रेम किया--उसे उत्तर में भी प्रेम मिला, दोनों के दिल आकर्षित हो गये और एक दिन अपनी नई दुनिया बसाने के लिए वे चुप-चाप गुम हो गये। दोनों का सम्मिलन कैसे हुआ? घनिष्ठता कैसे बढ़ी? यह एक रहस्य ही रहा। एक दिन प्रातःकाल यही सुनाई दिया कि सूजाँ द सिरमूँ किसी सिपाही के साथ भाग गई--और बस। इससे अधिक किसी को मालूम न हो सका, न भागनेवालों का कहीं पता चला।

"मुझे याद आगया"--

मैंने कहा--

"तो क्या तुम्हारा ही नाम मिस सूजाँ है?"

स्त्री ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। साथ ही मुरझाया हुआ चेहरा अश्रुसिक्त हो उठा! देर तक चुप रहने के बाद काँपती हुई उँगली से वृद्ध को इंगित करके बोली--

"इन्हीं का यह नाम है।"

वृद्ध अपनी जगह गुम-सुम बैठा था। वृद्ध ने यह संकेत कुछ ऐसे ढंग से किया कि मैं समझ गया कि अब भी दोनों के हृदयों में प्रेम-सागर हिलोरें मार रहा है। प्रेम की नवीनता पर समय का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उनके दिल, आज ५० साल बीत जाने पर भी, एक दूसरे के लिए उसी तरह बेचैन हैं जैसे प्रथम मिलन में रहे होंगे! परन्तु मुझे यह इच्छा हुई कि मेरी इस अनुभूति का समर्थन वृद्धा के मुँह से उसी के शब्दों में हो।

"क्या तुम्हारा अतीत ज़ीवन सुखी रहा है?"

मैंने उसका विचार-प्रवाह बदलने के लिए प्रश्न किया।

"हाँ!"

उसने बहुत ही सन्तोष के साथ उत्तर दिया--

"मैं सदा ही सुखी रही हूँ--इनकी दया से!"

यह कहते हुए उसने फिर वृद्ध की ओर संकेत किया। इस बार उसकी उँगली में कम्पन न था।

\+ \+ \+ \+

मैंने प्रेम की इस साक्षात् देवी को श्रद्धा और भक्ति के साथ प्रणाम किया, आदर के साथ उसके पैरों पर सिर रक्खा। मेरा हृदय एक अलौकिक आनन्द और अनिर्वचनीय सुख से आह्लादित हो उठा।

राजैश्वर्य में पली हुई यह लड़की इस गवाँर की जीवन-संगिनी बनकर स्वयं भी गवाँर बन गई। उसने अपनी जीवन-धारा उस मार्ग से बहने दी जिसमें बाह्याडम्बर की गुंजायश न थी। निर्धनता, घोर निर्धनता उसे घेरे हुए है। वह इस प्रेमपाश में बँधकर सभी आधुनिक सुख-सामग्रियों से वंचित हो गई, जैसे उसने इस वृद्ध के प्रेम के बदले में इस वृद्ध के अतिरिक्त सभी कुछ त्याग दिया--स्वेच्छा से, सहर्ष त्याग दिया हो।

एक प्रतिष्ठित और शूरवीर सेनानी की लाडली पुत्री! मोटा-झोटा पहनती है, ज़मीन पर बैठकर दाल-दलिया और कन्द-मूल खाती है। एक भद्दी-सी चटाई पर आराम करती है। रात पृथ्वी पर लेटकर और पुआल ओढ़कर अपने प्रेमी से लिपटकर व्यतीत कर देती है। कोई सांसारिक कष्ट, किसी चीज़ का अभाव, कोई संकट उसके प्रेम की मन्दाकिनी के अजस्र प्रवाह को कुंठित नहीं कर सका। वह वृद्ध का शुद्ध प्रेम पाकर सब कुछ भूल गई! जब तक वह वृद्ध इसके सामने मौजूद है--उसे सभी स्वर्गीय सुख प्राप्त हैं!

प्रेम! तेरा नशा भी कितना उग्र है! जिसे एक बार चढ़ गया फिर उतरने का नाम न लिया!

\+ \+ \+ \+

मैं रात भर इसी विचार-जाल में उलझा रहा और वृद्ध के खर्राटे सुनता रहा। उसके खर्राटे बता रहे थे कि वह सुखी है, सन्तुष्ट है, निश्चिन्त है और भाग्यशाली है। क्योंकि एक पतिव्रता स्त्री उसकी जीवन-संगिनी है।

सूर्योदय होने तक मैं इस दम्पति के सुख और सन्तोष पर विचार करके परमसुख लाभ करता रहा। प्रातःकाल दोनों को नमस्कार करके बिदा हुआ।

\+ \+ \+ \+

यह कहकर वह व्यक्ति चुप हो गया। श्रोता स्तब्ध थे!

"संभव है, ऐसा हुआ हो।"

एक महिला ने दीर्घनिश्वास छोड़ते हुए कहा--

"उसके जीवन का उद्देश्य बहुत साधारण था। मैं तो उसे मूर्ख और कमसमझ ही समझती हूँ।"

"आह!"

एक अन्य महिला ने क्षीण, पर वेदना-भरे स्वर में सिर उठाकर कहा--

"इससे क्या होता है? उसका जीवन तो सुख से बीता!"

टापू की पहाड़ियों पर रात्रि के घने अंधकार की चादर पड़ती जा रही थी। वे शायद इन अमर प्रेमियों के शुद्ध दैवी प्रेम की अमर गाथा याद कराने के लिए ही दृष्टिगोचर हुई थीं।*

* जॉरूक अलेक्जेण्डर (यूनानी) की एक कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-सरकार और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

श्रीयुत डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस-सी०

भारत-सरकार के केन्द्रीय 'ऐडवाइज़री बोर्ड' ने सारे भारतवर्ष के लिए यथासम्भव एक ही पारिभाषिक शब्दावली रखने के सम्बन्ध में विचार किया है। बोर्ड ने इस प्रश्न के विचार के लिए जो उपसमिति बनाई थी उसके सदस्य थे--(१) सर अकबर हैदरी, (२) सर के० रामुन्नी मेनन, (३) श्री एस० सी० त्रिपाठी (डाइरेक्टर, शिक्षा-विभाग, उड़ीसा), (४) श्री डब्लू० एच० एफ़० आर्मस्ट्रांग (डाइरेक्टर, शिक्षा-विभाग, पंजाब), (५) सर ज़ियाउद्दीन अहमद, (६) पंडित अमरनाथ झा (वाइस-चैंसलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय), (७) डाक्टर यू० एम० दाऊदपोता (डाइरेक्टर, शिक्षा-विभाग, सिंध) और (८) एजुकेशनल कमिश्नर, भारतीय सरकार। इन्होंने निम्न तीन व्यक्तियों को अपनी समिति में सम्मिलित कर लिया था--(१) डाक्टर अब्दुलहक़ (मंत्री, अखिल भारतवर्षीय 'अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू'), (२) डाक्टर एस० एस० भटनागर (लाहौर) और (३) डाक्टर मुज़फ़्फ़रउद्दीन कुरैशी (प्रोफ़ेसर, उस्मानिया विश्वविद्यालय)।

इस समिति ने जो-जो प्रस्ताव उपस्थित किये थे वे कुछ हेर-फेर के बाद निम्नरूप में (१२ जनवरी १९४१को) स्वीकृत हुए--

(१) इस अभिप्राय से कि भारतवर्ष में वैज्ञानिक शिक्षा अधिक उन्नति करे, यह वांछनीय है कि यथासंभव सर्वत्र एक ही पारिभाषिक शब्द-प्रणाली का उपयोग किया जाय और इस सम्बन्ध में उन सब चेष्टाओं पर ध्यान रक्खा जाय जो इस विषय को ध्येय मानकर अब तक की गई हैं।

(२) इस अभिप्राय से कि भारतवर्ष की वैज्ञानिक उन्नति और अन्य देशों की वैज्ञानिक उन्नति में संपर्क बना रहे, भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में उन शब्दों को यथासंभव ज्यों-का-त्यों सम्मिलित कर लिया जाय जो अब संसार में अंतर्राष्ट्रीय हो गये हैं। परन्तु इस बात को ध्यान में रखते हुए कि भारतवर्ष की सब भाषायें एक ही मूल से नहीं उत्पन्न हुई हैं, यह आवश्यक होगा कि उपर्युक्त अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के अतिरिक्त ऐसे भी शब्द ले लिये जायँ या गढ़ लिये जायँ जो उन दो मूल भाषाओं पर आश्रित हों जिनसे अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषायें निकली हैं और ऐसे भी शब्द ले लिये जायँ जो इन आधुनिक भारतीय भाषाओं में अब प्रचलित हैं।

इसलिए भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में निम्न भाग रहेंगे--

(क) एक अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली जिसका रूप अँगरेज़ी ही होगा, और जो भारतवर्ष में सर्वत्र प्रचलित होगा।

(ख) ऐसे शब्द जो किसी विशेष भारतीय भाषा के हों और जिनका रख लेना सार्वजनिक शिक्षा के लिए इन शब्दों के प्रचलित होने के कारण आवश्यक हो।

(३) इस अभिप्राय से कि सारे भारतवर्ष के लिए बनी वैज्ञानिक शब्दावली सुचारु रूप से प्रस्फुटित होती रहे यह वांछनीय है कि कोई केन्द्रीय 'बोर्ड आफ़ रेफ़रेंस" हो, जिसकी विशेषज्ञ समितियाँ भी हों। सार्वजनिक प्रश्नों पर इस बोर्ड की सलाह और विशेष प्रश्नों पर निर्णय प्रांतीय सरकारों और स्थानीय परिषदों के लिए मानना अनिवार्य हो।

(४) यह मानकर कि भारतीय भाषायें दो समूहों में विभक्त की जा सकती हैं जिनमें से एक संस्कृत से निकली है और दूसरी अरबी-फ़ारसी से, दो बोर्ड बनें (एक बोर्ड एक समूह के लिए, दूसरा दूसरे के लिए) और प्रत्येक बोर्ड अपने समूह की भाषाओं के लिए एक ही वैज्ञानिक शब्दावली बनाने का प्रयत्न करे।

(५) एकरूपता के विचार से उर्दू में भी गणित के साध्य और क्रियायें बाँई से दाहिनी ओर ही लिखी जायँ।

(६) एकरूपता की वृद्धि के लिए और नवीन शब्दावली का भली भाँति प्रचार करने के लिए पाठ्य-पुस्तकें स्वीकृत करनेवाले बोर्ड आदि उन्हीं पाठ्य-पुस्तकों को स्वीकार करें जिनमें केवल इस नवीन शब्दावली का प्रयोग हो।

ऐडवाइज़री बोर्ड के उपर्युक्त प्रस्तावों से स्पष्ट है कि वह चाहता है कि सरकार अपना ज़ोर लगाकर ज़बर्दस्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब स्कूलों और कालेजों में यथासंभव अँगरेज़ी वैज्ञानिक शब्दावली का प्रचार करे। मेरी समझ में ऐसा करने में लाभ की अपेक्षा हानि कहीं अधिक है। मातृभाषा में विज्ञान पढ़ाने का अभिप्राय यही है कि विद्यार्थी अधिक सुगमता से ज्ञान प्राप्त करे। जब ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे अनेक ऐसे शब्दों को स्मरण रखना पड़ेगा जिनका उसकी परिचित भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं तो ज्ञानवृद्धि का प्रवाह अवश्य ही रुक जायगा। मस्तिष्क नवीन, पूर्णतया अपरिचित, शब्दों के समझने में ही उलझ जायगा। संस्कृत के आधार पर गढ़े हुए शब्द अपने अर्थ के कारण बिना परिभाषा के भी बहुत कुछ समझ में आ जाते हैं। उदाहरणतः फ़ोटोग्राफ़ी सीखनेवाला अँगरेज़ी न जानने पर यह शीघ्र समझ सकता है कि लेंज़ों के भीतर छेद होता है जो आँख की पुतली की तरह छोटा-बड़ा हो सकता है और सस्ते लेंज़ों में रंग-दोष होता है जिसके कारण चित्र अतीक्ष्ण उतरता है। यदि सब पारिभाषिक शब्द अँगरेज़ी के हों तो यही निम्नरूप धारण कर लेगा—

लेंज़ों के भीतर आइरिस डायफ़ाम होता है जो आइरिस की तरह छोटा-बड़ा हो सकता है और सस्ते लेंज़ों में क्रोमैटिक ऐबेरेशन होता है, जिसके कारण चित्र अनशार्प उतरता है।

कोई भी देख सकता है कि अँगरेज़ी के पारिभाषिक शब्दों से विज्ञान की सार्वजनिक शिक्षा में कितनी कठिनाई पड़ेगी।

जिन्होंने कभी स्वयं कोई वैज्ञानिक पुस्तक हिंदी में नहीं लिखी है या किसी अच्छी हिंदी वैज्ञानिक पुस्तक का पूरा अध्ययन नहीं किया है वे समझते हैं कि नये गढ़े हुए शब्द निरर्थक और अत्यन्त जटिल होते हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। संस्कृत न जाननेवाले भी नवीन गढ़े हुए अच्छे शब्दों को देखते ही बहुत कुछ समझ जाते हैं। हिंदी और संस्कृत से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि कोई, चाहे वह कुछ भी संस्कृत न जानता हो, और चाहे हिन्दी भी वह केवल उतनी ही जानता हो जितनी तुलसीकृत रामायण के मनन से जानी जा सकती है, विज्ञानपरिषद् तथा काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के कोषों में आये नवीन गढ़े हुए शब्दों के अर्थों का अनुमान कर सकता है। एक बार हिन्दी में इन शब्दों की परिभाषा समझ लेने पर वह इन शब्दों को शीघ्र न भूलेगा। परन्तु यदि ये ही शब्द अँगरेज़ी में रक्खे जायँ तो वे जहाँ-जहाँ आयेंगे, नौसिखिये को परेशान करते रहेंगे, और बहुत परिश्रम के बाद ही वे परिचित हो पायेंगे। केवल फ़ोटोग्राफ़ी ही ऐसा विषय नहीं है जिसमें उपर्युक्त बातें लागू हों। किसी भी विषय से ऊपर की तरह ही उदाहरण मिल जायँगे। जैसे, गणित को लीजिए। बी० ए० और बी० एस-सी० की पाठ्य पुस्तकों में प्रायः प्रथम बार आनेवाले कुछ शब्दों का हिंदी-रूपान्तर नीचे दिया जा रहा है—

चल-राशि, स्थिर-राशि, स्वतंत्र चल-राशि, परतंत्र चल-राशि, अविच्छिन्न चल-राशि, सीमा, अनंत, अनंत-स्पर्शी, वक्रता, वक्र-लेखन, महत्तम और लघुतम मान, अनिर्णीत मान।

हिंदी-द्वारा गणित पढ़नेवाले को क्या इनके बदले अग्रलिखित शब्द इतनी ही सुगमता से स्मरण रह पायँगे?—वेरियेबल, कॉन्स्टैंट, इनडिपेंडेंट वेरियेबल, डिपेंडेंट वेरियेबल, कांटिनुअस वेरियेबल, लिमिट, इनफ़िनिट, ऐसिम्पटोट, कर्वेचर, कर्व-ट्रेसिंग, मैक्सिमा और मिनिमा, इनडिटर्मिनेट वैल्यू।

इनमें से बहुतेरे शब्द तो अँगरेज़ी उच्चारण के अनुसार ठीक-ठीक लिखे भी नहीं जा सकते!

केवल इतना ही नहीं, एक धातु से निकले हुए अनेक शब्दों को अलग-अलग लेना पड़ेगा; उदाहरणतः, variable शब्द यदि लिया जायगा तो इतने से ही काम न चलेगा; इसके साथ-साथ variability, variation, in variable, invariant और संभवतः variableness, variably, variance, variant, variate, varied, variegate, varier, varietal, variety, variform, variometer, various, invariability, invariableness, invariably आदि शब्दों को भी ज्यों का त्यों लेना पड़ेगा। परिणाम यह होगा कि भविष्य के वैयाकरणों को किसी लिये हुए विशेषण से संज्ञा, क्रिया आदि बनाने के नियमों में वे सब नियम देने पड़ेंगे जो आज अँगरेज़ी में प्रयुक्त होते हैं! फ़ुट शब्द के साथ-साथ आज हिंदी में इसका बहुवचन फ़ीट भी चला आया है। इसलिए संभवतः भविष्य में जितने शब्द लिये जायँगे उनमें से अधिकांश के बहुवचन भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेने पड़ेंगे और तब हिन्दी की जो छीछालेदर होगी वह देखने ही योग्य होगी !

यदि सारे भारतवर्ष में एक ही शब्दावली के प्रचार के बहाने हिन्दी की दुर्दशा करनी हो तो बात दूसरी है, नहीं तो यह नहीं समझ में आता कि जब कभी कोई विद्यार्थी अन्य भाषा सीखेगा तब वह जहाँ दो-चार हज़ार साधारण नवीन शब्द सीखेगा वहाँ अपने विषय के दो-चार सौ--या हज़ार दो हज़ार ही सही--पारिभाषिक शब्द न सीख लेगा।

मेरी तो राय है कि भारतीय सरकार हिन्दी आदि भाषाओं की उन्नति के विचार से ऐडवाइज़री बोर्ड के प्रस्तावों को कार्यरूप में कदापि न परिणत करे।

हँसता-गाता हूँ !

श्रीयुत गोपीकृष्ण

मैं रोकर हँसता-गाता हूँ !
मैंने कभी न चाहा, मेरे गायन गूँजें धरा-गगन में,
और न क्षण भर भी रह पाऊँ मैं अपने ही आर्द्र-नयन में।

जो पथ भटके, मुझको खटके,
मैं ध्रुवतारा कहलाता हूँ!
मैं रोकर हँसता-गाता हूँ!

मैंने कभी न चाहा, मेरे आँसू भर दें सूखे सागर,
और न अपना भी रह जाऊँ मैं अपनेपन को अपनाकर।

बीत गये युग, मैं दुनिया को--
जीना-मरना सिखलाता हूँ !
मैं रोकर हँसता-गाता हूँ !

मैंने कभी न चाहा, कह दूँ मैं देवों से भी मनचाही,
मुझको मेरा पाप खला ही, मुझको मेरा पुण्य फला ही।

जीवन है देवत्व मनुज का,
अपनी पूजा करवाता हूँ !
मैं रोकर हँसता-गाता हूँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशाख-सावनी

श्रीमती उषादेवी मित्र

'ब'रसे-गरजे रे बादरिया, बँधा ले भैया ए रखिया।'

प्रशस्त और प्रशान्त नदी-तट; नीलाभ जल-राशि, शत-शत बुद्-बुदों की लीलायित भंगिमामय क्रीड़ा; ताम्रवर्ण सूर्य की प्रतप्त रश्मि-राशि; लू-लपटों में विकीर्ण ज्वालामुखी; कंठाग्र भाग में झंझाजड़ित भीम संगीत; मानो इस वैशाख-संध्या की उपेक्षाकर झरने की शीतल वारिधारा की भाँति सावनी झूम-झूम कर झर रही थी—'बरसे गरजे रे बादरिया।'

नदी-तट पर विदा देनेवालों का और विदा चाहनेवालों का अपूर्व समारोह था। जल में श्वेत बकों की भाँति युद्धपोत खड़े थे और नदी-तट पर थी युद्ध-यात्रा के लिए प्रस्थानोन्मुख भारतीय सेना। बालिकाओं, युवतियों और वृद्धाओं के कंठ मानो समवेत राग की मिष्टता में आप्लावित हो रहे थे। नारियों के हाथ में हलके लाल रंग का रेशमी धागा था जिसे वे बारी-बारी प्रत्येक पुरुष के आगे बढ़े हुए हाथ में बाँधती जाती थीं। मानो मातायें अपनी सन्तानों को रक्षा-कवच पहना रही हों। नारियों के हाथों का वह लाल धागा, उनके वात्सल्यपूर्ण और प्रवहमान हृदय युद्ध की उमंगों से परिपूर्ण किन्तु गृह-वियुक्त सैनिक और वैशाख का तप्त-रौद्र वायु—इन सबके सम्मिलन से एक अभूतपूर्व रस की सृष्टि हो रही थी।

और इन सबसे दूर खड़ा था वह बजरा—मानो अपनी स्वतंत्र सत्ता की रक्षा करता हुआ। बजरे से उठती हुई स्वर-झंकार नीरवता में नहीं, उस सहस्र नारी-कंठ निर्गत स्वर में विलीन होती जा रही थी, इसका ज्ञान संभवतः उस गायिका को स्वयं भी न था; और होता भी कैसे, वह स्वयं अदम्य कौतुक-भावना से आकृष्ट होकर नदी-तट पर एकत्र उन महिलाओं के निकट-सन्निकट पहुँच चुकी थी। और उसके लावण्य से आकर्षित होकर उसके पीछे खड़ा था इस समय ललित—धनी, विलासी, युवक; जो इस उग्र आकर्षण की उपेक्षा करने में असमर्थ होकर अपने सुख-पालित शरीर को बजरे की कोमल रेशमी गद्दी-तकियों से विच्छिन्न करके यहाँ तक ले आया था; पर बजरेवाली गायिका को इसका कुछ भान नहीं था।

"इस जलती गरमी में रक्षाबन्धन और सावनी गाना! यह सब क्या स्वाँग रच रखा है तुम सबने, बहन!"—जैसे अपने आप सुरभी का कौतुक फूट पड़ा।

नारियों की भीड़ में अटल शान्ति वैसी ही विराजमान रही। उन सबकी अग्रवर्तिनी चन्द्रमुखी हँसी, मुस्कराई और फिर आयत लोचनों को प्रश्नकारिणी के मुख पर डालती हुई बोली—"यह वैशाख-सावनी है न, बहन!"

तब युद्ध-यात्री चल चुके थे; उनकी छाया ग्राम-क्रोड़ से हट चुकी थी। संध्या की श्यामली धरती पर लोट रही थी।

एक विस्मित प्रसन्नता सुरभी के सौरभ-पूर्ण मुख पर खिल उठी। वह बोली—"अनहोनी भी कभी हुई है?"

"सो भी इसी दुनिया में?—मैं कहती हूँ, हुई—है, होती है, अनहोनी कुछ है भी कहाँ?" सुरभी कुछ कहने को हुई, पर वह रुक गई। वह केवल इतना कह सकी—"कुछ कहना मेरी अनधिकारचर्चा तो न होगी? डरती हूँ, बहन।" सब महिलायें जैसे हँसी से भर उठीं। वे सभ्यता के युग की उस सभ्य रीति को शायद समझीं, शायद न समझीं। उसी सरलता से उत्तर निकला—"यदि हर बात में हम सोच-विचार की बेड़ी कसें, अधिकार-अनधिकार की दीवाल अड़ायें—सो भी एक दूसरी बहन के सामने? तब हम जिएँ भी कैसे? असंकोच पूछो न बहन, क्या पूछना, क्या कहना चाहती हो?"

"कह रही थी—इस प्रचण्ड गरमी में वर्षण और गर्जन तुमने कहाँ पाया?"

"सुन नहीं रही हो बम-तोप-मशीनगन आदि के भीषण गर्जन को? देख नहीं रही हो उस विराम-हीन रक्त की वर्षा को?"

"केवल कल्पना, कवि की कल्पित कविता," दबी हँसी से सुरभी बोली। "यदि तुम इसे अनधिकारचर्चा न समझो तो कहने से रुकूँ भी क्यों? मुझे सचमुच यहाँ के दृश्यों को देखकर अचम्भा हुआ।"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है बहन? अपने मन और रुचि के बाहर की बात देखने से विस्मय होता ही है न!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शायद ऐसा हो, किन्तु इस असमय की राखी से लाभ ही क्या ?"

"मन की भूख, रुचि, तृष्णा और मन का स्नेह देने के लिए, भूख बुझाने के लिए समय-असमय का प्रश्न ही क्या ? वह तो आदमी के अधीन है न, आदमी समय का अधीन नहीं, तभी तो रामचन्द्र जी ने अकाल-पूजा की थी। इसे हम एक सूझ भी कह सकते हैं।"

"सूझ ? मजे की सूझ है।" हँस-हँसकर चुटकियाँ लेती-सी वह लौटकर ललित को देखने लगी। सुरभी की उस हँसी की केसर रँगी गुलाली में ललित रँग-सा उठा और परिहास-तरल कंठ से बोला—"तो ये राखी के लाल नन्हें नन्हें डोरे उन सबकी रक्षा करेंगे—उस मौत के मैदान में ? स्त्रियों के मन भी कैसी भावुकता से भरे हुआ करते हैं।"

"ये डोरे—जो हमारे मन की भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, शुभ-कामना से बने हैं, क्या कभी व्यर्थ भी जा सकते हैं ? ज़रूर ही उन सबकी रक्षा करेंगे ये डोरे।"—स्त्रियाँ चिढ़ रही थीं।

परन्तु इसके बाद भी चन्द्रा का धीमा किन्तु संयत स्वर जब ध्वनित हो उठा, तब ललित का उच्छृंखल चित्त भी जैसे विमूढ़ हो रहा। चन्द्रा नम्र-दृढ़ता से कहने लगी—"हाँ—रक्षा के ये डोरे, भारत-नारी के हाथ से कते-बुने ये रेशम के लाल डोरे रक्षा करेंगे न केवल उनके प्राणों की, ये रक्षा करेंगे युद्ध के मैदान में उनके साहस की। उस साहस की रक्षा कर एक दिन उसे विश्व-प्राङ्गण में शुक तारा की तरह दीप्यमान कर देंगे। यह वही रक्षा की डोरी है जिसे अपरिचित के हाथ में बाँधकर राज-पूतनियाँ उसे अपना लेती थीं। इसी के बल पर सहोदरा का स्नेह-अधिकार अपने घर समेट लेती थीं, राज्य को सुरक्षित करती थीं। वह—वही रक्त-बूँद-सी लाल डोरी।"

"साहस—साहस की रक्षा ! आप कह रही हैं साहस की रक्षा ?" अखंड विस्मय से भरकर ललित कह उठा।

"हाँ, साहस की ही रक्षा। फिर इसमें सन्देह भी कैसा ?"

"सन्देह ? शायद न हो। किन्तु फिर भी यह बात जाने कैसी अद्भुत-सी लगती है।" ललित चुप हो रहा।

"कैसा अन्ध-विश्वास है।"—पल भर के बाद फिर उसके मुख से निकल पड़ा।

"नहीं। विश्वास का विराट् व्यापक रूप कहिए।"

'विश्वास का विराट् व्यापक रूप ? आप पहेली बूझ रही हैं, श्रीमती।"

"यदि उस दिन के प्रत्येक का एकनिष्ठ विश्वास तिल-तिल जमकर एक विराट्ता को प्राप्त हो गया हो, यदि वह विराट्ता, वह विश्वास विश्व की वायु में व्याप गया हो, तो इसमें अभावनीय, अद्भुत की जगह है ही कहाँ, महाशय ?"

"दीदी, घर लौटना है या खड़ी-खड़ी इन दोनों से प्रश्न-उत्तर करना है ?"—छोटी लड़की झुँझलाकर बोली।

"चलो।" कहती हुई चन्द्रा आगे बढ़ी।

(२)

हिमालय-शिखर के पवन का शीतल झोका वैशाख-संध्या के तप्त तनु में प्रवेश कर चुका था। बनस्थली की धूमायित अन्धकार राशि, तब केवल मुट्ठी-मुट्ठी भर निशीथ के आँचल में जमनी आरम्भ हुई थी। गौओं का हम्बा रव पल भर पहले नीरव हुआ था; वृक्षों की पल्लव-राशि में कागों का जत्था बैठ चुका था; नदी-तट से श्वेत बकों की टोली विदा ले चुकी थी। चलते-चलते चन्द्रा रुकी और पीछे लौटी एवं सुरभी व ललित के निकट पुनः पहुँची। स्त्री-समाज भी उसके पीछे लौट पड़ा।

चन्द्रा बोली—"शायद आप दोनों इस गाँव में नये आये हैं। हमारे अतिथि हैं। रात में आप दोनों कहाँ ठहरेंगे ? चलिए हमारे साथ।"

सुरभी के उन अर्थपूर्ण नेत्रों की भाषा जो कि ललित के मुख पर पलभर के लिए पड़ी हुई थी, उसे शायद ही चन्द्रा समझ सकी हो, अथवा उसने समझने की चेष्टा की हो, उसी व्यस्तता में उसका स्वर भर उठा—"अपने पति से पूछो, बहन।"

"पति ?" सुरभी ने झोके से नीचे दबकर कहा।

सुरभी के उच्छृंखल-उच्च हास्य से नारी-झुण्ड में विरक्त-विराग व्याप गया। केवल चन्द्रा स्तब्ध, अचल रह गई।

और वह ललित ? न जाने क्यों उसका उच्छृंखल चित्त उस हँसी में योग न दे सका, न जाने क्यों उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-स्फुरित अधर में विवणता व्याप गई। कदाचित् उसके ही अनजान में आँखें सीमन्तिनियों के माथे के जासौन जैसे लाल सेंदुर पर पड़कर लौट पड़ीं सुरभी के सिन्दुर-हीन मस्तक पर, वैसे ही सहसा एक विपुल लज्जा के नीचे जैसे वह दब-सा गया।

"ये तुम सबके अपरिचित शायद हों, किन्तु इस गाँव के नहीं।" सुरभी इठला कर बोली।

"पहले कभी यहाँ आये हैं?"

"ग्राम के प्रतापी ज़मींदार ललित बाबू का नाम आप लोगों ने कभी नहीं सुना?" गर्व सुरभी के मुख पर साकार हो उठा।

"मैं यहाँ प्रायः नहीं आता। इस बार आठ वर्ष के बाद आया हूँ।" ललित ने शीघ्रता से कहा।

चन्द्रा ने पीछे लौटकर देखा, बहुत-सी नारियाँ मुखों पर घूँघट डालकर वहाँ से चल चुकी थीं।

"अच्छा तो।" चन्द्रा ने हाथ उठाकर विदा माँगी।

'मिनट भर ठहरिए।"

ललित के मुँह की बात को जैसे रोकती-सी सुरभी ने कहा—"राखी बँधवाने का लोभ हो रहा है क्या? और फिर फूल जैसे नरम हाथों की राखी।" अपने परिहास में सुरभी स्वयं मस्त-सी झूमने लगी।

"शायद किसी दिन ज़रूरत पड़ जाये, बहन, अभी से कोई कहे भी कैसे? मेरा घर? वह जो आम की बारी है न, बस वहीं है मेरा घर।"

सुरभी ने उत्तर दिया—"आम की बारी भी है? तो उस राधिका के कुंज में कभी कृष्ण कन्हैया भी पहुँच जायेंगे, मैं बन जाऊँगी पथ-प्रदर्शिनी।" ललित के हाथों में हाथ डालकर सुरभी जैसे नृत्य करने लगी।

"क्या तुम सोचती हो उस दिन मैं चुप बैठी रहूँगी बहने, जिस दिन इन्हें राखी बाँधने की ज़रूरत पड़ेगी? उस दिन तुम देखना बिना बुलाये ही चन्द्रा पहुँच जाती है या नहीं।" यह कहकर चन्द्रा एक विश्वसम्राज्ञी के गौरव के साथ वहाँ से विदा हुई। उसकी महत्ता के सामने वह चपल परिहास अप्रतिभ-सा हो गया।

परन्तु परम आश्चर्य तो यह है कि सुरभी की रंगीन खिलखिलाहट तक उस बेला में ललित की ध्यान-तन्द्रा पर प्रभाव-विस्तार करने में असमर्थ रही। ललित चन्द्रा का गमन-पथ की ओर एकटक देखता रह गया।

(३)

ग्रीष्म के तप्त श्वास में तब केतकी फूल पड़ी थी; चील-कागों के स्वर में तृष्णा की आतुरता भर उठी थी। नदी-जल मेघों की तृष्णा में समा रहा था। स्त्रियाँ कुटीर के प्रांगण में धीरे-धीरे गा रही थीं—"बरसे-गरजे रे बादरिया!"

और तब उस ध्वनि में मोटर रुकने की ध्वनि आ मिली। ललित पर दृष्टि पड़ते ही चन्द्रमुखी उठकर खड़ी हो गई। मुसकराहट के साथ अभिवादन कर बोली—"तो ज़रूरत पड़ गई है आज आपको राखी बाँधने की?"

"राखी?" ललित पलभर अप्रतिभ-सा खड़ा रहा। शायद इस लू-लपटों से भरी दोपहरी में कुटीर-प्राङ्गण में उस नारी-मेला की सम्भावना तक उसके मन में न उभरी हो, कदाचित् उस एक दिन का परिचय ही उसके विलासी मन को वहाँ तक खींच लाया हो; हो सकता है एकान्त में वह चन्द्रा से विदा लेने को आया हो, या यों ही चलते-चलते उस द्वार पर आकर रुक गया हो। चाहे कारण कुछ भी हो, पर यह सत्य है कि पलभर के लिए वह लजाया, शर्माया, संकुचित हुआ और दूसरे ही पल उस चिर अभ्यस्त निर्लज्जता ने अपना स्थान ले लिया। चन्द्र-मुखी के हाथ की राखी को देखकर वह झुँझला पड़ा—'ज़बर्दस्ती बाँधेंगी आप राखी? खासा स्वाँग रच रखा है। ज़बर्दस्ती जाना पड़ेगा लड़ाई पर। बस, यही न?"

"मैंने सोचा कि इसी लिए आप आये हैं।" लज्जा से विवर्ण होती हुई चन्द्रा बोली।

"तो भरी दोपहरी में लड़ाई पर जाने के लिए इस दरवाज़े पर दौड़ा आया हूँ?"

"मैं ग़लत समझी।"

"क्यों नहीं, मर्दों की जान मुफ़्त की है न! जाओ तो सही तुम लोग लड़ाई पर तब समझूँ। घर पर बैठकर सभी बहादुरी दिखला सकते हैं।"

उसके कहने के ढंग से सब स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

इसी का तो हमें गर्व है। भारतवासी भारत-रक्षा के लिए अड़कर खड़े हैं। भारत आज भी वीर-शून्य नहीं है।" चन्द्रा अनुत्तेजित स्वर से बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न काम, न काज। बस दिन भर बैठकर चरखा कातना, सूत निकालना और मर्दों के हाथ में बाँधना—उठाओ हाथ, बाँधो राखी और चलो लड़ाई पर। किन्तु सोच लिया है उस दिन का वह भयानक रूप? यदि शत्रु जीत जावे तो पुरुषहीन भारतवर्ष की दशा क्या होगी? शायद विपक्षी दल भारत पर चढ़ आये, तब क्या करोगी तुम?"

"वही तो एक बात है, ललित बाबू, जब कि हमारे पास आत्म-रक्षा के लिए कुछ है ही नहीं तब—"

"तब और क्या? बस मजे से बैठी सब गाना गाती रहना और यही डोरे कातती रहना।"

"अब समझे आप, सो भी इतनी देर में। हम अर्द्धांगिनी की जाति हैं। यदि हमारे पास और कुछ नहीं है तो मन तो है न? यदि उस प्राण में जीवन की स्फूर्ति है तो उस स्फूर्ति से पुरुष का, योद्धा का साहस क्यों न बढ़ायें? उस साहस को जीवन्त क्यों न करें? प्राण की स्फूर्ति उसमें क्यों न भरें? वीरों को, योद्धाओं को रक्षा-कवच से क्यों न आच्छादित करें?"

"कोरी कल्पना, उथली भावुकता! यदि विदेशी भारत पर चढ़ आये—?"

चन्द्रा बात काटकर बोली—"ईश्वर न करे, यदि वैसा एक दिन भारत के सिंहद्वार पर पहुँच ही जाये, यदि भारत पुरुषहीन हो ही जाय तो भारत-नारी के हाथ से कते ये रक्षा के डोरे क्या बेकार ही जायेंगे?"

"फिर आखिर करोगी क्या?" ललित ने परिहास-तरलता से पूछा।

"वही जो पुराना भारत किया करता था।"

"ठीक है। तब की वीराङ्गनायें लड़ा करती थीं तीर-कमान, ढाल-तलवारों से, तुम लड़ोगी इन धागों से।"

उस तीव्र व्यंग्य की नग्नता से नारी-मंडली अंगार जैसी जल उठी। केवल चन्द्रा स्थिर, धीर, शान्त रही—यदि इन सूतों से काम न चले तो हम क्या करेंगी, सो अभी से कह सकना कठिन है।"

"कहोगी भी क्या? तुम्हारी नाजुक भावना की दौड़ सूत ही तक तो है न। सूत के ढाल-बरछे, वही बच्चों का खेल।"

ललित खिलखिलाकर हँस पड़ा और लाल डोरा हाथ में लिये चन्द्रा हँसी रुकने की प्रतीक्षा करने लगी। "इन धागों का महत्त्व भी कहीं कभी बेकार हो सकता है? इसी बन्धन से हम विपक्षी को बहन के स्नेह-बन्धन में खींच लायेंगी, हर एक के हाथ में राखी का डोरा बाँध कर उन्हें भाई बना लेंगी।"

इस बार न जाने क्यों ललित का परिहास मौन हो रहा। और जब उसने हाथ बढ़ाया, तब चन्द्रा के अतिरिक्त सब स्त्रियाँ विस्मित रह गईं। चन्द्रा ने परम आदर से उस बढ़े हुए हाथ में राखी का डोरा बाँध दिया।

"शायद ही मैं उस साहस की रक्षा कर सकूँ, चन्द्रा—वही साहस जिसे एक दिन विश्व-प्राङ्गण में मूर्त देखना चाहती हो। नहीं जानता तुम्हारे इस विश्वास का, तुम्हारी इस राखी का मूल्य मैं दे सकूँगा या नहीं। बाँध दी तुमने एक अनाड़ी के हाथ में वही चिर सम्मानित, प्रभावशाली राखी। तो भी विश्वास करो, इसके सम्मान रखने की चेष्टा मैं करूँगा। यदि न कर सकूँ तो यह राखी ऐसी ही सम्मान के साथ तुम्हें वापस कर दूँगा।"

सहसा ललित चल पड़ा। चन्द्रा कुछ कह-सुन न सकी।

(४)

भोर की रूपाभ वेला में विश्व-व्यापी ओंकार-ध्वनि साकार-सी हो रही थी। कपोत-कपोती प्रातःभ्रमण को निकल चुके थे। नदी-किनारे शत-शत युद्ध-यात्रियों व युद्धागतों का अपूर्व समावेश था। अनेक नौकायें तथा बोट तैयार खड़े थे। तट पर नारी-कंठ निःसृत मीठा गान था—"बरसे-गरजे रे बादरिया—"

सुरभी उन सबसे जरा दूर खड़ी व्यंग्य-कौतुक से मुस्करा रही थी, दृष्टि किसी की प्रतीक्षा में नदी तट पर आबद्ध थी।

वह छोटी नौका तीर पर पहुँच गई। श्वेताङ्गिनी नर्स का हाथ थामे तीर पर एक अन्ध युवक उतर पड़ा। किसी ने उस ओर ध्यान न दिया। चन्द्रा धीरे-धीरे उसके निकट पहुँची—"विजयी वीर, यह श्रद्धा का हार पहनो!"

अधीर सुरभी चिल्ला उठी—"कहाँ खो आये वे सुन्दर, मोहक आँखें जिनमें अपार प्रेम-सागर लहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था ? जिनम लालसा की लम्पटता कभी बुझ न पाती थी, वैसी, वे आँखें आज कहाँ खो आये हो तुम ?"

"रण-प्राङ्गण में। विश्व-व्यापी इस रक्त-पिपासा की देन तो मुझे चुकानी ही थी न, सुरभी। मैं जानता था कि इस कुत्सित, असुन्दर को तुम सहन न कर सकोगी। तो भी मुझे आना पड़ा--चन्द्रा की धरोहर लौटाने के लिए।"

"धरोहर ?" गेंदे का हार ललित के गले में डालती हुई जैसे चन्द्रा चौंककर बोली।

"किन्तु मैं तो यह हार पहनने के योग्य नहीं हूँ, चन्द्रा। इस राखी की मर्यादा मैं नहीं रख सका; उस साहस को विश्व के प्राङ्गण में मूर्त नहीं कर सका; युद्ध के मैदान में प्राण नहीं दे सका। इन अन्धी आँखों को लेकर कापुरुष की भाँति लौट आया हूँ। लो, अपनी राखी।"

"प्राण देना ही क्या बड़ी बात है ? मौत ही क्या अन्तिम निपटारा है ? वह साहस ? किन्तु युग-युग से वह विश्व के प्राङ्गण में व्याप्त है। जरूरत है उसे मूर्ति देने की। आँखों की दृष्टि ? किन्तु हानि ही क्या है ? मन की दृष्टि आज तुम्हारी उज्ज्वलतर है, उसी दृष्टि को लेकर भारत के कोने-कोने से निद्रालु साहस को बटोरो, उसे जनता के भीतर एक विराट् रूप देने की चेष्टा करो। यह राखी ? किन्तु यह केवल बँधना जानती है, खुलना नहीं। आओ मेरे साथ।" चन्द्रा सम्भ्रम से ललित का हाथ पकड़कर चलने लगी। नर्स के नेत्र विस्मय से विस्फारित हो उठे। सुरभी के मुख पर लज्जा की लालिमा व्याप गई। सूर्य की किरणें तब वृक्षाली की आड़ से झाँक रही थीं। राखी बाँधती हुई स्त्रियाँ तब वैसे ही झूम-झूम कर गा रही थीं--

बरसे-गरजे रे बादरिया,
बँधा ले भैया ए रखिया।

कह न सकोगे ?

श्रीयुत मनोरञ्जनसहाय श्रीवास्तव

जग कहता पापी, मग-भ्रम, क्या तुम कुछ कह न सकोगे ?

अंधकार है, प्यास लगी है,
चातक को कुछ आस लगी है,
जीवन में तूफ़ान उठा है—

मलयानिल का मंद झँकोरा बन क्या बह न सकोगे ?

भूल गया सब कुछ प्रिय अपना,
जीवन का सारा सुख-सपना,
पंख पसारे उड़ा चाहता—

तृषित हाय, गिर-गिर जाता, क्या गिरना सह न सकोगे ?

मूक प्रकृति है, मूक बना मन,
मूक आज सारा जग-जीवन;
अरे आज तूफ़ान बने तुम !

बोलो देव, यातना छोड़ो,—चुप क्या रह न सकोगे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभदा

अनुवादक, पंडित ठाकुरदत्त मिश्र

हाराणचन्द्र के हाथ में जमींदार नन्दी की तहसील-वसूली का काम था। हाराण विश्वासपात्र होते हुए भी धीरे-धीरे ग़बन करने लगा। नन्दी ने उसे हवालात में भिजवा दिया, पर गाँव में इस घटना को केवल भगवततारण ही जान पाया। भगवततारण की पुत्री विन्दो जब गाँव की स्त्रियों के साथ गंगा-स्नान करने के लिये गई तो उसे कलह-प्रिय कृष्णप्रिया से यह ज्ञात हुआ कि हाराण मुकुर्जी के यहाँ कोई दुःखद घटना घटी है। पर कृष्णा ने और कुछ प्रकट नहीं किया। उत्सुक विन्दो ने अन्त में अपनी मा से यह भेद जान लिया। सहानुभूति से उसका हृदय भर आया और वह हाराण की पत्नी शुभदा को अपने हाथ की चूड़ियाँ इस लिये दे आई कि वह नन्दी ज़मीदार को समझाकर अपने पति को छुड़ा सके।

तीसरा परिच्छेद

भगवान् बाबू की दयालुता

दोपहरी में वायु का वेग बहुत प्रचण्ड हो उठा था। उसके झकोरों से टक्कर लेने में असमर्थ होने के कारण मेघ छिन्न-भिन्न हो उठे थे। परन्तु साँझ होते ही वे एक-एक करके बहुत ही समारोह के साथ डंका देते हुए आकाश पर अधिकार करने लगे। उन सबको इस प्रकार धूम-धाम से चढ़ाई करते देखकर लोगों ने निश्चय किया कि आज वृष्टि हुए बिना न रहेगी। वृष्टि की सम्भावना के कारण लोगों को प्रसन्नता भी कम नहीं हुई। सबने सोचा–अच्छा है, पानी बरसने से कुछ ठंडक हो जायगी और इस भयङ्कर गर्मी से प्राण बच जायँगे। इस प्रकार यह वृष्टि सभी के मङ्गल का कारण थी। एकमात्र शुभदा ही ऐसी थी जिसके मन में आ रहा था कि मेरे भाग्य के दोष से इस दुर्योग का सूत्रपात हुआ है।

वास्तव में वह समय शुभदा के लिए बहुत ही प्रतिकूल था। एक तो हलुदपुर के झाड़-झंखाड़ के बीच से होकर उसे जाना था, दूसरे बादलों की उमड़-घुमड़ हो रही थी। तो भी उसे यात्रा करनी ही पड़ी। दोनों कङ्कणों को उसने साड़ी की छोर से बाँध लिया, बाद को एक बिछौने की चद्दर से शरीर को भली भाँति ढककर वह निकल पड़ी। पहले वह कभी ब्राह्मणपाड़ा गई नहीं थी। उसने यह सुना अवश्य था कि सीधे उत्तर की ओर आध कोस चलने के बाद पक्की सड़क मिलती है और उससे होकर ज़रा ही दूर तक चलने पर ब्राह्मणपाड़ा मिलता है।

इसी जानकारी के आधार पर शुभदा घर से निकल पड़ी। उसने सोचा कि ब्राह्मणपाड़ा पहुँच जाने पर ज़मींदार की कोठी मिलने में किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। उसने यह भी सुन रक्खा था कि गाँव में प्रवेश करते ही नन्दी महोदय की ऊँची अट्टालिका दिखाई पड़ती है। इससे वह और भी बहुत कुछ निश्चिन्त थी। परन्तु हलुदपुर की अन्धकारमय पगडंडी को पार करके पक्की सड़क तक पहुँचने में ही उसे अत्यधिक संकट सहन करना पड़ा। उसके ज़रा ही दूर बढ़ने पर अन्धकार प्रगाढ़ हो उठा और बूँदें भी पड़ने लगीं। परन्तु शुभदा साहसपूर्वक बढ़ती ही जा रही थी। ज़रा ही देर में जब वे बूँदें मूसलधार वर्षा के रूप में परिणत हो गईं तब वह एक वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई। रास्ता चलना अब असम्भव था। अन्धकार के कारण हाथ भर दूरी की भी चीज़ें दिखाई नहीं पड़ रही थीं। ज़ोरों की वर्षा तो हो ही रही थी, साथ ही रह-रहकर बिजली चमकती और बादल भी गरज उठते। इससे शुभदा की अन्तरात्मा काँप उठी।

वृक्ष की छाया में शुभदा अधिक समय तक नहीं रह सकी। उसने देखा कि चारों ओर से वन के पशु दौड़ते हुए इस वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करने के लिए आते हैं और यहाँ मनुष्य की मूर्त्ति देखकर भय के मारे चिल्लाते हुए भाग जाते हैं। इससे शुभदा के मन में एकाएक यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात आई कि कहीं आश्रय की आकांक्षा से चोर-डाकू न यहाँ आ पड़ें। उस अवस्था में तो परिस्थिति बहुत ही भयावह हो उठेगी। प्राणों के लिए शुभदा को इतना भय था नहीं, भय था उसे सुवर्ण के दोनों कङ्कणों के लिए। वे कङ्कण उसके लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् थे। उन्हीं को देकर वह स्वामी को छुड़ाने जा रही थी, इसलिए वे ही उसके लिए आशा-भरोसा सब कुछ थे।

बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद भयभीत होकर शुभदा उस वृक्ष की छाया से हट आई। वह फिर आगे की ओर बढ़ने लगी। उसका सारा शरीर कीचड़ से सन गया था। पेड़-पौधों की खरोंचों तथा कण्टकों के लगने के कारण उसके शरीर के सभी अंग क्षत-विक्षत हो उठे थे। तो भी शुभदा ने विराम नहीं ग्रहण किया। निमिषमात्र के लिए भी वृष्टि शान्त नहीं होती थी। एक क्षण के लिए भी बादलों की गड़गड़ाहट का अन्त नहीं होता था। कहाँ और किस ओर जा रही हूँ, यह बात भी उसे ठीक से मालूम नहीं हो पाती थी। तो भी सामने झुके हुए पेड़-पौधों को बगल करती-करती वह बराबर चलती ही गई।

दुगुने उत्साह से चलते-चलते शुभदा ने देखा तो वह सचमुच पक्की सड़क पर आ पहुँची थी। परन्तु अब एक दूसरी ही चिन्ता ने उसे आ घेरा। जब तक तो उसे रास्ता नहीं मिल सका था, तब तक वह केवल इसी चिन्ता में थी कि मैं किस प्रकार निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच पाऊँगी। परन्तु अब वह कार्य्य की चिन्ता से अधीर हो उठी। शुभदा के मन में आया—इतनी रात में किस प्रकार मुलाक़ात हो सकेगी बाबू साहब से? मुलाक़ात होने पर भी क्या कार्य्य सिद्ध हो जायगा? कार्य्य सिद्ध हो या न सिद्ध हो, ऐसे विकराल समय में मैं घर कैसे जाऊँगी लौटकर?

इसी प्रकार की कितनी ही बातें सोचते-सोचते शुभदा ने ब्राह्मणपाड़ा नामक ग्राम में प्रवेश किया। ज़रा ही दूर चलने पर वह एक विशाल अट्टालिका के समीप पहुँच गई। उस अट्टालिका से मिला हुआ एक बगीचा था, जिसके चारों ओर तार का घेरा था। शुभदा ने समझ लिया कि यही नन्दी-महोदय का स्थान है। इससे वह सोचने लगी कि अब इस सुविशाल भवन में प्रवेश किस प्रकार करूँ? यदि प्रवेश कर भी पाऊँ किसी प्रकार तो इतनी रात में उनसे मुलाक़ात कैसे कर पाऊँगी?

शुभदा को उस समय रोना ही रोना सूझ पड़ता था। परिश्रम, अनाहार तथा दुर्भावना के कारण वह मृतप्राय हो उठी थी। नन्दी महोदय की कोठी के सामने जो शिवालय था, उसी के बरामदे में आकर वह लोट पड़ी। उस समय भी पानी बन्द नहीं हुआ था, किन्तु कम हो गया था। वैशाख के बादल जहाँ एक क्षण में समस्त आकाश को आच्छादित कर लेते हैं, वहीं मुहूर्त भर में ही वे कहाँ चले जाते हैं, इसका पता तक नहीं चल पाता। इस पद्धति के अनुसार आज का मेघ भी आकाश के किनारों पर ही जा जाकर विलीन होने लगा। इससे चन्द्रमा उदित हो आये और उनके आलोक के कारण जगत् ने अनुपम शोभा धारण कर ली।

शुभदा ने सोचा कि लौटकर घर जाने के लिए यह एक उपयुक्त अवसर है। भींगे हुए वस्त्रों को वह निचोड़ने लगी। इतने में उसने देखा कि एक वृद्ध नौकर ने ज़मींदार की कोठी का फाटक खोला और हाथ में दीपक लिये हुए वह शिवालय की ही ओर आ रहा है। उसे देखकर शुभदा के हृदय में एक क्षीण आशा का संचार हुआ। उसने सोचा, सम्भव है कि इस वृद्ध से कुछ पता चल जाय। इसी लिए प्रस्थान न करके शिवालय के बरामदे में ही वह एक किनारे खड़ी रही। मन्दिर के द्वार के सम्मुख आकर वृद्ध ने देखा कि घूँघट से मुख ढके हुए एक स्त्री खड़ी है। परन्तु उससे उसने कुछ कहा नहीं, वह चुपचाप भीतर चला गया। काफ़ी समय तक वहाँ रहने के बाद जब वह बाहर निकला तब भी वह स्त्री उसे उसी रूप में खड़ी हुई मिली।

वृद्ध ने पहले अनुमान किया था कि यह किसी भले घर की स्त्री है, वर्षा के भय से यहाँ आगई है, अब चली जायगी। परन्तु इतनी देर के बाद भी उसने जब उसे उसी प्रकार खड़ी पाया तब कौतूहल में आकर उन्होंने पूछा—तुम कौन हो?

स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"कहाँ जाओगी भाई?"

शुभदा को मुँह से कोई बात निकालने में लज्जा आ रही थी। परन्तु विवश होकर उसे बोलना ही पड़ा। मृदु कण्ठ से उसने कहा—ज़मींदार साहब की कोठी में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कोठी तो सामने ही है। उसमें न जाकर तुम यहाँ क्यों खड़ी हो?"

शुभदा कोई उत्तर न दे सकी।

वृद्ध ने फिर पूछा—कोठी में तुम किसके पास जाओगी?

"बाबू साहब के पास।"

"किन बाबू साहब के पास?"

"भगवान् बाबू के पास।"

विस्मित होकर वृद्ध ने कहा—भगवान् बाबू के पास?

"हाँ।"

"तो मेरे साथ चलो" यह कहकर वृद्ध आगे-आगे चलने लगा।

शुभदा ने चन्द्रमा के प्रकाश में देखा कि वृद्ध के बाल पककर सफ़ेद हो गये हैं और इसकी मूर्त्ति में सौम्यता स्पष्ट रूप से झलक रही है। इससे निस्संकोच होकर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगी। क्रमशः फाटक के भीतर प्रवेश करने के बाद बग़ीचे को पार किया। अन्त में एक कमरे का द्वार खोलकर वृद्ध ने पुकारा—इस कमरे में आओ।

शुभदा ने कमरे में प्रवेश किया। खूब सजा हुआ था कमरा। सारे फ़र्श पर एक मूल्यवान् ग़लीचा बिछा हुआ था। सामने ही मसनद लगाकर गृहस्वामी के बैठने के उपयुक्त एक विशिष्ट आसन लगा हुआ था। वृद्ध उसी पर विराजमान हुआ। अब दीपक के प्रकाश में शुभदा को उसने नीचे से ऊपर तक देखा। घूँघट की ज़रा-सी साँस से उसके मुख का जितना अंश देखा जा सकता था; उसे उसने देख लिया। कोई ऐसा भी समय था, जब कि शुभदा रूपवती थी। एक तो अब अवस्था अधिक थी, दूसरे दुःख-क्लेश से भी उसे बराबर ही टक्कर लेनी पड़ी है। इस कारण उसमें अब वह ज्योति नहीं रह गई थी। परन्तु उसके आभाहीन मुख पर भी जितनी ज्योति अवशिष्ट थी, वृद्ध उसी से मोहित हो उठा। कुछ क्षण तक उसकी ओर देखते रहने के बाद उसने कहा—बच्ची, तुम भूल रही हो। शायद तुम विनोद बाबू से मिलना चाहती हो।

"विनोद बाबू कौन हैं?"

"विनोद बाबू भगवान् बाबू के छोटे भाई हैं।"

शुभदा ने कहा—मैं उनसे नहीं मुलाक़ात करना चाहती।

"तो क्या भगवान् बाबू से ही तुम्हारा मतलब है?"

"हाँ।"

"भगवान् नन्दी मेरा ही नाम है। परन्तु मुझे जहाँ तक स्मरण है, मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

शुभदा ने मस्तक हिलाकर कहा—नहीं।

"तब मुझसे तुम्हारा क्या काम हो सकता है?"

शुभदा कुछ बोली नहीं। भगवान् बाबू ने फिर कहा—मैंने सोचा था कि रात्रि में एक स्त्री का कार्य्य विनोद से ही हो सकता है। इतनी रात्रि में मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

शुभदा इसपर भी कुछ नहीं बोली।

तब भगवान् बाबू ने पूछा—तुम्हारा स्थान कहाँ है?

"हलुदपुर में।"

"हलुदपुर में? मुझसे तुम्हारा काम है? तो क्या तुम हाराण की स्त्री हो?"

मस्तक हिलाकर घूँघट के भीतर से ही शुभदा ने कहा—हाँ।

"तो बताओ, तुम्हारा क्या मतलब है?"

अंचल के छोर से दोनों ही कङ्कणों को खोलकर शुभदा ने धीरे-धीरे भगवान् बाबू के चरणों के समीप रख दिया। बाद को गद्‌गद कण्ठ से वह बोली—उन्हें छोड़ दीजिए।

वृद्ध की समझ में सारी बातें आगईं। दोनों कङ्कणों को हाथ में लेकर उसने उनकी परीक्षा की। बाद को उसने कहा—तो भी मैं कुछ सुखी हो पाया हूँ। तुझे भला एक चीज़ तो उसने बनवा दी? बाद को उन्हें नीचे रखकर वह बोला—तुम इन्हें लौटा ले जाओ। तुम ब्राह्मण की कन्या हो, तुम्हारे हाथ के कङ्कण ले लेना उचित नहीं है। यदि छोड़ना होगा तो मैं यों ही छोड़ दूँगा। वह मेरे इतने रुपये खा गया है कि उनकी तुलना में तुम्हारे ये आभूषण नहीं के बराबर हैं। इससे इन्हें लेना या न लेना बराबर ही है। इससे तो अधिक अच्छा होगा कि मैं उसे यों ही छोड़ दूँ।

आँखें पोंछते हुए शुभदा ने कहा—तो उन्हें छोड़ दीजिएगा न?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इच्छा तो नहीं थी। उसके जैसे दुश्चरित्र को उपयुक्त दण्ड देना ही अच्छा था। तो भी तुम्हारे कारण उसे छोड़ दूँगा।"

शुभदा की आँखें फाड़-फाड़कर जल गिरने लगा। भगवान् बाबू के प्रति कृतज्ञता से उसका हृदय पूर्ण हो उठा। परन्तु अपने पिता से भी अधिक अवस्था के वृद्ध को ब्राह्मण की कन्या होकर भी मुँह खोलकर आशीर्वाद देने का साहस वह न कर सकी। मन ही मन उन्हें सैकड़ों बार धन्यवाद देकर उसने ईश्वर के चरणों में सहस्र बार उनकी मङ्गल-कामना की, बाद को लौटने के लिए वह उठकर खड़ी हो गई। मुँह ऊपर करके भगवान् बाबू ने कहा--आज ही लौट जाओगी?

शुभदा ने मस्तक हिलाकर स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"तुम्हारे साथ में क्या और कोई आदमी है?"

"कोई नहीं।"

"कोई नहीं है? तब अकेली मत जाओ। साथ में एक आदमी लेती जाओ।"

शुभदा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उस झाड़-झंखाड़ से होती हुई वह अकेली ही घर की ओर चली। सवेरा होते-होते उसने घर में प्रवेश किया। ललना उससे पहले ही उठ चुकी थी। अपना नियमित कार्य्य वह आरम्भ करने को ही थी। इतने में भीगे कपड़े पहने हुए माता को आती देखकर उसने कहा--मा, आज इतने सवेरे स्नान कर आई हो?

"हाँ।"

चौथा परिच्छेद

राममणि और दुर्गामणि नाम न रखकर शुभदा ने अपनी दोनों कन्याओं का नाम ललना और छलना रक्खा था, इस कारण उसकी ननद रासमणि के मनस्ताप का अन्त नहीं था। ये अलूल-जलूल नाम 'ललना और छलना' आठों पहर उनके कानों में चुभते रहते थे। 'ललना' नाम थोड़ा-बहुत अनुकूल भी पड़ता था, परन्तु 'छलना' कहाँ का नाम था!

रासमणि छलना से ज़रा भी प्रसन्न नहीं रहा करती थीं। वह एक प्रकार से उनकी आँखों की काँटा थी। उनकी अप्रसन्नता का दूसरा चाहे जो भी कारण रहा हो, पहला कारण उसका यह बेढंगा नाम ही था। उनकी धारणा थी कि लोग बालक-बालिकाओं का नामकरण देवी-देवताओं के नामों के अनुसार किया करते हैं। जिससे उन्हें पुकारते समय किसी देवी या देवता का नाम मुँह से निकल आवे। परन्तु इन दोनों कन्याओं को पुकारते समय तो मन में इस प्रकार के भाव का उदय होता है, मानो पाप का भार ज़रा-ज़रा करके बढ़ रहा है।

ललनामयी और छलनामयी, ये हाराण बाबू की दो कन्यायें थीं। उनमें से एक बड़ी थी और दूसरी छोटी। एक की अवस्था सत्रह वर्ष की थी, दूसरी की ग्यारह वर्ष की। एक विधवा थी, दूसरी अविवाहिता।

यह तो हुआ उन दोनों का परिचय। रही बात उनके गुण की। गुणों का वर्णन करना लेखक के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु गङ्गा-तट पर ललना जब स्नान के निमित्त जाया करती, तब वहाँ पर एकत्र परिपक्व अवस्था की स्त्रियाँ आपस में कहा-सुनी किया करतीं--विधवा बनाने के ही लिए शायद भगवान् ने इस छोकड़ी को इतना रूप दे रक्खा है! ललना दूसरी ओर मुँह फेरकर जल में डुबकियाँ लगाया करती। नवयुवतियाँ भी काना-फूसी किया करतीं। वे क्या कहतीं, यह उनके सिवा और किसी के कानों तक नहीं पहुँच पाता था। परन्तु उनके मुख का भाव देखकर अनुमान यही होता कि ये विशेष प्रशंसा नहीं कर रही हैं।

निन्दा या प्रशंसा का ललना पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ा करता था। वह अधिकतर किसी से बातें नहीं किया करती थी। किसी के लेने-देने में भी वह नहीं रहती थी। उससे यदि कोई बोलता तो वह दो-चार बातें कर लेती, अन्यथा चुपचाप स्नान करती, जल भरती और गङ्गा जी से निकलकर सीधे अपने घर आती।

छलना का स्वभाव अवश्य ललना से सर्वथा विपरीत था। वह बातें अधिक किया करती थी, दूसरों की बातों में दखल देना उसे बहुत प्रिय था। आठ बजे स्नान के लिए निकलने पर ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं लौटकर आती थी। आभूषण न होने के कारण वह प्रायः अप्रसन्नता का भाव प्रकट किया करती थी। चौके में बैठने पर वह प्रायः इस बात के लिए कलह किया करती कि मोटे चावल का भात मुझसे नहीं खाया जाता। किसी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी दिन तो किसी विशेष प्रकार के खाद्य के अभाव के ही कारण वह थाली ठेल दिया करती थी। दिन भर में उसके इस प्रकार के हज़ारों काण्ड हुआ करते थे।

छलना के भी रूप की तुलना नहीं थी। तपाये हुए सोने का-सा उसके शरीर का वर्ण था। गुलाब के फूल के समान मुख था, जिसपर भौंहे मानो किसी ने तूलिका से चित्रित कर दी थीं। पान खाने के बाद अपने पतले-पतले दोनों ओठों को लाल करके एकान्त में बैठकर छलनामयी दर्पण में जब अपनी कान्ति देखती तब वह स्वयं अपने को गौरवान्वित अनुभव किये बिना न रहती। मन ही मन वह कहती—इस अवस्था में मुझमें जब इतना अधिक सौन्दर्य्य है तब उपयुक्त अवस्था आने पर तो पता नहीं, क्या दशा होगी?

छलनामयी अपने यौवनकाल की मधुर मूर्त्ति की प्रायः कल्पना किया करती। वह सोचा करती—उस समय कितने आभूषण होंगे मेरे शरीर पर! यहाँ कङ्कण होंगे, यहाँ अनन्ता होगा, यहाँ हार होगा, यहाँ चिक होगा और यहाँ कण्ठा होगा। इसी प्रकार जितने प्रकार के भी आभूषण शरीर के जिस-जिस अंग में धारण किये जा सकते हैं, उन सभी को प्राप्त करके धारण करने की कल्पना वह किया करती थी। कल्पना के इस आनन्द का वह अकेली ही नहीं उपभोग किया करती थी। दौड़ती हुई वह बड़ी बहन के पास पहुँच जाया करती। उसे तेज़ी से आती हुई देखकर ललना पूछती—क्यों छलना, तू दौड़ क्यों रही है इस प्रकार?

"क्यों दीदी, मेरे शरीर का रंग क्या पहले की अपेक्षा कुछ काला हो गया है?"

"काला क्यों हो जायगा?"

"नहीं हुआ? अच्छा दीदी, हमारे गाँव में क्या कोई ऐसा आदमी है जो भविष्य बतला सकता हो?"

"क्यों?"

"मैं हाथ दिखलाऊँगी।"

"हाथ दिखलाकर क्या करोगी?"

"मैं चाहती हूँ कि कोई हाथ-देखकर यह बतला दे कि बड़ी होने पर मुझे पहनने को आभूषण मिलेंगे या नहीं।"

ललना के नेत्र आँसुओं से परिपूर्ण हो उठते। वह कहती—तुझे आभूषण खूब मिलेंगे बहन! तू राजरानी होवेगी।

बड़ी बहन की बात सुनकर छलना लज्जित हो उठती। मुख लाल करके वह अन्यत्र भाग जाती। वह मन ही मन कहती—मैं तो केवल यह पूछ रही थी कि मुझे पहनने के लिए आभूषण मिल सकेंगे या नहीं, राजरानी होने या न होने की बात इनसे किसने पूछी है?

किसी-किसी दिन आकर वह पूछती—दीदी, हम लोगों के पास कुछ क्यों नहीं है?

ललना उत्तर देती—हम लोग दुःखी हैं, इसी लिए।

"हम लोग इतने दुःखी क्यों हैं दीदी? गाँव में और तो कोई नहीं है जो हम लोगों की तरह रहता हो, हम लोगों का-सा क्लेश पाता हो!"

"ईश्वर ने जिसकी जो दशा कर दी है, उसे उसी दशा में रहना होता है।"

"ईश्वर ने और तो किसी की ऐसी दशा नहीं की, हमारी ही क्यों की है?"

"यह हम लोगों के पूर्व जन्म का पाप है।"

"कैसा पाप दीदी?"

"पाप क्या एक प्रकार का होता है बहन! कितने प्रकार के कार्य्य हम लोग करते रहते हैं, जिन्हें हमें न करना चाहिए। सम्भव है, हमने माता-पिता के प्रति भक्ति न की हो, दूसरों के हृदय को अकारण क्लेश दिया हो। इसी प्रकार के और भी कितने ही दुष्कर्म हो सकते हैं।"

बड़ी बहन की इस बात से छलना का मुख सूख गया। उसने कहा—तो क्या सदा इसी अवस्था में हमें रहना होगा? क्या कभी सुखी न हो सकेंगी हम लोग?

'ऐसा क्यों होगा भाई? हमारे भी दिन फिरेंगे। दुःख के दिन जब बीत जायँगे तब सुख के दिन आवेंगे ही।"

छलना को इसी प्रकार सान्त्वना देती हुई ललना उसके हाथ अपने हाथों में ले लेती—और बोलती—लाओ, देखूँ, तुझे कितना सुख मिलेगा, तू कितनी ऐश्वर्यशालिनी होगी? तुझे कितने आभूषण मिलेंगे, कितने नौकर और नौकरानियाँ तेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करेंगी, तू राजरानी होवेगी।

ललना यह बात यदा-कदा छलना से कहा करती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन बिना कुछ सोचे ही समझे छलना कह बैठी—दीदी तुम क्या होओगी ?

छलना को मालूम था कि दीदी विधवा हैं। तो भी बालिका-सुलभ चपलता के कारण यह एक बात उसके मुँह से अपने आप ही निकल गई। इस कारण छलना ने चुप होकर मुँह नीचा कर लिया।

धीरे से हँसकर ललना ने कहा—मैं भी सुख से रहूँगी बहन! यह देखो मा मुझे बुला रही हैं।

ललना चली गई। सचमुच उस समय मा उसे बुला रही थी। समीप जाकर उसने कहा—क्या है मा ?

तुम्हारे बाबू जी आये हैं। उस कमरे में—"

बात समाप्त होने से पहले ही ललना चली गई।

भोजन करते समय रासमणि ने पूछा—इतने दिनों तक तुम कहाँ थे ?

मुख में ग्रास डालकर हाराण बाबू ने गम्भीर भाव से कहा—यह एक बहुत बड़ी कहानी है।

रासमणि का मुँह फैल गया—कौन-सी ऐसी बड़ी कहानी है रे ?

मुँह का ग्रास गले से नीचे उतारकर हाराण बाबू ने पहले की ही तरह गम्भीर मुख से कहा—बहुत बड़ी कहानी यह है कि मस्तक के ऊपर से प्रलय की आँधी निकल गई।

रासमणि के विस्मय की सीमा न रही। चिन्ता भी उनकी अनन्त थी। प्रायः रुद्ध कण्ठ से वे बोल उठीं—साफ़-साफ़ क्यों नहीं बतलाते हाराण, क्या हो गया था तुझे ?

गम्भीर मुख पर ज़रा-सा मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए हाराणचन्द्र ने कहा—हुआ क्या था ? चक्की पीसने की पूरी तैयारी थी। नन्दी बाबू ने मुझपर ग़बन का मामला दायर किया था ?

"मामला दायर किया था ?"

"हाँ। परन्तु असत्य के बल पर वे कहाँ तक चल सकते थे ? किसी प्रकार का प्रमाण वे दे नहीं सके, इससे मुक़दमा जीतकर आज घर चला आया हूँ।"

शुभदा ने घूँघट की आड़ में ही आँखें पोंछीं। रासमणि ने नन्दी बाबू की भूरि-भूरि मङ्गल-कामना की। कुटुम्बियों-सहित उनकी मुक्ति के लिए उन्होंने श्री दुर्गा जी के चरणों में बहुत प्रकार से प्रार्थना की। बाद को उन्होंने कहा—परन्तु क्या वे अब भी नौकरी पर रक्खेंगे ?

हाराण बाबू ने आँखें लाल-लाल करके कहा—नौकरी पर रक्खेंगे ? अब मैं जाता ही कहाँ हूँ उनके यहाँ नौकरी करने के लिए ? इस जन्म में मैं उस हरामज़ादे भगवान् नन्दी का मुँह फिर देखूँगा ? यदि जीवित रहा तो इस अपमान का बदला लेकर ही रहूँगा। जिस तरह उसने मुझे अपमानित किया है, उसी तरह उसका भी अपमान कर लूँगा, तब मुझे शान्ति मिलेगी।

रासमणि कुछ भय तथा विस्मय-पूर्ण दृष्टि से अपने वीर भ्राता की ओर ताकती रह गईं। बाद को मृदु स्वर में वे बोलीं—परन्तु उस अवस्था में ख़र्च-आदि—

बात काटकर हाराणचन्द्र ने कहा—इसके लिए तुम क्यों चिन्ता कर रही हो दीदी ? पुरुष होकर पृथिवी पर जन्म ग्रहण किया है मैंने। एक नहीं, पचीसों नौकरियाँ ठीक कर लूँगा।

हाराणचन्द्र ने जो कुछ कहा, उसपर रासमणि ने पूर्ण रूप से विश्वास कर लिया हो, यह बात नहीं थी। तो भी उन्होंने किसी प्रकार धैर्य्य का अवलम्बन किया। अत्यधिक निराशा के कारण जब मनुष्य का हृदय दुर्भावना से व्यग्र हो उठता है, तब वह झूठी आशा को भी सच मानकर उस दुर्भावना से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। यही हाल रासमणि का भी हुआ। उन्होंने अपने मन को समझाया, बहुत सम्भव है कि हाराण जो कुछ कह रहा है, उसे कार्य्य-रूप में भी परिणत कर दे। कोई आश्चर्य नहीं कि इस संकट-काल में उसकी आँखें खुल जायँ। कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद उन्होंने कहा—जो तुम्हें अच्छा मालूम पड़े, वही करना, परन्तु कुछ किये बिना काम चलेगा नहीं। हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने पर इस बाल-बच्चेदार परिवार की विपत्ति की सीमा न रहेगी, विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब कि घर में रोगी पड़ा है।

एक लम्बा-चौड़ा उत्तर देकर हाराणचन्द्र ने भोजन समाप्त किया और वे चौके से उठकर बाहर आये। अब उनकी मुलाक़ात माधव से हुई। पिता के आगमन का हाल उसे मालूम हो गया था। इसलिए वह उत्कण्ठित होकर अभी तक शय्या पर बैठा हुआ था। समीप आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाराण बाबू ने पुत्र की पीठ पर हाथ फेरा। उन्होंने कहा—तुम्हारी कैसी तबीअत है माधव ?

"आज अच्छी है बाबू जी, परन्तु तुम इतने दिनों तक आये क्यों नहीं हो ?"

हाराणचन्द्र कोई उपयुक्त उत्तर खोज रहे थे। परन्तु माधव ने उसके लिए प्रतीक्षा नहीं की। वह फिर बोल उठा—तुम तो मेरे लिए दवा ले आने गये थे न ? ले आये हो दवा ?

हाराणचन्द्र ने सूखे हुए मुँह से कहा—ले आया हूँ।

"अच्छी दवा है ? उसे खाते ही अच्छा हो जाऊँगा ?"

"अच्छे तो हो ही जाओगे।"

अत्यन्त ही आह्लादित होकर बालक ने हाथ बढ़ा दिया। उसने कहा—तो लाओ।

अब हाराणचन्द्र संकट में पड़ गये। ज़रा-सा इधर-उधर करके उन्होंने कहा—इस समय नहीं, रात्रि में खाना।

बालक इससे भी सन्तुष्ट हो गया। बहुत ही धीरे से हँसकर उसने कहा—अच्छी बात है, रात्रि में ही खाऊँगा। बाद को कुछ क्षण तक पिता की ओर ताककर उसने कहा—बाबू जी, मेरे लिए एक बेदाना खरीद लाना। लाओगे न ? हाराणचन्द्र ने मस्तक हिलाकर सूचित किया, ला दूँगा।

इसके बाद ही शुभदा से उनका सामना हुआ। उसे अपने समीप बुलाकर उन्होंने कहा—क्या तुम मुझे दो आने पैसे दे सकती हो ?

"क्यों ?"

"मुझे पैसों की आवश्यकता है। एक आदमी से मैंने पैसे उधार लिये हैं; वही माँग रहा था।

सन्दूक़ खोलकर शुभदा ने दो आने पैसे निकाले। हाराणचन्द्र ने झाँककर देखा तो उस सन्दूक़ में और भी बहुत-से पैसे थे। हाथ फैलाकर दो आने पैसे लेने के बाद उन्होंने कहा—यदि तुम्हारे पास हों, तो चार आने पैसे और दे दो, माधव के लिए एक बेदाना खरीद ले आऊँ।

शुभदा ने क़ातर भाव से एक बार स्वामी के मुँह की ओर ताका। इतने पैसे एक साथ निकालकर देने में कदाचित् वह कष्ट का अनुभव कर रही थी। परन्तु बाद को सन्दूक़ खोलकर उसने निकाल ही दिये।

पैसे सँभालकर हाराणचन्द्र ने मुट्ठी में ले लिये। बाद को ज़रा ज़ोर देकर हँसने के बाद उन्होंने कहा—ये पैसे मैं तुम्हें कल ही लौटा दूँगा।

शुभदा ने अन्यमनस्क भाव से मस्तक हिलाया। उसे यह खूब मालूम था कि स्वामी की आधी से अधिक बातें निरर्थक होती हैं। पैसे हाथ में आते ही वे बाहर जाने के लिए तैयार हो गये। यह देखकर शुभदा बोली—इस समय कहीं जाओ मत, ज़रा देर आराम कर लो।

हाराणचन्द्र ने मुँह फेर लिया। उन्होंने कहा—आराम क्या करूँ ? घर में बैठे रहने में मेरा निर्वाह है ? संसार भर के कामों का भार तो मेरे मस्तक पर है।

"तो जाओ।"

हाराणचन्द्र के चले जाने पर शुभदा ने सन्दूक़ खोली। केवल एक रुपया उसमें था। विन्ध्यवासिनी ने उस दिन जो कुछ दिया था, वह प्रायः समाप्त हो चला था। केवल वही एक रुपया उस परिवार का सहारा था। शुभदा ने उसे सन्दूक़ के एक एकान्त कोने में छिपाकर रख दिया। बाद को वह माधव के पास आकर बैठी। माधव ने कहा—मा, बाबू जी मेरे लिए बेदाना कब ले आवेंगे ?

"साँझ को।"

साँझ का समय आगया। क्रमशः रात्रि हो गई। परन्तु फिर भी हाराण बाबू दिखाई नहीं पड़े। माधव ने कई बार उनकी खोज की, उनके सम्बन्ध में उसने कई बातें पूछीं, बाद को वह रोने लगा।

शुभदा आकर माधव के पास बैठी। ललना ने भी उसे फुसलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी शान्त नहीं हो रहा था। अन्त में रोते-रोते थककर वह बड़ी रात को सो गया। प्रातःकाल होने से कुछ पहले ही फिर उसकी निद्रा भंग हो गई। उठकर उसने कहा—मा, मेरा बेदाना आया है ?

किसी प्रकार नेत्रों का जल रोककर शुभदा ने कहा—तुम्हें बेदाना न खाना चाहिए बेटा।

"क्यों ?"

"बेदाना खाओगे तो तुम्हें नुक़सान करेगा।"

माधव अभी तक उठकर बैठा था, अब वह लोट पड़ा। दूसरे दिन दोपहर के बाद हाराण बाबू घर आये। क्रोध के मारे रासमणि उनसे बोलीं तक नहीं। ललना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ-पैर धोने के लिए जल ले आई, उसने उनके स्नान की व्यवस्था की और हुक्का तैयार कर दिया। हाराणचन्द्र ने स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन किया। तब शुभदा ने धीरे-धीरे पूछा--माधव का बेदाना ले आये हो ?

"ओह! कहाँ ले आ सका भाई! जेब में पैसे रख लिये थे मैंने। मुझे ध्यान ही नहीं था कि जेब फटा हुआ है। सारे पैसे पता नहीं, कहाँ गिर गये। हाँ तो चार आने पैसे उधार दे दो, साँझ तक तुम्हारे सब पैसे मैं वापस कर दूँगा।

शुभदा ने खिन्न भाव से कहा--पैसे अब नहीं हैं। इसपर हँसते हुए हाराणचन्द्र ने कहा--यह मैं नहीं मान सकता। तुम्हारा लक्ष्मी का भाण्डार क्या कभी ख़ाली रहता है ?

शुभदा ने मन ही मन लक्ष्मी के भाण्डार की अवस्था पर विचार किया। बाद को प्रकाश्य भाव से वह बोली--सचमुच पैसे नहीं हैं।

"हैं क्यों नहीं पैसे ? कल तो मैंने देखा था, बहुत-से पैसे थे और एक रुपया था।"

शुभदा चुप रह गई। हाराणचन्द्र ने फिर कहा--छिः! थोड़े-से पैसों के लिए तुम मेरा विश्वास नहीं कर सकती हो ? पूरे रुपये के लिए चाहे विश्वास न करो, चार आने पैसे की तो कोई वैसी बात है नहीं। कम से कम इतना विश्वास तो तुम्हें कर ही लेना चाहिए।

शुभदा ने अब किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। हाथ धोकर उसने अपेक्षित धन सन्दूक से निकाल दिया।

आज मन फिर क्यों उदासी ?

श्रीयुत राजेन्द्र शर्मा

देख लो चंचल किलोलें ये परस्पर मिल रहीं जो,
देखकर आह्लाद अपने ही निकट का खिल रहीं जो!
देख लो ये पुष्प विकसित भ्रमर जिनपर गुनगुनाते,
जो प्रणय के जोड़ नाते, गुनगुनाते, गीत गाते--
भूल जाते हैं स्वतः को वह प्रणय-प्रांगण-प्रवासी!
आज मन फिर क्यों उदासी ?

यह कुमुदिनी खिल रही जो देखकर शशि दूर नभ का,
दूर नभवासी बना विधु किन्तु है उसको सुलभ-सा!
देख लो यह कौन रेखा जोड़ती इनको अमिट-सी,
औ' बनाती कौन तन्मय वस्तुएँ जैसे निकट की!
बस रही है वह धरा पर, चन्द्र है जब नभ-निवासी!
आज मन फिर क्यों उदासी ?

उर उमंगों में उड़ा दो क्यों रहे जीवन नियन्त्रित ?
तृप्त हो तुम, क्यों कभी थे आर्त, व्याकुल और चिंतित ?
भूल जाओ तुम.. 'निराशा' क्यों न हो उल्लास दृग में!
देख लो यह प्रणय-लीला मच रही जो आज जग में!
हो उठे तन, मन प्रफुल्लित, क्यों रहें ये आँख प्यासी ?
आज मन फिर क्यों उदासी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

अन्याय सहना पाप है

कुमारी शकुन्तला सिरोठिया, विदुषी

सरस्वती' के किसी गताङ्क में मैंने किसी काश्मीरी बहन का लेख पढ़ा था और भारतीय कन्याओं की विवशता अनुभव की थी। भारत में एक ही नहीं, अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जब अपनी कन्याओं के साथ उनके जन्मदाता माता-पिता घोर अन्याय करते हैं। यद्यपि 'माता-पिता' और 'अन्याय' दोनों शब्द एक-दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होते हैं, क्योंकि 'माता-पिता' शब्द से करुणा का स्रोत, ममता के आगार का अनुभव होता है, किन्तु आजकल जो व्यवहार अनेक कन्याओं के साथ हो रहा है, उसे देखकर हमें यही कहना पड़ता है कि मा-बाप अपनी सन्तानों के साथ अन्याय ही नहीं अत्याचार भी कर रहे हैं। चाहे वह अनजाने में हो, जानबूझ कर हो अथवा अशिक्षा के कारण हो।

पर प्रश्न यह है कि क्या हमें यह सहन करना चाहिए? क्या ज़रा-सी मानसिक दुर्बलता के कारण हमें अपने जीवन का बलिदान करना चाहिए? क्या हमें चाहिए कि हम इस अन्याय के आगे अपनी शुभ इच्छाओं को, अपने उद्देश्य और ध्येय को छोड़ दें? जीवन में एक घड़ी ही अगर हम जीकर उसका सदुपयोग कर सकते हैं तो वह सौ वर्ष के अकर्मण्य जीवन से कहीं अच्छा है।

इस सम्बन्ध में हमें अपनी प्यारी सहेलियों से भी एक निवेदन करना है। तुम्हें अपनी कमज़ोरी से समाज की कुरीतियों को अब अधिक नहीं पनपने देना चाहिए। तुममें सहन-शक्ति होनी चाहिए किन्तु 'अन्याय' के लिए नहीं, तुममें नम्रता और शील होना चाहिए किन्तु अत्याचार सहने के लिए नहीं! जीवन की सबसे बड़ी भूल जो कभी सुधर नहीं सकती, वह उसी समय होती है जब कि सन्तान अपनी क्षणिक कमज़ोरी से अपनी इच्छाओं का बलिदान अपनी माता-पिता की इज़्ज़त का खयाल रखकर, उनके आँसू पर पसीजकर, कर बैठती है।

हमें चाहिए कि हम अपने विचारों को शुद्ध और दृढ़ बनायें। अन्याय और अत्याचार न सहें।

अन्याय सहना ही पाप है। दहेज़ देते हुए जो मा-बाप अपनी कन्याओं को दूसरों को देते हैं उनकी कन्याओं को चाहिए कि वे प्राण रहते अपने को इस प्रकार न बेचने दें। अपने में साहस और धैर्य्य का संचार करती हुई, इस कुरीति का सामना करें। क्या हम उस पति से, जो सिर्फ धन के कारण ही हमें अपना रहा है, भविष्य में कुछ आशा कर सकती हैं? अथवा जो पति हमें अपनी इच्छा से नहीं अपने माता-पिता की इच्छा से अंगीकार कर रहा है, उससे हम सुयोग्य और वीर पति होने की आशा कर सकती हैं? कदापि नहीं; ऐसे पतियों को अगर हम कायर और अयोग्य कहें तो अनुचित न होगा। पाठकगण, मुझे इस कठोर वाक्य के लिए क्षमा करें। किन्तु यह सत्य है। इस दहेज़ ने कितनों का ही जीवन बर्बाद कर दिया है। कन्यायें इसी दहेज़ के भय से अयोग्य के साथ ब्याही जाती हैं। उन्हें आगे पढ़ने से रोका जाता है। क्योंकि बड़ी उम्र में और अधिक दहेज़ देकर ही मा-बाप उन्हें योग्य वर को सौंप सकते हैं, अन्यथा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायबहादुर सोहनलाल महिला ट्रेनिंग कालिज की छात्रायें सामूहिक नृत्यकला का प्रदर्शन कर रही हैं।

इस दहेज-प्रथा से केवल स्त्री-जाति को ही नहीं बरन पुरुष-जाति को भी दुःखमय जीवन अपनाना पड़ता है। किन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी है, जीवन बिताने के ढंग में भिन्नता भी है। वह है स्त्रियों की पराधीनता और पुरुषों की स्वतंत्रता; स्त्रियों पर कर्त्तव्यों का भार और पुरुषों को अपरिमित अधिकार।

एक स्त्री अपने विचारों से भिन्न अथवा यों कहिए कि अयोग्य पति को पाकर भी अपने कर्त्तव्यों को विचारकर जीवनपर्यन्त उसी को निभायेगी। हृदय की ज्वाला को छिपाती हुई पति के सुख-दुख की संगिनी बनी रहेगी। किन्तु क्या आज का पुरुष भी यही करेगा? अगर किसी कारण उसे उसके योग्य जीवन-सहचरी नहीं मिलती तो वह जैसे ही माता-पिता के बंधनों से स्वतंत्र होगा स्त्री से कह देगा, "तुम स्वतंत्र हो, या तो अपने मा-बाप के घर चली जाओ, या सास-ससुर के पास रहो। मैं अपने पास नहीं रख सकता। मेरी तो इस विवाह में बिलकुल ही सम्मति नहीं थी। क्या करूँ पिता-माता के आगे कुछ भी बस नहीं चला।"

कितनी शोचनीय अवस्था है? साध्वी पति-परायणा पत्नी पति से इस प्रकार ठुकराये जाने पर भी, कभी उसे त्यागने का विचार नहीं करती। पाठकगण इसमें अतिशयोक्ति न समझें। अपने एक मित्र के घर का हाल बताती हूँ। स्त्री अत्यन्त सीधी तथा साध्वी है। शहर की रहनेवाली है। सभ्य भी है। एक बड़े आदमी की लड़की है। पति भी अच्छे सभ्य ग्रेजुएट हैं। अच्छी नौकरी में हैं। नवीन विचारों के हैं। किन्तु अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं हैं। कारण, जैसे विचार और स्वभाव उनकी काल्पनिक पत्नी में होने चाहिए वैसे इस पत्नी में नहीं हैं। फिर भाई शादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहौर विश्वविद्यालय की छात्रायें उपाधिपत्र लेकर आ रही हैं।

क्यों की? उत्तर मिलता है—"विवशता! मा-बाप को धन की सख्त ज़रूरत थी। ससुर ने ५,०००) दिये दहेज़ में। मना करने पर कि मैं शादी नहीं करूँगा, वे रोए-धोए। मुझसे सदा के लिए सम्बन्ध छोड़ने को तैयार हो गये। मैं क्या करता। लाचार हो सहमत हो गया। किन्तु अब मैं यह जीवन और भारमय नहीं बनाना चाहता। मेरी स्त्री के पिता के पास काफ़ी धन है; वह वहीं रहे अथवा मेरे बाप के पास रहे जिसने कि मेरी शादी केवल धन के लिए की थी। अपनी ज़रा-सी भूल का कहाँ तक प्रायश्चित्त करूँ। मैं अब कदापि इसके साथ नहीं रह सकता। या तो मैं आत्मघात कर लूँगा अथवा कहीं भाग जाऊँगा।"

तमाशा यह है कि पति-पत्नी में कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। पत्नी कभी भी कोई शिकायत पति के विरुद्ध नहीं करती। घर का प्रत्येक काम स्वयं करके केवल घर में रहने का स्थान माँगती है, किन्तु अभागिनी स्त्री जाति! उसे उसकी प्राप्ति में भी बाधायें हैं। दोनों का ही जीवन अत्यन्त दुःखी है। पति महोदय दूसरी शादी भी नहीं करना चाहते। किन्तु दो विपरीत धारावाली सरिताओं का संगम कैसे बने? कैसे दो अनमेल धातुओं का मिश्रण तैयार हो? इसका उत्तरदायित्व मा-बाप पर है। मा-बाप को चाहिए था कि वे अपनी सन्तान को विवाह के बन्धन में बाँधने के पहले यह जान लेते कि लड़के-लड़की के विचार आपस में मिलते हैं या नहीं। जो मा-बाप ऐसा नहीं करते वे भारी भूल करते हैं और अपनी सन्तान के जीवन को सदैव के लिए भारमय बना देते हैं। कितने ही उदाहरण मिलेंगे कि भिन्न-भिन्न विचारवाले युवक-युवतियाँ पति-पत्नी के रूप में असीम वेदना और विवशता का अनुभव करते हुए, अपने जीवन को भारमय बनाये हुए, किसी प्रकार दुनिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घायलों की सेवा के लिए रूसी महिलायें प्रारंभिक चिकित्सा सीख रही हैं।

है कि पति महाशय स्त्री-शिक्षा को भारतीय आदर्श को नष्ट करनेवाली समझते हैं, स्त्री-स्वतंत्रता को उनके चरित्र के तथा गृहस्थ-जीवन के लिए घातक समझते हैं; स्त्रियों में देश-प्रेम की भावना को व्यर्थ तथा उनकी अनधिकारचेष्टा समझते हैं, तो पत्नी के हृदय में देश-प्रेम का स्रोत हिलोरें ले रहा है। शिक्षा को वह अपने जीवन का आवश्यक अंग मानती है। स्त्री-स्वतंत्रता को वह कुछ अंशों में अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझती है।

दोनों ही प्रकार के सम्बन्ध दाम्पत्य-प्रेम में विष घोलनेवाले हैं। ऐसे पति-पत्नी का जीवन नीरस हो जाता है। उनमें उत्साह और आकांक्षायें नष्ट हो जाती हैं। किसी भी वस्तु का अभाव न होते हुए भी उनके हृदय में किसी स्थान की पूर्ति का अभाव खटकता रहता है। उनका वेदनामय जीवन उन्हें किसी प्रकार सुखी नहीं बनने देता और उन्हें पतन की ओर अग्रसर करता है। भूला-भटका राही अपने रास्ते की खोज के प्रयत्न में कभी कभी गलत रास्ता पकड़ लेता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर सकने पर जीवन में अनेक भूलें कर

के कार्य को चला रहे हैं। देखने में आता है कि पति देश-प्रेमी है और समाज-सुधारक है तो पत्नी उसके विपरीत सुधारक विचारों को भयानक समझनेवाली है। पति की उच्च भावनाओं को कुचलनेवाली है। कहीं देखने में आता

बैठता है।

माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी सन्तानों को अपनी भूल और असावधानी से इस रास्ते पर न छोड़ें। उनके लिए साथी चुनने का अगर वे स्वयं ही अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अपनी सन्तान के हृदय-पटल की लिखावट को पढ़ने का प्रयत्न करें और उसी के अनुसार उन्हें जीवन-साथी दें। अगर वे ऐसा करने में असमर्थ हैं, अथवा वे ऐसा करना नहीं चाहते तो उनको चाहिए कि वे अपने को इस अधिकार से मुक्त कर दें। आदमी अपनी भूल से गिरना तो सहन कर लेता है किन्तु किसी का ढकेलना वह नहीं सह सकता। जो माता-पिता इससे सहमत नहीं हैं अर्थात् जो अपनी ही मति, स्वभाव और रुचि के अनुसार अपनी सन्तान को भी साथी देना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस आधुनिक प्रवाह में न बहकर अपनी सन्तान को अशिक्षित ही रहने दें। विशेषतः पुत्रियों को तो वे भूलकर भी शिक्षिता न बनायें। उन्हें अगर वे सरिता के उस पार नहीं पहुँचा सकते तो इसी पार रहने दें। बीच धारा में छोड़कर उन्हें भयानक जीव-जन्तु का शिकार बनने से रोकें।

जब उन्हें प्रकाश का ज्ञान ही न होगा तो उन्हें उसका अभाव भी न खटकेगा। जब स्त्रियों को अपने स्थान और अधिकार ज्ञात ही न होंगे तो उनको उनकी इच्छा भी क्यों होगी? इसी लिए देखा गया है कि अशिक्षिता स्त्रियाँ, शिक्षिता स्त्रियों से कहीं अधिक सुखी और सन्तुष्ट हैं।

आजकल जो युवक-युवतियाँ, अपने जीवन में असफल हैं, दुःखी हैं जिनका जीवन उनके लिए अन्धकारमय है, अथाह सागर है वे अधिकतर शिक्षिताओं में से ही हैं। उनके हृदयों में कभी उच्च भाव थे, महत्त्वाकांक्षायें थीं, जीवन का एक आदर्श था, जिसकी पूर्ति के उन्होंने कभी स्वप्न देखे थे। जिसकी सफलता के लिए उनको साथी की आवश्यकता थी, जो उनके भावों को समझनेवाला होता, उनके साथ समवेदना और सहानुभूति प्रकट करनेवाला होता, जिसकी हृत्तन्त्री उनके स्वरों में भी झंकृत होती।

वैवाहिक जीवन जीवन का सबसे सुन्दर और सुकुमार अंग है, अगर भारतीय मा-बाप सावधानी से उसे आरम्भ करने का मौक़ा अपनी सन्तान को दें। किसी भी कार्य का प्रारम्भ बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि जीवन की सफलता पूर्णतया माता-पिता पर ही निर्भर है, नहीं; उस विवाह-सूत्र में बँधनेवालों पर ही वह बहुत अंशों में अवलम्बित है। किन्तु मैंने यहाँ केवल उसी पहलू पर प्रकाश डाला है जो कि उसका प्रारम्भिक भाग है, जिसको पार करके ही मनुष्य का आगे बढ़ना सम्भव है।

और यही वे चाहते भी हैं!

आज के सर्व-व्यापी युद्ध के प्रमुख मोर्चे ब्रिटेन में ५०० से ज्यादा मोटरें देश भर में चक्कर लगा रही हैं। लन्दन के मार्गों पर रात भर इन मोटरों पर घूमने के बाद एक ब्रिटिश पत्रकार ने एक सनसनी से भरा लेख लिखा है। उस लेख में उसने बम-वर्षा के समय ये चाय की मोटरें जैसा महत्त्वपूर्ण काम कर रही हैं उसपर विस्तृत प्रकाश डाला है। उस लेख के कुछ अंश ये हैं :—

"हम पहले एक वायुयान-विध्वंसक तोप के पास रुके। जहाँ हम लोग खड़े थे वहाँ पहले बच्चे खेला करते थे। सैनिक अपनी लम्बी और काली तोपों की बगल में एक पंक्ति में खड़े हुए हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे और उनके हाथ में चाय लेने के लिए बर्तन थे। वे वाई० एम० सी० ए० की चाय की गाड़ी को भली भाँति जानते थे, घड़ी की भाँति ठीक समय पर वह गाड़ी रात आरम्भ होते ही उनके पास पहुँच जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
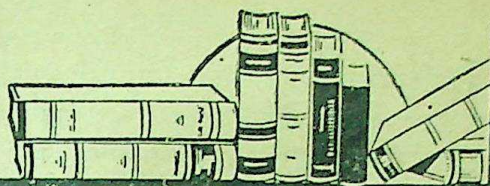
१—आधुनिक हिन्दी-साहित्य—लेखक, डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डि० फिल० हैं। प्रकाशक, हिन्दी-परिषद्, हिन्दी-विश्वविद्यालय, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २१८ और मूल्य २।।) है।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास का संक्रान्तिकाल था। १८५७ के विप्लव के बाद अच्छी तरह दबा दी जाने पर भारतीयों की भावनायें प्रकाश पाने के लिए क्रमशः, वैध और शान्तिपूर्ण उद्योग कर रही थीं। नवीनता आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रही थी पर प्राचीनता का मोह भी प्रबल था और इन दोनों कूलों के बीच बहती हुई भाव-धारा कभी इस कूल को अपनाने का प्रयास करती दिखाई देती थी, कभी उस कूल को। हिन्दी-साहित्य का भी इन दिनों यही हाल था। समय की प्रगति के साथ अनेक नई भावनायें अभिव्यक्ति के लिए उन्मुख हो रही थीं, पर पुराने परिधान का मोह छूट न सकता था।

इस संक्रान्तिकाल में हिन्दी में जो कुछ हुआ, और हिन्दी को पुराने अखाड़े से निकालकर नये क्षेत्र में लाने के लिए जिन महात्माओं ने भगीरथ-प्रयत्न किया उनका वैज्ञानिक अध्ययन अभी तक किसी ने नहीं किया था। कारण, साहित्य का उद्गम समाज से होता है, और समाज उन दिनों अनेक नये नये आन्दोलनों से आन्दोलित हो रहा था; फलतः साहित्य में भी अस्थैर्य था; कोई साहित्यिक किसी आन्दोलन-प्रवाह में बह रहा था कोई किसी के; उनकी विविधमुखी प्रवृत्तियों का वर्गीकरण आसान काम न था। क्योंकि एक तो काफ़ी सामग्री नहीं थी, और जो थी भी, वह इतनी प्रकीर्ण थी कि उसका संग्रह करना और फिर उसे किसी निर्धारित कसौटी पर कसकर देखना अध्यवसायी का काम था। दूसरी बात यह भी थी कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, द्विजदेव, प्रेमघन आदि को छोड़कर शेष कवि इस युग में ऐसे ही हुए हैं जिनकी रचनायें केवल पुरातत्त्वान्वेषियों के काम की हैं। फिर भी इतिहास के निर्माण में नगण्य से नगण्य इकाई का भी योग होता है और इसी लिए विगत काल की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए जिज्ञासु को पुरानी शिलाओं का उद्घाटन करना आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक-द्वारा डाक्टर वार्ष्णेय ने न केवल विवेच्य-काल की अनेक अप्रसिद्ध इकाइयों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है, प्रत्युत उनकी रचनाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण भी किया है, जिसके आधार पर तत्कालीन प्रवृत्तियों का अध्ययन सुगम हो जाता है। साथ ही जो सामग्री उन्हें मिली है, उसे उन्होंने योग्यतापूर्वक कसौटी पर परखा भी है। हिन्दी की प्रगति के सम्बन्ध में उनके जो विचार हैं, उनमें पुराने विचारकों की अपेक्षा कुछ नवीनता है। उदाहरणार्थ अब तक के इतिहासकार ईसाई मिश्नरियों को हिन्दी गद्य को पुष्ट और उन्नत करने का श्रेय कुछ अधिक दिया करते थे। परन्तु प्रस्तुत लेखक महोदय ने उनके साहित्य की केवल ऐतिहासिक महत्ता को स्वीकार किया है। क्योंकि उन्हीं के शब्दों में उन दिनों हिन्दी काल की गति के अनुसार स्वयं उन्नत हो रही थी। अपनी बढ़ती के लिए वह ईसाई मिश्नरियों का मुँह नहीं ताक रही थी।

कविता और नायिका-भेद पर लेखक महोदय का विवेचन सर्वथा विज्ञान-सम्मत और प्रशंसनीय है। प्रसन्नता की बात है कि शृंगारतत्त्व की विवेचना करते समय न तो उन्होंने परकीयावाद को अपने व्यंग्यों का लक्ष्य बनाया है, जैसा कि कुछ पहले के साहित्यिक करते आ रहे थे, न उसे आध्यात्मिक व्याख्याओं के जाल में फँसाने का प्रयत्न किया है, प्रत्युत योग्यतापूर्वक और मनोवैज्ञानिक नियमानुसार उसका एक सीधा-सा हल दे दिया है, जो निस्सन्देह काव्य-शास्त्र के वैज्ञानिक अध्येताओं के निकट अधिक ग्राह्य होगा; क्योंकि साहित्य में वे ही सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरस्थायी हो सकते हैं, जिन्हें विज्ञान का प्रश्रय और बुद्धि का समर्थन प्राप्त हो। अंततः डाक्टर वार्ष्णेय को हम उनके इस सुन्दर ग्रन्थ के लिए बधाई देते हैं।

—ब्रजेश्वर

२—एक धर्म-युद्ध—लेखक, श्री महादेव हरिभाई देसाई और प्रकाशक, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद हैं। मूल्य ।।) और पृष्ठ-संख्या १२७ है।

सन् १९१८ में अहमदाबाद के मिल-मज़दूरों ने एक धर्म-युद्ध लड़कर अपने धन के महत्त्व को पहचाना था। उसी युद्ध का यह परिणाम है कि अहमदाबाद का मज़दूर महाजन-संघ भारतवर्ष की एक अद्वितीय संस्था बन गया है। मज़दूरों ने यह युद्ध सत्य और अहिंसा का अस्त्र धारण कर अपनी मज़दूरी में चन्द पैसों की वृद्धि कराने के लिए किया था, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। प्रस्तुत पुस्तक उसी धर्म-युद्ध का इतिहास है। लेखक ने उस युद्ध का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। भाषा और शैली सुन्दर है। साधारण बोलचाल के ही शब्दों का प्रयोग किया गया है। वर्ण्य विषय इतिहास की भाँति साधारण जनता के लिए अरोचक न हो जाय, इस बात का लेखक महोदय ने बराबर ध्यान रक्खा है।

३—सर सैयद अहमद खाँ—लेखक, सैयद क़ासिमअली साहित्यालंकार और प्रकाशक, जाफ़री ब्रादर्स, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) और पृष्ठ-संख्या १७६ है।

सर सैयद अहमद खाँ भारत के उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने अपना जीवन मुस्लिम जाति के हित के लिए अर्पित कर दिया था। अलीगढ़ का विश्वविद्यालय आज भी उनके नाम को जीवित बनाये हुए है। मुसलमानों में शिक्षा के विकास का श्रेय बहुत कुछ सर सैयद अहमद खाँ को ही है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं का जीवन-चरित है। भाषा खिचड़ी है और उसमें मुहावरों व प्रयोगों की भूलें पद-पद पर दिखाई देती हैं।

सर सैयद साहब की जीवनी में दिलचस्पी रखनेवालों को इसका अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

४—गांधी जी—मूललेखक, श्री जुगतराम दवे और अनुवादक, श्री काशीनाथ त्रिवेदी हैं। प्रकाशक, नवजीवन प्रकाशन-मन्दिर अहमदाबाद हैं। मूल्य ।=) और पृष्ठ-संख्या १५६ है।

प्रस्तुत पुस्तक को गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक श्री जुगतराम दवे ने महात्मा गांधी की साठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर गुजराती में लिखा था। तब से गुजरात के बालक इसे बराबर पढ़ते चले आये हैं और यह पुस्तक एक प्रकार से उनकी प्रिय पुस्तक हो गई है। इसमें महात्मा गांधी के जीवन के कुछ रेखाचित्र बालकों के लिए लिखे गये हैं। मूललेखक ने बालकों के योग्य इस पुस्तक को बनाने में बड़ी सफलता पाई है। अनुवाद में भी सफलता मिली है। भाषा सरल और बालकों के अनुकूल है। यह बालकों को महात्मा गांधी के जीवन से परिचित करायेगी।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

५—विनोबा और उनके विचार—सम्पादक, श्री वियोगी हरि, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या २०४, मूल्य ।।) है।

विनोबा भावे! हैंस ऐंडरसन ने लिखा है, "रात्रि में सोते समय मैं अज्ञात था पर प्रातःकाल उठने पर स्वयं को मैंने प्रसिद्ध पाया।" विनोबा भावे की प्रसिद्धि इससे भी शीघ्रतर हुई। मिस्टर एमरी ने अपने निवेदन में विनोबा भावे के प्रति 'वे एक सच्चे दयाधर्मी हैं' ये शब्द प्रयुक्त किये हैं। आपके प्रथम सत्याग्रही चुने जाने का कारण महात्मा गांधी का आपमें अखंड विश्वास था। विनोबा भावे का सबसे महान् गुण यह है कि उन्होंने अपने वचन और कर्म को असाधारण रूप से किया है। महात्मा जी के शब्दों में वे 'रसोई से लगाकर पाखाना-सफ़ाई तक में हिस्सा ले चुके हैं।' उनका विश्वास है कि व्यापक क़ताई को सारे कार्यक्रम का केन्द्र बनाने से ही गाँवों की ग़रीबी दूर हो सकती है।

राजनीति के प्रचण्ड विद्वान् विनोबा भावे युद्धमात्र के घोर विरोधी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी सधी हुई लेखनी से लिखे गये लेखों का संग्रह है। छुआछूत में विनोबा भावे को विश्वास नहीं। कुष्ठ-रोग के रोगियों के लिए उन्होंने कितने ही औषधालय खुलवाये हैं। महिला-आश्रम के भी वे संचालक थे। उनके विचार से हमारी अश्रद्धा ही हमें क्रियात्मक कार्य करने से रोकती है। जो अब तक नहीं हुआ वह कभी नहीं हो सकता ऐसे बूढ़े तर्क से वे मनुष्य-मात्र को सावधान करते रहते हैं। स्वाध्याय के लिए वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरों से अधिक गाँवों को उपयुक्त समझते हैं। उन्हें पुरुषार्थ और रचनात्मक कार्यक्रम में पूर्ण विश्वास है।

उनकी प्रतिदिन की प्रार्थना है--हे प्रभो, मुझे असत्य में से सत्य में ले जा। अन्धकार में से प्रकाश में ले जा। मृत्यु में से अमृत में ले जा। पर इसका अर्थ इतना सरल नहीं है जितना प्रतीत होता है। 'मुझे असत्य में से सत्य में ले जा' इस प्रार्थना का श्री भावे के कथनानुसार सम्पूर्ण अर्थ होगा कि 'मैं असत्य में से सत्य की ओर जाने का अहंकार छोड़कर उत्साहपूर्वक बराबर प्रयत्न करूँगा।'

पुस्तक पठनीय ही नहीं मनन के योग्य भी है।

६--**द्वितीय महायुद्ध के पूर्व का संसार (प्रथम भाग)**--लेखक, श्री रामरतन गुप्त, प्रकाशक, श्री रामगोपाल गुप्त, विहारीनिवास, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ४३०, मूल्य २॥) है।

श्री रामरतन गुप्त ने एक बार संसार-भ्रमण किया है और दूसरी बार वे कुछ मास योरप में रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनके बम्बई से लन्दन तक की जहाज़ी यात्रा का सजीव वर्णन है और तत्पश्चात् विभिन्न योरपीय देशों के प्रधान नगरों के जीवन-विषयक संस्मरण। इस सचित्र पुस्तक में न केवल वहाँ के दृश्यों का ही वर्णन किया है बल्कि उन स्थानों की सामाजिक और आर्थिक चर्चा भी की है। सामयिक दृष्टि से सोवियट रूस तथा युद्ध में संलग्न अन्य योरपीय राष्ट्रों की युद्ध से पूर्व की रूप-रेखा महत्त्व-पूर्ण है, क्योंकि इतिहास से हमें ज्ञात है कि एक राष्ट्र की दूसरे पर विजय कभी स्थायी नहीं रही, कम से कम योरपीय देशों के विषय में यह सिद्धान्त सदा लागू रहा है। आशा है पुस्तक का द्वितीय भाग--संसार के अन्य देशों के विषय में--भी ऐसा ही मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा।

७--**हमारी राष्ट्रीय समस्यायें**--लेखक, श्री भगवानदास केला, प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। तीसरा संस्करण, पृष्ठ-संख्या १४८ और मूल्य ॥।) है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने राष्ट्र-निर्माण, भारत में राष्ट्रीयता, संगठन, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीय झंडा, भाषा तथा लिपि आदि पर अपने विचार सुन्दर भाषा में प्रकट किये हैं। पुस्तक का तीसरा संस्करण ही उसकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

८--**पद्य-रत्नावली**--संकलनकर्ता, श्री अघौरी गंगाप्रसादसिंह, प्रकाशक, साहित्य-सेवा-सदन, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या २५३, मूल्य अजिल्द का १) है।

प्रस्तुत संकलन में श्रेष्ठ कवियों की सुन्दर और उपदेशप्रद कविताओं को विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत देने की चेष्टा की गई है। पुस्तक हाईस्कूल की योग्यता रखने-वाली बालिकाओं के हिन्दी-कविता के अध्ययन के उपयुक्त है। अधिकांशतः नवीन कवियों और कवयित्रियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है। पद्यों को विभिन्न विभागों में विभाजित करने से तुलनात्मक पठन को लाभ पहुँचता है। कवितायें सुरुचिपूर्ण और विविध विषयक हैं।

९--**कुबेर**--लेखक, श्री देवीप्रसाद धवन और प्रकाशक, गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १९०, मूल्य १) है।

प्रस्तुत उपन्यास में आशा मुख्य पात्री है और कुबेर मुख्य पात्र। इन दोनों में विवाह-सम्बन्ध स्थापित न होने का कारण था आशा की मा का निर्धन होना। आशा का सिंदूर शीघ्र मिट जाता है। देवेन्द्र किराये के घर से आशा को निकाल देता है। कुबेर, आशा और उसकी मा को अपने घर में आश्रय देता है, और वहाँ है सुमेर--कुबेर का छोटा भाई। सुमेर का विवाह एक धनी पुरुष की कन्या से होता है। फिर स्वाभाविक-सा है पति-पत्नी का विच्छेद। कुबेर और उसकी पत्नी की अनुपस्थिति में विधवा आशा का सुमेर से अनुचित सम्बन्ध हो जाता है। फिर घटनाओं का क्रम तीव्रतर हो उठता है, आशा कितनों की ही अंकशायिनी बनती है। अन्त में वह कांग्रेस कार्य-कर्त्री के रूप में आती है। अब कुबेर सचमुच का कुबेर है। आशा का प्रलाप अत्यन्त भावमय है। अन्त में आशा का सुमेर से विधिवत् विवाह हो जाता है।

कुबेर साधारण मानव है, पर जन-साधारण से किंचित् ऊँची श्रेणी का है। मुझे तो उसे नायक मानने में भी संकोच है। लेखक ने सुमेर का चित्रण करने में अधिक सफलता पाई है।

उपन्यास में पात्रों की कमी नहीं है। शराबी देवेन्द्र किसी समय आशा के प्रणय का प्रार्थी था। आशा ने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठुकरा दिया, फिर जब आशा स्वयं उसकी शरण में गई तब न केवल उसने उसे पत्नीरूप में स्वीकार किया बल्कि कुसंगति भी छोड़ दी। आशा उसके पास से भाग जाती है, पर यदि वह लौटकर आये तो देवेन्द्र का हृदय इतना विशाल है कि वह उसे क्षमा कर सकता है।

सुमेर की पत्नी रज्जो—इसके विषय में अधिक पृष्ठ नहीं रँगे गये हैं। पर अपने पिता को गाली देने के अपराध में पति सुमेर को मृत्युपर्यंत न क्षमा करनेवाली रज्जो को अन्तिम समय में अपनी मा के उपदेश से कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। अपने पति के चरण पकड़कर रुग्ण रज्जो रोती हुई कहती है, "नरेन्द्रनाथ की बेटी सबको क्षमा कर सकती है, किन्तु अपने पति को नहीं।" "क्यों?" सुमेर के मुँह से निकला।

"क्योंकि उसे अपनी भूल मालूम हो गई है। पति पिता से भी बड़ा है, यह मुझे किसी ने भी कभी नहीं सिखलाया।"

थोड़ी देर बाद वह फिर कहती है—"किन्तु मेरी मा—मेरी प्रेममयी मा—मेरे पिता से भी बड़ी हैं। यह मुझे बाद में मालूम हुआ। उन्होंने मुझे बतलाया कि पति से बड़कर संसार में .....। उपन्यास घटना-प्रधान है; लेखक ने यथासम्भव वास्तविकता के निकट रहने की ही चेष्टा की है। लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

—नानकचन्द टंडन, बी० एस-सी०

१०—तुलाराम शास्त्री—लेखक, श्रीयुत अमृतलाल नागर और प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १२८ और मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तक भी कहानियों का संग्रह है। इसमें १२ कहानियाँ हैं। सभी हास्यरस-प्रधान हैं।

इनमें सबसे पहले 'तुलाराम शास्त्री, की कहानी है। इसके बाद 'गौने की तलब' कहानी है। ये दोनों कहानियाँ अलग अलग होते हुए भी एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि दोनों के पात्र-पात्री एक ही हैं। अन्यान्य कहानियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। लेखनशैली सुन्दर तथा मनोरंजक है। उदाहरण देखिये—तुलाराम शास्त्री अपनी प्रेमिका से 'सैयाँ हमारे मिडिल पास' गाने के लिए आग्रह कर रहे हैं:—

शास्त्री जी ने कहा—'तनुकु गाई देउ।'

'का गाई।'

शास्त्री जी ने उल्लास-भरे स्वर में उत्तर दिया—'वहै जौनु नीचे गावा जाति रहै?'

मूसा ने मुस्कराकर जिज्ञासा की—'का गावा जाति रहै?' शास्त्री जी झुँझला उठे। कहा—'अब गउती नाइं हैं। दुनिया भरे बयार तीनु-पाँचु लगाये हैं। तनुकु गाइ देउ ना—'सैयाँ हमारे मिडिल पास।'

दरवाज़े की दरार से मैंने देखा, मूसा ने अजीब अन्दाज़ से आँखें चढ़ाते हुए शोख़ी भरे स्वर में कहा—'काहे गाई? तुम का हमार सैयाँ हौ?"

किन्तु भाषा में एक बात खटकती है। वह है उर्दू शब्दों का अधिकता से प्रयोग। 'तीमारदारी', 'हस्ब-मामूल', 'इसरार', 'जोशो जज़्बात', आदि आदि बहुत-ठेठ उर्दू शब्द बहुत खटकते हैं। 'नवाबी चक्कर' में—

.....नवाब साहब ने बड़े अफ़सोस के साथ मेरी तरफ़ देखकर हमदर्दी से भरे दो-चार अलफ़ाज़ कह दिये। ग़मगीन था ही, उनकी इस हमदर्दी से हुब्बेवतनी ने ज़ोर मारा। एकदम एक सेकंड के लिए अपना दुःख-दर्द भूलकर अपने शहर की तहज़ीब के ख़याल में ग़र्क़ हो कुछ यों ही बदहवास-सा हो गया और कमीज़ की बाँह पकड़कर उसी बदहवासी की हालत में जो आगे बढ़ा, तो नवाब साहब भी पलटे। मेरे एक हलके से धक्के से उनकी पतली ख़ुश्नुमा, नाज़ुक छड़ी हाथ से गिर पड़ी।.....। बस लिपि उर्दू होने की देर है—और यह 'गद्य-खंड' ठेठ उर्दू है। इस तरह के पुस्तक में कई उद्धरण मिल सकते हैं।

वैसे पुस्तक मनोरंजक है और हास्य-प्रिय व्यक्तियों के लिए बहुत अच्छी है।

११—ब्रिटेन में वार्डन संस्था—लेखक, श्री योगेन्द्रनाथ राज और प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग हैं। मूल्य ।।=) है।

प्रस्तुत पुस्तक में वार्डनों के विषय में विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। जब इँगलैंड पर जर्मनी-द्वारा बमवर्षा की गई थी तब इन वार्डनों ने बड़ा काम किया था। आज भारतवर्ष में भी हवाई हमलों से बचाव के लिए प्रान्तीय सरकारें वार्डन-सर्विस स्थापित कर रही हैं। क्योंकि यहाँ यह प्रबन्ध बिलकुल नवीन है इसलिए हम इस विषय से बहुत अंशों में अपरिचित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक के द्वारा हम इस विषय से बहुत कुछ परिचित हो जाते हैं। निस्संदेह पुस्तक उपयोगी है।

पुस्तक की भाषा हिन्दुस्तानी है। छपाई-सफ़ाई साधारण।

--रमादत्त शुक्ल

१२--'दीदी' का विशेषांक--सम्पादिका श्रीमती यशोवतीदेवी तिवारी तथा अन्य पाँच महिलायें। प्रकाशक, 'दीदी' कार्यालय, कटरा, इलाहाबाद। वार्षिक मूल्य २), छपाई-सफ़ाई तथा गेट-अप सुन्दर है।

हिन्दी में स्त्रियों के लिए सुन्दर सस्ती तथा उपयोगी पत्रिकाओं का एक प्रकार से अभाव ही है। ठाकुर श्रीनाथ-सिंह ने 'दीदी' का प्रकाशन करके इस अभाव की पूर्ति करने का सफल प्रयास किया है। ठाकुर साहब सफल पत्रकार हैं। उनकी पत्रकार-कला का परिचय हमें दीदी में भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। दीदी का यह विशेषांक अच्छा निकला है। कहानियाँ और कवितायें सभी उच्च कोटि की हैं। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और श्री सुमित्रानन्दन पंत की कवितायें, श्री सेठ गोविन्ददास का नाटक, श्रीमती चन्द्रवती जैन का फ़ैशन-सम्बन्धी लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त केश-विन्यास, क़सीदा, साड़ी के फ़ैशन आदि लेख भी बड़े उपयोगी हैं। बालकों के लिए सुरुचिपूर्ण तथा मनोरंजक सामग्री एकत्र की गई है। सभी लेख सचित्र हैं। दीदी में जिन विषयों का समावेश किया गया है उनका हिन्दी की स्त्रियों की पत्रिकाओं में सर्वथा अभाव है। भाषा इतनी सरल है कि लड़कियाँ तथा सुशिक्षित स्त्रियाँ दोनों ही लाभ उठा सकती हैं। पत्रिका के विशेषांक को सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक बनाने में सम्पादिकाओं ने काफ़ी प्रयत्न किया है। सब मिलाकर विशेषांक सुन्दर है।

१३--किरण-बेला--लेखक, श्री 'अंचल', और प्रकाशक, सुखी-जीवन-ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १२८ तथा मूल्य १) है।

'अंचल' जी की अपराजिता का परिचय पाठक इन्हीं पृष्ठों में पा चुके हैं। 'किरण-बेला' उनकी कविताओं का तीसरा संकलन है। परन्तु 'किरणबेला' काव्य-क्षेत्र में उनके नये क़दम की स्पष्ट सूचना है। 'अपराजिता' में अधिकतर कवि की प्रसुप्त तथा अर्द्ध-चेतन अन्तर्वृत्तियों के प्रकाशन का प्रयत्न किया गया था, परन्तु साथ ही उसमें जन-समाज की प्रसुप्त तथा अर्द्ध-चेतन भावनाओं का भी संकेत था। 'किरणबेला' इस दूसरी दिशा में किये गये प्रयोगों का प्रमाण है। ऐसा जान पड़ता है कि अंचल जी ने व्यष्टि की सीमित परिधि से निकालकर समष्टि की भावनाओं को संगीतमय करके अपने आस-पास के समाज को अपनाने तथा उसे जाग्रत् करने का संकल्प कर लिया है। कवि के इस संकल्प पर उसे बधाई देने को कौन तैयार न होगा? आज के ज़माने में जब कि जनता की सामूहिक भावनाओं, उठती हुई आकांक्षाओं तथा अनिवार्य आवश्यकताओं की क्रूर उपेक्षा करके मुट्ठी भर व्यक्तियों का स्वार्थचक्र मानव-जीवन को पशुओं से भी गया बीता बनाये हुए है, कवियों लेखकों, बुद्धि-जीवियों के लिए भावनाओं तथा आकांक्षाओं को प्रकाशित करना अत्यन्त आवश्यक है। अंचल जी ने इस आवश्यकता को समझा है।

कहना नहीं होगा कि 'किरणबेला' की कवितायें प्रगतिशील हैं। हिन्दी-कविता-क्षेत्र में प्रगतिशीलता का नया 'वाद' इधर कुछ दिनों से चल पड़ा है। इसके विषय में वाद-विवाद भी बहुत हो चुका है। संक्षेप में प्रगतिशील कवि व्यक्तिगत भावनाओं में न उलझकर समष्टि की भावनाओं को प्रकाशित करने का प्रयत्न करता है। परन्तु इन भावनाओं को प्रकाशित करना कोई सरल काम नहीं है। जब तक कवि अपने व्यक्ति को समष्टि के साथ मिला नहीं देता, उसकी पहुँच उन भावनाओं तक नहीं हो सकती।

यही कारण है कि हमारे बहुत-से तथा-कथित प्रगतिशील कवि जो कुछ अपने सुरक्षित कोटरों में बैठकर गाते हैं, वह सीखे हुए शुक-संवाद को दुहराने से अधिक नहीं हो पाता। इसी लिए एक प्रगतिशील कवि से परिचय पा जाना सभी प्रगतिशील कवियों को जानने के बराबर है तथा एक प्रगतिशील कविता को पढ़ना सभी प्रगतिशील कविताओं को समझने के बराबर है। फिर भी हम आशा कर सकते हैं कि कवियों का इस दिशा में मुड़ना एक नये युग के आगमन की सूचना है; हम आशा कर सकते हैं कि हिन्दी-कविता का यह नया 'वाद' अन्य 'वादों' की तरह एक अस्पष्ट, अस्थायी तथा अपरूप छाप छोड़कर ही विलीन नहीं हो जायगा और हमारे कवि जनता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाओं को नजदीक से, गहराई से तथा व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा समझने की कोशिश करेंगे। उसी समय प्रगतिशील कवितायें केवल साहित्यिकवर्ग के मनोरंजन-मात्र की वस्तु न रहकर समाज के जीवन में व्याप्त हो जायँगी और जनता अपनी प्रगति में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकेगी।

अंचल जी की कवितायें अभी बहुत कुछ उसी श्रेणी की हैं जिनका उद्देश्य कदाचित् जनता को अनुप्राणित करने का कम और उच्चवर्ग—विशेषकर साहित्यिकवर्ग को अपने पुराने रास्ते से मोड़ने का अधिक है। जैसा कि उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा है, उनकी कवितायें नई दिशा में एक प्रयोग हैं। हम इस प्रयोग का स्वागत करते हैं। अंचल जी की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी ओजस्विता। 'अपराजिता' में यह ओजस्विता कदाचित् अपने ठीक स्थान पर नहीं थी। 'किरणबेला' की कविताओं में ही इसका उचित स्थान है। कवि घोषणा करता है—

आज तो संघर्ष को मैं प्यार करता।
आज मैं विद्रोह की हुंकार भरता॥

अपने से तो उसने विद्रोह कर ही लिया है। अपनी यौवन की संचित सुकुमार कल्पनाओं को विदा करते हुए वह कहता है—

जब यहाँ कुंकुम बरसता था मलय के दौर चलते।
चूमते अंबा टहनियों को मधुप-दल थे निकलते॥
धूल कनकमय हो गया था रेणु से यूथी अगर वन।
बन गई अपराजिता कलि-कलि मिला निर्बंध यौवन॥
ले मुखर यौवन शमा-सी मुग्ध कानन-बाल डोलीं।
आह! मीनाक्षी झमकती बन परी सुकुमार बोलीं॥
वह महासागर चपल सौन्दर्य का रसगंध प्लावन।
पीत परिमल के दिवस वे बुझ गये सकता न जीवन॥
आज पतझड़ है चमन में और मेरा पिक अकेला।
यह ख़िज़ाँ छाई प्रलय-सी आज पुलकों की न बेला।
एक दीपक भी न जलता आज सब सूनी लतायें॥

अपनी कल्पना के सीमित, सुरक्षित काव्यमय वातावरण को उजाड़कर, सूना [illegible] वह खुली हवा में आता है और देखता है—

दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर?
चित्र स्वाभाविक है—

साँझ हुई पथ देख रही है किसका भरे दृगों की गगरी।
कहीं पेट की आग बुझाने गये पिया तज इसकी नगरी॥
बीते कितने वर्ष इसे यों पथ पर अपने नैन बिछाते।
और खुली आँखों में इसकी अब तो कोई स्वप्न न आते॥
इसकी भी आई थी आमों-सी बौराती प्रखर जवानी।
किन्तु गई चुपचाप ज़मींदारों के भय की छोड़ कहानी॥
× × × ×
काली गँदली क्षीण नदी-सी बहती जीवन के मरघट में।
सूख झुलसती जो तट पर प्रज्वलित चिता की लपट-लपट में॥
किन्तु न केवल आँच विरह की, कैसे भरे पेट हत्यारा।
बीच डगर पर छोड़ गया जब जीवन का सर्वस्व सहारा?

कवि अपने नवीन उत्तरदायित्व को मार्मिकता से अनुभव करके कहता है—

किस युग में कवि के जीवन में यह दारुण दावानल छाया।
कब उसकी कुटीर में ऐसी आग लगी यह दर्द समाया॥
आज बुझाकर अपनी साधें अग्रदूत मैं बना निधन का।
देखा जाता आज न यह वैधव्य दाह मानव-जीवन का॥
भूखों नंगों की मिट्टी पर मुट्ठी भर का महल बनाना।
लख लुटती नारी की लज्जा व्यभिचारी का हँसते जाना॥
जब बेबस माता के आगे घुटघुट शिशु के प्राण निकलते।
तब कवि के रोएँ रोएँ से कितने हाहाकार निकलते॥

अपने निश्चय को वे घोषित करते हैं—

मैं श्रृंगार करूँ गीतों से तोड़ रुद्ध युग के दरवाज़े।
महाप्रलय की आज जयंती आज सुन्दरी उठें जनाज़े॥

हमारी मंगलकामना है कि कवि अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

अंचल जी की भाषा ओजपूर्ण है, परन्तु कहीं कहीं उनके प्रयोग चिन्त्य हो जाते हैं; जैसे—

धन के जायज़ वितरण के हम दुर्जय प्रहरी आग्रहकर्ता।

अंचल जी में संगीत है, उनके गीतों में प्रवाह तथा आकर्षण है, परन्तु कहीं कहीं शब्दों के प्रति उनका मोह अनुचित-सा लगने लगता है।

कुल मिलाकर 'किरणबेला' हिन्दी-कविता की नई दिशा में एक स्तुत्य प्रयोग है। इस प्रयोग की सफलता की हम कामना करते हैं।

पुस्तक का कागज़, और छपाई अच्छी है।

—व्रजेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
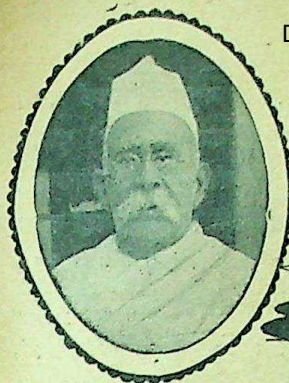
स्वर्गीय द्विवेदी जी के कागद-पत्तर

पत्रिका वर्ष ४४, अंक ३, पृष्ठ ३३५-३७ में सभा की ओर से 'स्वर्गीय द्विवेदी जी का लिफ़ाफ़ा' शीर्षक के अंतर्गत सभा के तत्कालीन प्रधान मंत्री ने तथा रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सभा के कार्यालय में द्विवेदी जी का ऐसा कोई मुहरबन्द लिफ़ाफ़ा नहीं है जो खोला जाने को हो और जिससे किसी रहस्य का उद्घाटन होने की आशा हो। जो बन्द लिफ़ाफ़ा द्विवेदी जी ने अभिनंदनोत्सव के अनन्तर सभा के तत्कालीन सभापति को दिया था उसमें सभा के नौकरों के लिए २००) रुपयों की भेंट थी। जिस सामग्री को उन्होंने 'ताले में बन्द' रखने का और उनके जीवनकाल में न खोलने का आदेश किया था वह थे उनके तीन बण्डल जिनमें उनके नाम भेजे गये निजी पत्रों का संग्रह मिला है। इसका विवरण उपर्युक्त स्पष्टीकरण में दिया जा चुका है। उस बन्द लिफ़ाफ़े और इन 'ताले में बन्द' रक्खे गये पत्रों के बण्डलों को कुछ लोगों ने भ्रमवश अभिन्न मान रक्खा है। उक्त बण्डलो में प्राप्त पत्रों की पूरी सूची अब सभा ने तैयार करा ली है। पत्रों की संख्या २,८०१ है और ये सन् १८९२ से लेकर सन् १९२८ तक के हैं। मैं समझता हूँ कि सन् १९२०-२३ के कुछ पत्र द्विवेदी जी ने सभा के संग्रह में रखने को नहीं भेजे हैं। बात यह है कि मैंने तथा मेरे कुछ साथियों ने, इंडियन प्रेस, प्रयाग में रहते समय, सन् १९२१ के लगभग द्विवेदी जी को कुछ पत्र लिखे थे। उनमें से एक भी मुझे सभा के संग्रह में नहीं मिला। जान पड़ता है कि वे पत्र या तो दौलतपुर में द्विवेदी जी के घर पर रक्षित होंगे या फिर किसी मित्र ने उनपर अधिकार कर लिया होगा।

सभा में रक्षित इन पत्रों पर प्राप्त होने की तारीख और उत्तर का सूक्ष्मांश पेंसिल से द्विवेदी जी के हाथ का लिखा हुआ है। जो पत्र बहुत महत्त्व के समझे गये हैं उनके उत्तर की प्रतिलिपि भी साथ में है, पर ऐसे पत्र हैं बहुत स्वल्प। इन पत्रों की सूची ब्योरेवार छाप देने का आग्रह एक-आध सज्जन ने किया था। किन्तु सभा ने इस कार्य में अपने को समर्थ नहीं पाया। आग्रह करनेवालों का कहना था कि सभा उल्लिखित पत्रों का प्रकाशन न करना चाहे तो वे स्वयं छपाई का खर्च देंगे। इसपर उनसे अनुरोध किया गया कि प्रकाशन का विचार करने से प्रथम आप एक बार काशी पधारकर इनको देख तो लीजिए। इसका ठीक उत्तर न मिलने पर सभा ने आगरे से प्रकाशमान साहित्यिक मासिक पत्र 'साहित्य-संदेश' (अक्टूबर १९४१, पृष्ठ ८९) में अपनी ओर से स्पष्टीकरण कर दिया जिससे किसी को किसी प्रकार का भ्रम न हो।

यदि ये पत्र द्विवेदी जी ने दूसरों को लिखे होते तो इनके प्रकाशन से लाभ की आशा भी की जाती, किन्तु ये तो दूसरे लोगों ने द्विवेदी जी को लिखे हैं, अतः इनके प्रकाशन में अर्थ और समय लगाकर किस लाभ की आशा की जाय? हाँ, यदि कोई द्विवेदी जी का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहे अथवा उनका विस्तृत जीवनचरित लिखना चाहे तो उसके लिए यह सामग्री लाभप्रद हो सकती है। सभा की समझ में सर्वसाधारण को इस सामग्री के प्रकाशन से लाभ होने की आशा नहीं।

सन् १९२८ से लेकर द्विवेदी जी के तिरोहित होने तक के पत्र द्विवेदी जी के ग्राम दौलतपुर में रक्षित होंगे। बाबू श्यामसुन्दरदास जी को द्विवेदी जी ने ११-११-२३ को जुही कलाँ, कानपुर से एक कार्ड में लिखा था—"...... पत्र-व्यवहार अब पीछे दूँगा। अभी तो शायद पुस्तकें भी न दी जा सकें।....." द्विवेदी जी के पास आये हुए समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों का संग्रह यदि किसी एक ही सार्वजनिक संस्था में सुरक्षित रहता तो अच्छा होता।

दिवंगत आचार्य द्विवेदी जी के महत्त्वपूर्ण पत्र सभा के कार्यालय में सुरक्षित हैं। उनमें से दो पत्रों का अभीष्ट अंश और १४ नवम्बर सन् १९२३ का एक पत्र यहाँ उद्धृत किया जाता है जिससे प्रकट होगा कि द्विवेदी जी को सभा पर कितना स्नेहपूर्ण विश्वास था और अपने संग्रह पर उनकी कितनी ममता थी।

जुही, कानपुर
१४–११–२३

मेरे ज़िले रायबरेली में बेली पाठशाला का एक पुस्तकालय है। कई तअल्लुक़ेदार पीछे पड़े रहे। मैंने उनको पुस्तकें नहीं दीं। यहाँ कानपुर में छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट है। कोई १½ लाख की इमारत बनी है। बृहत् पुस्तकालय उसमें शीघ्र ही खुलेगा। अनेक बड़े-बड़े आदमी चाहते थे कि मैं वहीं अपना संग्रह रख दूँ। मैंने नहीं माना। बहुत-से लोग नाराज़ हो गये। सभा का मेरा तअल्लुक़ पुराना है उसी को मैंने पात्र समझा। वह चाहे रक्खे चाहे नष्ट कर दे। मैं बाँट नहीं देना चाहता; पर राय कृष्णदास का प्रणयभंग भी नहीं करना चाहता। उन्होंने बहुत पहले से कुछ पुस्तकें माँग रक्खी हैं। एक Archæological पुस्तक मैंने विवश होकर परसाल भेजी भी थी। उन्हें मैं Director General की Annual Report कुछ भेज दूँगा। पर अभी मैं उनको पास ही रक्खूँगा। दो-तीन यहाँ हैं, चार-पाँच गाँव पर। मेरे पास भी इधर ही कुछ सालों से आने लगी हैं, गवर्नमेंट आफ़ इंडिया से बहुत लड़ने पर।

यहाँ का संग्रह कुछ अच्छा नहीं, अधिकांश रद्दी है। पर जो है, हाज़िर है। बहुत पुस्तकों के पुट्ठे टूट गये हैं। बहुतों को चूहे खा गये हैं। आप चाहें तो मरम्मत करा लीजिएगा। अब तक ७ बकस भरे गये हैं। अभी तीन-चार आलमारियाँ और भरी पड़ी हैं। हस्तलिखित सामग्री तो सभी पड़ी है। यह सब अब मेरे लौटने पर उठवाइएगा। मैं परसों चला जाऊँगा जो जाने लायक़ हुआ। सूची ठीक-ठीक नहीं बनी। हिन्दी में मराठी, और संस्कृत में हिन्दी आदि किताबें मिल गई हैं। किसी बहुज्ञ से किताबें देख देखकर फ़िर बनवाइएगा और एक कापी मुझे भी भेजिएगा। हिन्दी-संस्कृत में हो सके तो विषय के अनुसार पुस्तकें अलग कर दीजिएगा। पं० गौरीशंकर ओझा जी (की) पुस्तक प्राचीन लिपिमाला कहीं थी। सूची में नहीं मिलती। देख लीजिएगा, वहाँ पहुँचती है या नहीं। पुस्तकें यहाँ बाहर बरांडे में रात को पड़ी रहती रही हैं। अब तक १,१६७ पुस्तकें निकाली गई हैं। उनमें से सौ डेढ़ सौ तो मासिक पुस्तकों की फाइलें ही होंगी। हिसाब—हिन्दी ६५८, अँगरेज़ी २८१, संस्कृत ८६, उर्दू ५९, बँगला ५१, मराठी २४, गुजराती ८। शायद सौ-पचास और निकाली जा सकें। जो रेलवाले माल लेंगे तो कल रवाना हो जायगा। नहीं बा० सहाय को ठहरना पड़ेगा। उन्हें वहाँ बुलाकर उनसे पुस्तकें सँभाल लीजिएगा।

दौलतपुर का संग्रह इससे अच्छा है। पुस्तकें सुन्दर सजाने लायक़ हैं। उन्हें अभी वहीं रहने दीजिए। मुझ अनाथ की नाथ वही हैं। वहाँ यदि किसी से प्रेम है तो उन्हीं से है। उन्हीं को देखकर किसी तरह काल-यापन कर देता हूँ। कुछ काम भी निकलता है। पुराणादि पढ़ता हूँ। विरक्ति कुछ और बढ़ने पर उन्हें भी भेज दूँगा। वसीयतनामे में लिख भी दिया है कि संग्रह किसी सर्वसाधारण संस्था को दे दिया जाय। अब आप ही का हक़ है, और कोई न पावेगा।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

७–११–२३ को बाबू श्यामसुन्दरदास जी को लिखे एक गोपनीय पत्र में द्विवेदी जी का यह वाक्य इस सम्बन्ध में महत्त्व का है—"संग्रह बँट जाना अच्छा नहीं।" ९–११–२४ को उन्होंने उक्त स्थान से बाबू साहब को लिखा था—"अपने वसीयतनामे में मैंने बची हुई पुस्तकें भी सभा को दे डालने की बात लिख दी है—कुछ थोड़ी-सी छोड़कर*। उतने अंश की नक़ल मैं किसी दिन सभा को भेज दूँगा।"

—ल० पाण्डेय।

* आचार्य द्विवेदी जी का देहावसान होने के अनंतर उनके भानजे श्री कमलाकिशोर जी को इसका ध्यान दिलाया गया था। आशा है, वे अपने मामा जी की इस इच्छा के पूर्ण करने में पश्चात्पद न होंगे। सभा को अभी तक द्विवेदी जी का वसीयतनामा देखने को नहीं मिला है। यदि वह सामयिक पत्रों में प्रकाशित करा दिया जाय तो उत्तम हो।
—ल० पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
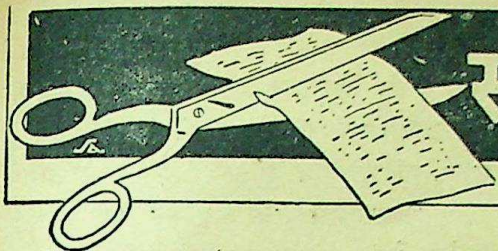
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का भाषण

पंडित अमरनाथ झा ने अबोहर के सम्मेलन-अधिवेशन के सभापति-पद से जो भाषण किया है उसमें जहाँ उन्होंने अनेक काम की बातें बताई हैं। वहाँ हिन्दी के वर्तमान महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भी विचार किया है। उनके भाषण का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

यह हमारा सौभाग्य है कि सम्मेलन के तेरह भूतपूर्व सभापति हमारे पथप्रदर्शन के लिए विद्यमान हैं। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय प्रथम अधिवेशन के सभापति थे। उन्होंने अपने भाषण में आदेश किया था—"हमारा सर्वप्रधान कर्त्तव्य है कि हम स्वच्छ भाषा में हिन्दी लिखें।" महात्मा गांधी दो अधिवेशनों के सभापति रह चुके हैं और हिन्दी-प्रचार में यदि सफलता हुई है तो इसका बहुत श्रेय महात्मा जी को है। महात्मा जी ने कहा था—"यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दी-भाषा का प्रचार न करके केवल साहित्य की वृद्धि करे तो हिन्दी राष्ट्र-भाषा कैसे बन सकती है?" और फिर—"मेरे यह सब कहने का मतलब यह नहीं कि बग़ैर अवसर के भी हम दूसरी भाषाओं के शब्द लें। हम कङ्गाल नहीं हैं, पर कंजूस नहीं बनेंगे।" महात्मा जी की सहायता, उनका सहयोग, उनका औदार्य्य पाना सम्मेलन का महाभाग्य है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने नागरी-प्रचारिणी सभा में और हिन्दू-विश्वविद्यालय में जो हिन्दी की सेवा की है, गवेषणा-पूर्ण ग्रंथों की रचना करके जो साहित्य की वृद्धि की है, उसे हम कभी नहीं भूल सकते। माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन तो आरम्भ से सम्मेलन के प्राण-स्वरूप हैं। टंडन जी का सम्मेलन से प्रेम, सम्मेलन के कार्य में तत्परता, हिन्दी-साहित्य से अनुराग, रात-दिन हिन्दी के हित की चिन्ता हमारे लिए आदर्श हैं। ऋषितुल्य डाक्टर भगवान-दास की विद्वत्ता, तीक्ष्ण बुद्धि, मौलिक विचारधारा का हमें गर्व है। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की कर्त्तव्य-परायणता, सरलता, गाम्भीर्य और नम्रता से तो हमें यही स्मरण होता है—"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।" "हरिऔध" जी का स्थान आधुनिक कवियों में, व्रजभाषा और खड़ी बोली के कवियों में, सर्वोच्च है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर जी ओझा की ऐतिहासिक और साहित्यिक पुस्तकें चिरस्मरणीय रहेंगी। रावराजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ने स्वयं और अपने बन्धुओं के सहयोग से जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास की सामग्री एकत्र की है, जिस दत्तचित्ता से उन्होंने अनेक विषयों पर और विविध रूप में हिन्दी की सेवा की है, उसके लिए हम सदा कृतज्ञ रहेंगे। सेठ जमनालाल बजाज का राष्ट्र-भाषा-समिति के सम्बन्ध में उत्साह सराहनीय है, उनके सहयोग से सम्मेलन को बल है। पंडित बाबूराव पराड़कर हिन्दी के लब्धप्रतिष्ट लेखक और विशिष्ट पत्रकार हैं। पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी की वर्षों की हिन्दी की सेवा कौन भूल सकता है? उनका विशुद्ध हिन्दी से प्रेम हमें उत्साह दिलाता है। बाबू सम्पूर्णानन्द की युक्ति-युक्त वक्तृता, जिसमें उन्होंने हिन्दी के यथार्थ रूप का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया था, सदा के लिए हिन्दी-प्रेमियों से आदृत रहेगी।

सम्मेलन ने जो कुछ काम पिछले तीस वर्षों में किया है वह कम नहीं है, बहुत सराहनीय है। कई अच्छे ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है, हिन्दी का प्रचार हुआ है, भारतवर्ष की भाषओं में हिन्दी आदर का स्थान पा गई है।

हमारा साहित्य उच्च कोटि के और साहित्यों की बराबरी कर सकता है। जहाँ सूरदास की भावपूर्ण कविता हो, कबीर के गूढ़ और सादी भाषा के पद हों, तुलसी के ग्रन्थरत्न हों, जहाँ केशव और पद्माकर का लालित्य और पद-विन्यास हो जहाँ बिहारी का रस और मीरा की तल्लीनता हो; भूषण का जहाँ शौर्य हो और नन्ददास की भक्ति हो; उस साहित्य का किसे गौरव नहीं होगा? जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी, अबदुर्रहीम खानखाना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रसखान', गुलामनबी, उस्मान, नूरमुहम्मद, मुंशी अजमेरी जी इत्यादि मुसलमानों की उत्कृष्ट रचनायें हों उससे कौन पुलकित न होगा? देव की सरस कविता, नेह के दीवाने हरिश्चन्द्र के पद, लाला सीताराम के सुन्दर अनुवाद, श्रीधर पाठक के पद, रत्नाकर की सुरीली बीन, सत्य-नारायण के करुणा के स्वर, प्रेमघन की विविध शैली के पद्य किस सुकवि-समाज को प्रभावित नहीं करेंगे? अलंकार के ग्रन्थ, युद्धों की गाथा, सर्वसाधारण के उपयुक्त भजन और गीत प्रचुरता से हमारे साहित्य में हैं। गद्य में महावीर-प्रसाद द्विवेदी के लेख-संग्रह, गदाधरसिंह और राजा शिवप्रसाद की पुस्तकें, बालकृष्ण भट्ट के निबन्ध, मिश्र-बन्धुओं का ग्रन्थ-समूह, पदुमलाल बख्शी की रचनायें, श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तकें, पद्मसिंह शर्मा के लेख हमारे साहित्य की श्री बढ़ानेवाले हैं। अयोध्या-सिंह उपाध्याय जिनकी कविता में अनुपम सजीवन जरी है, 'सनेही' जिनके बोल अनमोल हैं, गुरुभक्तसिंह जिनसे प्रकृति का कोई रहस्य छिपा नहीं है, गोपालशरणसिंह जो जीवन-कानन से वसन्त को जाते हुए देखकर अधीर रहते हैं, "हितैषी" जो दुखियों को अपनाने से सुखी हैं, जयशंकरप्रसाद की रूठी करुणा की वीणा, निखिल संसृति की आशा से चिर व्यथित "नवीन", भगवतीचरण वर्मा जो अपना बन्धन तोड़ आगे चल रहे हैं, महादेवी वर्मा जिनकी प्रार्थना है कि उनके छोटे जीवन में तृप्ति का कण न भरा जाय, मैथिलीशरण गुप्त जो अपने हिंडोल-रूपी हृदय से इतने प्रसन्न हैं कि बन्धन से भी उनको प्रेम है, माखनलाल चतुर्वेदी के मर्मभेदी सरल पद्य, मोहनलाल महतो के गीत, रामकुमार वर्मा जो संध्या के काले अंबर में अरुण-विकास का मिटना देखकर व्यथित हैं, सुमित्रा-नन्दन पन्त जो सुर-नर-मुनि-ईप्सित अप्सरा से मुख मोड़कर क्षुब्ध उदर और नग्नतन चेतना-विहीन जीवशापित जन्तुओं को देख विकल हैं, "निराला" भी जो अमल-कोमलतनु तरुनी जुही से हटकर गुलाब से भी बढ़कर कुकुरमुत्ता को सुबह का सूरज और शाम का चाँद समझने लगे हैं; "बच्चन" जो मधुशाला से बहुत दूर जाकर एकान्त-संगीत और विकल-विश्व का रुदन सुनते हैं—इन कवियों से हमारा आधुनिक साहित्य सुशोभित है। उपन्यास लिखने-वालों की भी संख्या कम नहीं है—प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, वात्स्यायन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी, श्रीनाथसिंह, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल और अन्य लेखकों ने मौलिक उपन्यास लिखकर साहित्य-सेवा की है। गुलेरी, सुदर्शन, कौशिक, गोविन्दवल्लभ पन्त, उग्र, भगवती-प्रसाद वाजपेयी, गिरिजाकुमार घोष, अनादिधन बन्द्यो-पाध्याय, सद्गुरुशरण अवस्थी, उदयशंकर भट्ट की आख्या-यिकाओं का भी अच्छा स्थान है। सेठ गोविन्ददास, रामकुमार वर्मा, गणेशप्रसाद द्विवेदी, वीरेश्वरसिंह, जगदीशचन्द्र माथुर और भुवनेश्वरप्रसाद के एकांकी नाटक उल्लेखनीय हैं। कुछ ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विषयों पर भी अच्छी पुस्तकें हैं।

परन्तु फिर भी कुछ अंगों की पूर्ति आवश्यक है। वैज्ञानिक पुस्तकों की अब भी कमी है। मैं जानता हूँ कि पिछले पन्द्रह-बीस वर्ष में कई अच्छी पुस्तकें लिखी गई हैं। "विज्ञान-परिषद्" ने बहुत काम किया है, न केवल 'विज्ञान' पत्र के प्रकाशन से परन्तु कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना से भी। 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने भी कुछ विज्ञान-विषयक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय ने "गेहूँ और आलू की खेती", "वैज्ञानिक परिमान", "कार्बोनिक रसायन", "साधारण रसायन", "चुम्बक", "हानिकारक किरणें", "वायुमंडल" नामक सात पुस्तकों को प्रकाशित किया है। पर फिर भी अभी कई ऐसे विषय हैं जिनपर पुस्तकों की आवश्यकता है और विज्ञान तो इतना प्रगतिशील और उन्नतिशील है कि इसके प्रतिअंग पर नई-नई पुस्तकों की रचना अभीष्ट है, जिनमें नये आविष्कारों और खोजों का समावेश हो।

दूसरी कमी इतिहास और जीवन-चरितों की है। इनमें भी काम हो रहा है, परन्तु इतिहास के विद्वान् अभी यथेष्ट संख्या में हिन्दी में अपने ग्रन्थ नहीं लिखते हैं। यह सत्य है कि अँगरेज़ी में लिखने से उनकी ख्याति और देशों में होती है और उनका प्रचार अच्छा होता है। मैं नहीं चाहता कि वे अँगरेज़ी में लिखना छोड़ दें, पर साथ ही हिन्दी में लिखना उनका कर्त्तव्य है।

समालोचना साहित्य का एक विशेष अंग है। खेद है कि हमारे समालोचकों में बहुत कम ने संस्कृत अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के काव्य-विषयक ग्रन्थों का अवलोकन किया है। जब हम देखते हैं कि प्रगतिशील योरप में अब भी एरिस्टोटेल, होरेस, लौंजाइनस इत्यादि के सूत्रों की कसौटी पर आधुनिक काव्य भी जाँचा जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम भी विश्वनाथ, मम्मट, राजशेखर, दंडिन, भामह, जगन्नाथ के मत का अनुसरण न करें और साहित्य की विवेचना उनके सिद्धान्तों के सहारे न करें।

एक और विषय है जिसकी चर्चा में डरते हुए करता हूँ--वह यह कि हिन्दी के प्रधान ग्रन्थों का अनुवाद और भाषाओं में होना चाहिए। विदेश में संस्कृत का आदर विद्वानों ने तभी किया जब योरोपीय भाषाओं में, इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, अँगरेज़ी में संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

हमें चाहिए कि अपनी प्रधान पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित करायें। तुलसी के 'मानस' का तो अच्छा अँगरेज़ी अनुवाद हो चुका है, मीरा के कुछ पदों का भी अनुवाद हुआ है, मैं बिहारी के तीन सौ दोहों का अनुवाद कर चुका हूँ और शीघ्र प्रकाशित कर दूँगा। कबीर के भी दो-तीन अनुवाद हो चुके हैं। परन्तु अन्य भाषा-भाषियों का कितना उपकार हो और हिन्दी के प्रति उनको कितनी श्रद्धा हो यदि सूरदास, नन्ददास, सेनापति, गिरिधरदास, रहीम, देव, भूषण इत्यादि की अच्छी कविताओं का अनुवाद उनको उपलब्ध हो जाय!

इधर कई वर्ष से साहित्य-क्षेत्र में एक अनावश्यक झगड़ा छिड़ा हुआ है। इस झगड़े से परस्पर मनोमालिन्य फैल गया है, वैमनस्य बढ़ गया है, वैयक्तिक आक्षेप होने लगे हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में तो यह झगड़ा कभी उठना ही न चाहिए था। और जहाँ चाहे ये झगड़े हों, इस सम्मेलन में तो कोई भ्रम का स्थान ही नहीं है। सम्मेलन का उद्देश्य (ख) जो सन् १९११ ई० के द्वितीय अधिवेशन में निश्चय किया गया था, यह है--

"देवनागरी लिपि का देश भर में प्रचार करना और देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए हिन्दी-भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न करना।"

पश्चात् इसका संशोधन यों हुआ और अब तक यह इसी रूप में है—

"देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए राष्ट्र-लिपि देवनागरी और राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करना।"

इन वाक्यों में झगड़े का कोई कारण नहीं है। फिर झगड़ा प्रारम्भ हुआ तो क्यों? सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव में इस उद्देश्य की यह टीका की गई—

"इस सम्मेलन को मालूम हुआ है कि राष्ट्र-भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कुछ गलतफ़हमी फैली हुई है और लोग उसके लिए अलग-अलग राय रखते हैं। इसलिए यह सम्मेलन घोषित करता है कि राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी का वह स्वरूप मान्य समझा जाय जिसका हिन्दू-मुसलमान आदि सब धर्मों के ग्रामीण तथा नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमें सुप्रचलित अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी, संस्कृत-शब्दों या मुहाविरों का बहिष्कार न हो और जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है।

मैं नहीं जानता कि इस टीका की क्या आवश्यकता थी। हिन्दी का स्वरूप सबको ज्ञात था। हिन्दी कोई नई भाषा गढ़ी नहीं जा रही थी। हिन्दी चन्दबरदाई के समय से स्वाभाविक उन्नति कर रही है, इसका रूप लेखकों-द्वारा निर्धारित हो चुका है। रामचरितमानस में अनेक फ़ारसी और अरबी के शब्द हैं। बिहारी की सतसई में बहुत-से फ़ारसी शब्दों का समावेश है। जो शब्द व्यवहार में स्वाभाविकतया आ जाते हैं उनके बहिष्कार का प्रयत्न हिन्दी में नहीं हुआ था। गलतफ़हमी कहाँ से आगई, किसके मन में समा गई? यह तो हिन्दी के साथ अन्याय है कि फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी के समान और इन सबके अन्त में, करुणा और दया के भाव से, संस्कृत को भी स्थान दिया जाय। हिन्दी का जन्म संस्कृत से है। जो कोई गम्भीर विषय पर हिन्दी में लिखेगा उसके लिए संस्कृत-शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है। जो नये वैज्ञानिक शब्द हिन्दी में निर्मित होंगे वे संस्कृत से ही लिये जा सकते हैं। यदि हम आशा करते हैं कि हिन्दी अहिन्दी प्रान्तों में समझी जाय और व्यवहृत हो तो केवल वही हिन्दी सर्वग्राह्य होगी जो संस्कृतमयी होगी और जिसमें उन प्रान्तवालों को कुछ परिचित शब्दों और अपनी संस्कृति की झलक मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हिन्दुस्तानी" के निर्माण का अभिप्राय क्या है? हिन्दी पर और प्रान्तों से तो अघात पहुँचता ही है। काश्मीर की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम "सादी उर्दू" है जो वहाँ के न मुसलमानों और न हिन्दुओं की मातृभाषा है। हैदराबाद में उर्दू उस्मानिया यूनिवर्सिटी की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम है, इसलिए कि आधिपत्य निज़ाम का है। पंजाब की कचहरी की भाषा उर्दू है यद्यपि यहाँ के हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख सबकी मातृभाषा पंजाबी है। जिस प्रान्त में काशी, प्रयाग, मथुरा, हरद्वार, अयोध्या इत्यादि संस्कृत संस्कृति के केन्द्र हैं वहाँ भी लखनऊ की जबान को प्राधान्य देने की चेष्टा होती है। जहाँ मिथिला, गया नालन्दा, पाटलिपुत्र जैसे प्राचीन सभ्यता और विद्या के स्थान हैं वहाँ भी यही प्रयास है कि संस्कृत-तनया हिन्दी अपने अक्षुण्ण रूप में उन्नति न करने पाये। एक उदाहरण और जिससे यह प्रमाणित हो जायगा कि "हिन्दुस्तानी" रूपक प्रयत्न बाह्य रूप में चाहे ऐक्य का ध्येय रखता हो यथार्थ में यह हिन्दी का मूलच्छेद कर रहा है। सन् १९४० में मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के भाषण के हिन्दी और उर्दू अनुवाद रामगढ़-कांग्रेस की स्वागतकारिणी समिति से प्रकाशित हुए। फ़ारसी-लिपि के भाषण का उदाहरण यह है—

"हमने इन तजवीज़ों के ज़रिये ऐलान किया कि योरप में जम्हूरियत और अनफ़रादी और क़ौमी आज़ादी के खिलाफ़ फ़ैसिज़्म और नात्सिज़्म की जो इत्तिजाई तहरीकें रोज़-बरोज़ ताक़त पकड़ती जाती हैं—हिन्दुस्तान इन्हें दुनिया की तरक्क़ी और अमन के लिए एक आलमगीर ख़तरा तसव्वुर करता है। और उसका दिल और दिमाग़ उन क़ौमों के साथ है जो जम्हूरियत और आज़ादी की हिफ़ाज़त में इन तहरीकों का मुक़ाबिला कर रही हैं।"

देवनागरी-लिपि में ये ही वाक्य यों छपे हैं—

"इन प्रस्तावों के ज़रिये हमने ऐलान किया कि योरप में डेमोक्रेसी यानी जनतंत्र के और व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वाधीनता के विरुद्ध, दुनिया को पीछे की ओर घसीटने-वाली फासीज़्म और नाज़ीइज़्म की जो तहरीकें दिन-बदिन ज़ोर पकड़ती जा रही हैं हिन्दुस्तान उन्हें दुनिया की तरक्क़ी और शान्ति के लिए एक विश्वव्यापी आपत्ति समझता है और उसका दिल और दिमाग़ उन क़ौमों के साथ है जो क़ौमें जनतंत्र और आज़ादी के लिए इन तहरीकों का मुक़ाबिला कर रही हैं।"

प्रचलित शब्द चाहे कहीं का भी हो, हिन्दी में अपनाया जा सकता है—परन्तु 'ऐलान', 'तहरीकें' इत्यादि शब्द तो हिन्दीवाले नहीं जानते। जहाँ हमारे शब्द विद्यमान हैं—जैसे 'द्वारा', 'संसार', 'उन्नति', 'जाति', स्वतंत्रता', 'सामना'—वहाँ 'ज़रिये', दुनिया' 'तरक्क़ी' "क़ौम', 'आज़ादी', 'मुक़ाबला', क्यों घुसेड़े जा रहे हैं? उर्दू के भाषण में तो भाषा शुद्ध, स्वच्छ परिमार्जित है, और हिन्दी भद्दी, बिगड़ी हुई, अजनबी।

'हिन्दुस्तानी' के नाम पर कितना अनर्थ हो रहा है यह बताना आवश्यक है। बम्बई में P. F. N. संस्था कई वर्ष से स्थापित है। इसके सदस्य भारत के सभी भाषाओं के लेखक हैं। इसका स्वागत इन्दौर के सम्मेलन ने किया था। मुझे भी इसकी कार्य-समिति का सदस्य होने का सौभाग्य है। इसमें हिन्दी का कोई भिन्न अंग नहीं प्रकट होता, श्री सुमित्रानन्दन पन्त और जनाब जोश मलीहाबादी की भाषा एक ही समझी जाती है। कुछ तरक्क़ीपसन्द मुसन्नफ़ीन एक पत्र "नया अदब" के नाम से प्रकाशित करते हैं। इसमें सभी अन्य भाषाओं के साहित्य का विवरण रहता है, परन्तु हिन्दी और उर्दू के स्थान में, "हिन्दुस्तानी" साहित्य की चर्चा होती है—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और मौलवी अब्दुलहक़ एक ही भाषा के साहित्यिक समझे जाते हैं। एक और पत्र प्रकाशित होता है—अँगरेज़ी में—जिसका नाम है "New Indian Literature." इसके सम्पादन के विषय में यह लिखा रहता है—"प्रधान भाषाओं के प्रतिनिधि लेखक-मंडल-द्वारा सम्पादित" "Edited by a board of representative writers in the major languages.") प्रधान भाषाओं में बँगला और गुजराती हैं, परन्तु न हिन्दी है और न उर्दू। "हिन्दुस्तानी" है—भारत की यह प्रधान साहित्यिक भाषा समझी गई है।

परन्तु यह भी मैं कहना चाहता हूँ कि यदि उच्च कोटि के साहित्य में, गम्भीर भावों के प्रकट करने में, वैज्ञानिक और दार्शनिक विवरण में, संस्कृत के शब्दों का प्रचुरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से व्यवहार आवश्यक है, जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है हमारी चेष्टा यह होनी चाहिए कि भाषा सरल हो। जन-साधारण से हम यह आशा नहीं कर सकते कि उनमें क्लिष्ट संस्कृत शब्दों के समझने की योग्यता हो। समाचार-पत्रों की भाषा, लोकोक्तियों की भाषा और गीतों की भाषा तो ऐसी होनी चाहिए कि वह सद्यः हृदयङ्गम हो। ग्राम-साहित्य की भाषा ललित साहित्य की भाषा से भिन्न होगी। हिन्दी में ऐसे यथेष्ट शब्द हैं जिनके द्वारा साधारण विषयों पर लेख लिखे जायें और गान रचे जायें।

राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करूँ। प्रचार का काम महात्मा जी के शब्दों में सम्मेलन का अविभाज्य अंग है। सम्मेलन ने इन्दौर और पूना-अधिवेशनों में अपनी नीति व्यक्त कर दी है। वर्धा की समिति कई वर्षों से महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। यह समिति पूर्ववत् काम करती रहे और सम्मेलन के उद्देश्य की पूर्ति करती रहे यही उचित है। सम्मेलन की स्थायी समिति ने इसके काम में हस्तक्षेप नहीं किया है। परन्तु इसके निर्माण में और इसकी नीति के अवलोकन में तो स्थायी समिति और सम्मेलन का हाथ रहना ही चाहिए। सम्मेलन इस विषय में तटस्थ नहीं रह सकता। उर्दू अथवा अँगरेज़ी अथवा और भाषा के प्रचार के लिए और संस्थायें स्थापित की जा सकती हैं हिन्दी-प्रेमी और सम्मेलन के सदस्य भी इन संस्थाओं की सहायता कर सकते हैं, परन्तु सम्मेलन को तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार करना ही है और इस कार्य में राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति का पूर्ण सहयोग होगा, यह मेरी आशा है। मैं यह भी परामर्श देता हूँ कि सम्मेलन जो नीति और व्याख्या इन्दौर और पूना के अधिवेशन में नियत कर चुका है, उसी पर स्थिर रहे।

बुतपरस्ती

कहते हैं कि संसार में ज्ञानालोक अब पहले से कहीं अधिक फैला हुआ है। तथापि 'बुतपरस्ती' के विरोधी पहले की ही तरह आज भी अपनी जगह पर जमे हुए हैं और उनमें ऐसे लोग भी दिखाई देते हैं जिन्हें समदृष्टि से सम विचारों का चिन्तन करने का ही अभ्यास रहता है। श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला ऐसे ही विचारकों में हैं। उपर्युक्त विषय पर उनका सर्वोदय में एक लेख निकला है जो यह है—

एक सज्जन लिखते हैं,

"हमारे गुरुकुल में जो प्रार्थना हर रोज़ होती है, उसमें "मातृ-भूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ", यह सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत भी गाया जाता है। एक साहब को उसमें बुतपरस्ती (मूर्ति-पूजा) की बू आती है।"

इस आक्षेप का वे समाधान-कारक उत्तर चाहते हैं।

जहाँ तक मुझे मालूम है, ऊपर बताया हुआ गीत एक आर्य-समाजी कवि का बनाया हुआ है। हिन्दू-सम्प्रदाय में आर्य-समाज मूर्ति-पूजा का उतना ही कट्टर विरोधी है जितना कि इस्लाम माना जाता है। इस पर से इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कवि की मंशा इस गीत के द्वारा मूर्ति-पूजा को उत्तेजन देने की नहीं हो सकती थी। फिर भी कवि अपनी कवि-बुद्धि से मुक्त कैसे हो? वह अपने देश के प्रति अपना प्रेम और आदर व्यक्त करना चाहता है। उसके हृदय में एक रूपक की कल्पना उत्पन्न होती है। देश के लिए 'मातृ-भूमि', आदि शब्दों का व्यवहार तो हरएक भाषा में बहुत पुराने ज़माने से होता आया है। उसी कल्पना के विकास में से यह गीत निकल आया। इसमें शक नहीं कि इसमें देश को माता माना है और उसके प्रति पूज्यता—पूजन—का भाव भरा हुआ है।

मुझे भी बुतपरस्ती में श्रद्धा नहीं है। मैं एक ऐसे मज़हब की तलाश में हूँ जिसमें शुरू से आखिर तक बुत-परस्ती का लवलेश भी न हो, जिसे मूर्ति-पूजा की भावना छू तक न गई हो। पर, अब तक तो मेरे देखने में ऐसा कोई भी सम्प्रदाय नहीं आया है। असल बात यह है कि जहाँ कोई सम्प्रदाय चल पड़ा कि उसमें किसी न किसी तरह पत्थर, पुस्तक, निशान वगैरह के रूप में बुतपरस्ती पैदा हो ही जाती है। ईश्वर और मूर्ति में जितनी विसंगति या विरोध है उससे ईश्वर और सम्प्रदाय में कुछ ज़्यादा ही विसंगति या विरोध है। लेकिन सम्प्रदायों का निर्माण मनुष्य की सामाजिक वृत्ति का एक अनिवार्य परिणाम है। और बुतपरस्ती साम्प्रदायिकता से अलग की नहीं जा सकती। तब, केवल इतना ही होता है कि कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय बुतपरस्ती करते हुए भी मुँह से उसका निषेध करते रहते हैं और कुछ उसे पूरी तरह स्वीकार कर लेते हैं।

जो मूर्ति-पूजा को स्वीकार ही कर लेते हैं, उन्हें फिर मूर्ति-पूजा का कोई भी प्रकार खटकता नहीं। जो उसको स्वीकार नहीं करते, उन्हें अपनी मानी हुई मूर्ति-पूजा के सिवा दूसरी तरह की मूर्ति-पूजाओं में दोष दिखाई देने लगता है, या कम से कम उसकी नुक्ताचीनी करना ज़रूरी मालूम होता है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मैं स्वयं मूर्ति-पूजा को श्रद्धा की नज़र से नहीं देखता। अपने हस्ताक्षर (आटोग्राफ़) देने की क्रिया में मुझे तो बुतपरस्ती की बू आती है और जब कोई मेरे रेखा-चित्र (पेंसिल स्केच) पर मेरे हस्ताक्षर माँगता है, तब तो वह बदबू मेरे लिए असह्य-सी हो जाती है। मुझसे जब झण्डा फहराने को कहा जाता है तब भी मुझे एक बोझ-सा मालूम होता है। लेकिन अच्छे-अच्छे मुसलमानों को मैंने अपने हस्ताक्षर करते और अपनी तसवीरों पर दस्तखत देते देखा है। इसी तरह वे अपने खास फिरके का झण्डावन्दन भी करते हैं।

तब मैं यह सोचने लगता हूँ कि मानव-मात्र मूर्त्तिपूजक हैं; इसलिए मूर्त्ति-पूजा का बिलकुल निषेध करना फ़िज़ूल है। इतना ही किया जा सकता है कि हम समय-समय पर मूर्तिपूजा की मर्यादाओं का ख्याल करते रहें और हर एक प्रकार के प्रचलित मूर्तिपूजा के गुण-दोषों का विचार कर उसे शुद्ध करने का प्रयत्न करते रहें। यह जनता की बुद्धि और संस्कार स्पष्ट और शुद्ध करने से ही हो सकता है। ज़बरदस्ती की या फ़र्मानी (अथोरेटेरियन) श्रद्धा से तो केवल एक क़िस्म की मूर्ति-पूजा की जगह दूसरी तरह की मूर्ति-पूजा ले लेती है।

तब यह सवाल होता है कि जब मूर्ति-पूजा का एक विशेष प्रकार हमें मान्य न हो, लेकिन हमारे आस-पास के सारे समाज की उसी में श्रद्धा हो, तो उस हालत में हमारा क्या रुख होना चाहिए?

हम उसमें सहयोग न देना चाहें तो न दें। अगर हमें हाज़िर रहना पड़े, तो एक दर्शक के नाते हाज़िर रहें। सिनेमा या नाटक में जब दूसरे धर्मों की पूजा के दृश्य आते हैं, तब हम क्या करते हैं? वहाँ तो हम सिर्फ़ खामोश ही नहीं रहते, बल्कि उन्हें दिलचस्पी से देखते हैं। तो फिर जिस पूजन में सैकड़ों लोगों की सच्ची श्रद्धा है, उसे हम निष्क्रिय समभाव से भी न देख सकें, तो अपनी मनुष्यता को ही हम बट्टा लगाते हैं।

असल बात यह है कि राष्ट्रगीतों के प्रति आज यह जो विरोध बतलाया जाता है, उसमें दरअसल कोई सचाई नहीं है। इन विरोधों के मूल में मूर्तिपूजा का निषेध करने-वाली धर्माज्ञाओं के भंग का धार्मिक डर सचमुच नहीं है। जिन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे से अलग करने का संकल्प कर लिया है, उन्हें अपना मतलब पूरा करने के लिए यह भी एक बहाना उपयोगी मालूम होता है, इसलिए वे उसपर ज़ोर देते हैं।

ऐसी हालत में भोली हिन्दू-जनता और भोली मुस्लिम-जनता को सही और नेक बात समझाना और उन्हें फूट पैदा करनेवालों के जाल से बचाना हमारा कर्त्तव्य है। हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि जो बात सद्बुद्धि-प्रेरित है, वह आखिर मान्य हुए बिना नहीं रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरदोली का निर्णय

गर्वी गुजरात की कर्मभूमि बरदोली में कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक हो गई। उसकी यह बैठक आठ दिन तक होती रही। बड़े वाद-विवाद के बाद जो प्रस्ताव उसने पास किया है वह महत्त्वपूर्ण ही नहीं, देशकाल के उपयुक्त भी है। खेद इतना ही है कि उस प्रस्ताव के कारण महात्मा गांधी कांग्रेस के अपने गौरवपूर्ण पद से अलग हो गये हैं। महात्मा जी अपने निश्चय पर सदैव अटल और अडिग रहे हैं और उन्हें अभी तक किसी तरह का प्रलोभन पथ-भ्रष्ट नहीं कर सका। परन्तु कांग्रेस में तो सभी महात्मा गांधी नहीं हैं ऐसी दशा में कार्य-समिति के जिन सदस्यों ने इस नये मार्ग का अनुसरण किया है वही मार्ग अनुभवी और कुशल राज-नीतिज्ञों का है। और यही कारण है कि अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी ने भी उस प्रस्ताव को अपनी वर्धा की बैठक में स्वीकार किया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि सरकार अपना हाथ आगे बढ़ावे। यह सच है कि महात्मा गांधी युद्ध के विरुद्ध अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह ज़ारी रक्खेंगे। परन्तु कांग्रेस का सहयोग प्राप्त हो जाने से ब्रिटिश सरकार को युद्धोद्योगों में अधिक सफलता ही नहीं प्राप्त होगी, किन्तु एक सन्तुष्ट प्रबल राष्ट्र की पूरी सहायता मिल जायगी। खेद है कि सरकार की गति मन्द है और अभी तक उसकी ओर से अवसर के उपयुक्त कोई कार्यवाही नहीं की गई है। यही सब देख-सुनकर तो कहना पड़ता है कि आज ग्रेट ब्रिटेन में पिट, ग्लैडस्टन जैसे कुशल व्यक्तियों का अभाव-सा हो गया है।

मित्रराष्ट्रों की नई योजना

अभी हाल में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मिस्टर चर्चिल अमरीका गये थे। रूस के विदेश-मंत्री लिटवीनाफ़ पहले से ही वहाँ मौजूद थे। इन दोनों की उपस्थिति से वहाँ संयुक्त-राज्य के राजमंत्रियों तथा अन्य देशों के प्रतिनिधियों के साथ गम्भीर राजनैतिक वार्तालाप हुआ। इसके फल-स्वरूप आज धुरी-राज्यों के विरुद्ध संसार के कोई २६ राष्ट्र एकता के सूत्र में आबद्ध हुए हैं। उन सबके प्रतिनिधियों ने एक महत्त्वपूर्ण सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, जिसमें यह प्रतिज्ञा की गई है कि धुरी-राज्यों से जमकर युद्ध किया जायगा और इसके लिए उन सभी देशों की सारी आवश्यक सामग्री का उपयोग किया जायगा और उनमें से कोई भी शत्रु से अलग सन्धि न कर सकेगा। हस्ताक्षर करनेवाले देश हैं—संयुक्त-राज्य, ग्रेट ब्रिटेन, रूस, चीन, बेल्जियम, कोस्टारिका, क्यूबा, ज़ेचोस्लोवेकिया, डोमिनियन रिपब्लिक, साल्वेडर, ग्रीस, गुआटेमाला, हैटी, होंडूरस, लक्ज़ेम्बर्ग, नीदरलैंड, निकारागुआ, नार्वे, पनामा, पोलैंड, यूगोस्लाविया, कनाडा, दक्षिण अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ी-लैंड और हिन्दुस्तान।

यह सन्धिपत्र हिटलर की उस योजना का मुँहतोड़ उत्तर है जिसे उसने अभी कुछ दिन हुए योरप के कुछ देशों को अपने साथ लेकर संसार के आगे उपस्थित किया था। चाहे जो हो, मित्र देशों की इस योजना से उनकी महान् शक्ति और क्षमता का तो पता लग ही जाता है, साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि उनके कर्णधार उपयुक्त समय पर उपयुक्त कार्य करने को अब धीरे धीरे कटिबद्ध हो रहे हैं।

जापान का संघर्ष

यह भले प्रकार प्रकट हो गया है कि जापान से न तो ब्रिटेन, न अमरीका ही लड़ने को तैयार था, परन्तु जापान तैयार था। फलतः उसने हवाई द्वीप श्याम आदि पर एक साथ ही आक्रमण कर दिया। श्याम ने कुछ ही घंटों के मुक़ाबिले के बाद हथियार डाल दिये और जापानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चियाङ्गकाई शेक।

जनरल वावेल।

सेनाओं को आगे बढ़ने के लिए मार्ग दे दिया। उसी रात को मलाया की उत्तरी सीमा पर स्थित कोटाबारू नामक स्थान में जापानी सेना उतरी।

उधर हवाई द्वीप के पर्ल बन्दरगाह में अमरीकन बेड़े और इधर सिंगापुर के पास ब्रिटेन के दो प्रसिद्ध जंगी जहाजों—प्रिंस आव वेल्स तथा रिपल्स—के नष्ट कर दिये जाने के कारण जापान को आगे बढ़ने से रोकना बहुत कठिन हो गया। आज स्थिति यह है कि मलाया पर जापान का क़ब्ज़ा हो गया है और जापानी सेनायें स्थिर गति से सिंगापुर की ओर बढ़ती जा रही हैं। उत्तरी बोर्नियो में भी जापानी सैनिक उतर पड़े हैं और महत्त्वपूर्ण स्थानों पर उनका क़ब्ज़ा हो गया है।

हाँगकाँग की ब्रिटिश सेना ने जिसमें कनाडियन और भारतीय सेना भी शामिल थी, बड़ी दृढ़ता के साथ जापानियों का सामना किया, परन्तु एक हफ़्ते के घोर युद्ध के बाद उन्हें विवश होकर आत्म समर्पण कर देना पड़ा।

फ़िलिपाइन के द्वीपों में डेढ़ लाख से भी अधिक जापानी सेना उतर गई। और अमरीका के इस महत्त्वपूर्ण द्वीपपुञ्ज पर आज जापान का अधिकार है। उसके गुआम टापू पर तो पहले ही जापान ने क़ब्ज़ा कर लिया था, अब वेक और मिडवे टापू भी उसके हाथ में चले गये हैं।

जापान की इन सफलताओं के कारण बर्मा, भारत, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड आदि के लिए ख़तरा पैदा हो गया है।

जापान ने प्रशान्त महासागर की इस लड़ाई को दो भागों में बाँट देने का प्रयत्न किया। कुछ हद तक वह ऐसा कर भी पाया है। पश्चिमी भाग में वह अँगरेज़ों से और पूर्वी भाग में अमरीकनों से लड़ना चाहता है। इसी लिए उसने सारे प्रशान्त में पनडुब्बियों का एक जाल-सा बिछा रखा है, ताकि अमरीक के जहाज़ अँगरेज़ों की मदद को और अँगरेज़ों के जहाज़ अमरीका की मदद को न पहुँच सकें। मलाय पर आक्रमण करके और वहाँ 'प्रिंस आफ़ वेल्स' और 'रिपल्स' को डुबोने में उसका यही अभिप्राय था। मलाया के मुख्य हवाई समुद्री अड्डे कोटाबारू पर उसका अधिकार हो जाने से मलाया में ठहरी ब्रिटिश सेना किसी भी जगह किसी की मदद को नहीं जा सकी। इसी तरह फ़िलिपाइन्स में ठहरी हुई अमरीकन सेना मनीला पर जापानी सेनाओं के पाँव जमा लेने से वहाँ से हिल नहीं सकी।

इसी भयावह परिस्थिति के कारण ब्रिटेन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका को एक नई योजना बनानी पड़ी है, जिसकी घोषणा वाशिंगटन से दोनों राष्ट्रों की ओर से संयुक्त रूप से की गई है, जो यह है--

अमरीकन सरकार के विभिन्न विभागाध्यक्षों के प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप और उन्होंने श्री रूज़वेल्ट तथा श्री चर्चिल को जो सलाह दी थी उसके अनुसार घोषणा की जाती है कि डच सरकार और आस्ट्रेलिया की स्वीकृति से दक्षिण-पश्चिमी प्रशान्त सागर --सिंगापुर, मलाया, डच-द्वीपपुंज और फ़िलिपाइन द्वीप-समूह के क्षेत्र में सब मित्र-देशों की सेनाओं का सम्मिलित रूप से सचालन करने के लिए एक ही प्रधान सेनाध्यक्ष को नियुक्ति करने का निश्चय हुआ है। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के सुझाव के अनुसार जिसे और लोगों ने भी मान लिया है, अब इस क्षेत्र की कुल सेना--जल, स्थल और आकाश की--जनरल सर आर्चिबाल्ड वावेल के नेतृत्व में रहेगी। अमरीकन वायुयान-सेना के अध्यक्ष मेजर जनरल जार्ज ब्रेट उप-प्रधान सेनापति और अमरीका के एशियायी बेड़े के अध्यक्ष एडमिरल हार्ट जनरल वावेल की मातहती में उक्त क्षेत्र की समस्त जल-सेना के प्रधान बनेंगे। सिंगापुर में स्थित ब्रिटिश सेना के सेनापति जनरल सर हेनरी पौनाल जनरल वावेल के अधीन काम करनेवाले सैनिक अफ़सरों के प्रधान नियुक्त होंगे। जनरल वावेल शीघ्र ही अपनी नई ज़िम्मेदारी ग्रहण करेंगे।

चीनी युद्ध-क्षेत्र में लड़नेवाली मित्र-राष्ट्रों की समस्त स्थल और व्योम सेना की कमान मार्शल च्यांगकाई शेक के हाथ में रहेगी।

मार्शल च्यांगकाई शेक की कमान में हिन्दचीन तथा श्याम के वे प्रदेश भी रहेंगे जहाँ मित्रराष्ट्रों की सेना का प्रवेश हो जायगा। ब्रिटेन तथा संयुक्तराष्ट्र के प्रतिनिधि मार्शल च्यांगकाई शेक की अधीनता में योजना बनानेवाले संयुक्त दफ़्तर में भी काम करेंगे।

उपर्युक्त घोषणा के अनुसार अब कार्य प्रारम्भ हो गया है। आशा है, अब जापान को शीघ्र ही अपने किये का फल भले प्रकार मिल जायगा।

भागलपुर में हिन्दू-महासभा

भागलपुर में हिन्दू-महासभा का २३वाँ अधिवेशन इस बार जैसा चाहिए नहीं हो सका। बकरीद के कारण प्रान्तीय सरकार ने २६ सितम्बर को ही भागलपुर में सभा का उक्त अधिवेशन करने का निषेध कर दिया था।

श्रीविनायक दामोदर सावरकर।

परन्तु महासभा के कर्णधारों ने उक्त निषेधाज्ञा का उल्लंघन करके भागलपुर में ही निर्धारित तिथियों पर अधिवेशन करने का निश्चय किया। परन्तु मनोनीत सभापति बैरिस्टर सावरकर तथा अन्य प्रमुख नेता भागलपुर नहीं जा सके, बीच में ही रोक लिये गये, अतएव अधिवेशन नहीं हो सका। तथापि पुलिस की निगाह बचाकर जो स्वयंसेवक तथा प्रतिनिधि भागलपुर जा सके थे उन्होंने नगर-निवासियों के सहयोग में अधिवेशन करने का प्रयत्न किया, जो एक प्रकार का विरोध-प्रदर्शन के रूप में हुआ। अपने इस प्रयत्न से सभा के कार्यकर्ताओं ने भी बता दिया कि उनमें भी शक्ति है और वे भी सरकार से अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि बिहार की प्रान्तीय सरकार ने उक्त निषेधाज्ञा निकालकर कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया। उसके इस कार्य की देश के सभी दलों के नेताओं ने निन्दा की है और जिन मुसलमानों की बकरीद की बात लेकर यह निषेधाज्ञा लगाई गई थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागलपुर के उन्हीं मुसलमानों ने स्वयं घोषित किया था कि उन्हें सम्मेलन के अधिवेशन से कोई विरोध नहीं है। ऐसी अवस्था में भागलपुर में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में सरकार की पुलिस और हिन्दू-सभा का जो बेमतलब का संघर्ष होता रहा वह एक व्यर्थ का ही कार्य माना जायगा।

सम्मेलन का ३०वाँ अधिवेशन

सम्मेलन का ३०वाँ वार्षिक अधिवेशन इस बार पंजाब-प्रान्त के अबोहर नामक स्थान में हो गया। यह पहली बार है कि सम्मेलन का अधिवेशन एक क़स्बे में हुआ है। इसका कारण अबोहर के स्वामी केशवानन्द
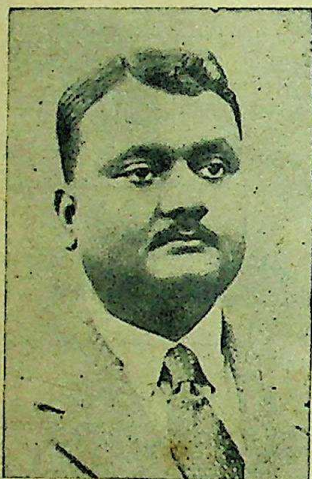
पंडित अमरनाथ झा।

हैं जिनमें हिन्दी के प्रति अटूट अनुराग है। यहाँ सम्मेलन के आमन्त्रित होने के बाद श्रीमान् काका कालेलकर के 'सर्वोदय' के एक लेख के कारण ऐसा जान पड़ने लगा था कि इस बार अबोहर में 'दुराग्रह' का प्रदर्शन देखने में आयेगा। परन्तु सत्याग्रही देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी महान् उदारता का परिचय देकर स्थिति सँभाल दी और अबोहर का अधिवेशन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया।

इस अधिवेशन के सभापति अँगरेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान् तथा साहित्य के मर्मज्ञ प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा मनोनीत हुए थे। तब अध्यक्ष का भाषण कैसे एक विशिष्ट भाषण न होता! भले ही झा महोदय 'हिन्दी' को मातृ-भाषा न मानते हों, परन्तु उनके भाषण के लिए उनसे वे सज्जन तक ईर्ष्या कर सकते हैं जिन्हें हिन्दी के मातृ-भाषा होने का गर्व रहता है। झा महोदय ने अपने छोटे से भाषण में जिस ख़ूबी के साथ हिन्दी-साहित्य का चौकस विहंगावलोकन किया है वह तो है ही, किन्तु आज के प्रमुख प्रश्नों पर अपनी स्पष्ट सम्मति जिस निर्भीकता से दी है वह उनकी स्थिति के व्यक्ति के लिए सर्वथा अनुरूप ही हुआ है। जो हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा समझते हैं, हमारा उन महानुभावों से विनम्र अनुरोध है कि इस भाषण को पढ़कर हिन्दी से प्रेम करना सीखें।

देश के अँगरेज़ी के विद्वानों में प्रोफ़ेसर झा पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने मुक्तकण्ठ से हिन्दी के वर्तमान लेखकों के महत्त्व को स्वीकार किया है। अँगरेज़ी के विद्वानों ने हिन्दी के प्राचीन साहित्यकारों का महत्त्व भले ही माना हो, परन्तु वर्तमान लेखकों के नाम ले लेकर पहले-पहल प्रोफ़ेसर झा ने ही उन्हें गौरव प्रदान किया है। उनके भाषण की यह बड़ी विशेषता है और इसके लिए हिन्दी-प्रेमी उनके कृतज्ञ रहेंगे।

जोधपुरराज्य और वनस्पति-घी

वनस्पति-घी के सम्बन्ध में अब तक जो आन्दोलन हुआ है वह यद्यपि सफल नहीं हुआ है, तथापि उसका प्रभाव पड़ा है। यह उसी आन्दोलन का सुफल है कि जोधपुर की सरकार ने वनस्पति घी की बिक्री अपने यहाँ बन्द कर दी है। दिल्ली का 'सेवक' इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है—

अच्छा समझते हुए भी जिस काम को लार्ड लिनलिथगो न कर सके। भारत-सरकार की दूध और मूँगफली रिपोर्ट की तजवीज़ें तथा डाक्टर राईट की सम्मति लिखी ही रह गईं। अपने आपको खेती करनेवालों का एकमात्र हमदर्द कहनेवाली पंजाब सरकार क़ानून की भूल-भुलैया से बाहर ही नहीं निकल सकी। युक्त-प्रान्त की किसानों के लिए बनी कांग्रेसी सरकार ने भी जिस नक़ली घी के मामले को लम्बा करके वहीं का वहीं ख़तम कर दिया उसी नक़ली घी की समस्या को महात्मा गांधी जी के इन वचनों के अनुसार "कि देश की बड़ी बड़ी राजनीतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
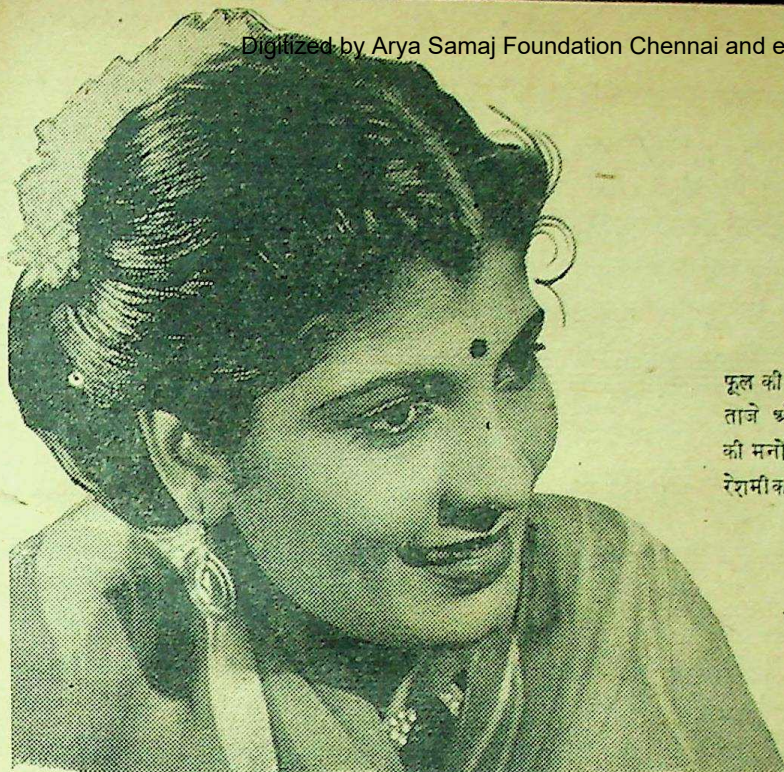
फूल की पंखड़ी के समान मुलायम ताजे और साफ़ चेहरेवाली स्त्री की मनोहरता के लिए गहने और रेशमी कपड़े केवल एक सहायक हैं।

सौन्दर्य का पहला महत्

सचमुच दैवशाली वही स्त्री है जिसको अप्सरा के समान रूप मिला है परन्तु अच्छे नाक-नक़शे के उपरान्त भी एक चीज़ ऐसी है जिसका सौन्दर्य में बड़ा महत्त्व है और वह है कोमल और साफ़ चर्म। सुन्दर मुखड़ा बहुत-सी मनोहर चीज़ों के संयोग का नाम है परन्तु उनमें से एक भी उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी चर्म की रक्षा, और यही सौन्दर्य का पहला महत् है।

यदि आप चर्म का रख-रखाव करें तो आपका वर्ण भी मनोहर हो सकता है। सबसे पहले आप उस चिकनाहट और मैल को दूर कर दें जो रोम-छिद्रों में प्रतिदिन जमा हो जाता है। इसके लिए साबुन और पानी काफी नहीं, आप पान्ड्स कोल्ड क्रीम लगाइए। यह रोम छिद्रों की गहराइयों में प्रवेश करके अन्दर और बाहर का तमाम मैल साफ़ कर देता है। हर सुबह और रात को कोल्ड क्रीम मुँह और गर्दन पर लगाइए, कुछ देर रहने दीजिए ताकि वह रोम-छिद्रों में प्रवेश कर सके फिर पोंछ डालिए।

दूसरी बात यह कि दिन में अपने चर्म की रक्षा के लिए आपको पान्ड्स वानिशिंग क्रीम लगाना चाहिए। यह आपके चेहरे पर एक नाज़ुक और बिना चिकनाहट की परत चढ़ा देगा जो धूप, आँधी और धूल-मिट्टी से चेहरे की रक्षा करेगी।

शीघ्र ही पान्ड्स क्रीम का प्रयोग कीजिए। कुछ ही सप्ताहों में आपका चेहरा चम्पे के फूल के समान मुलायम और चिकना हो जायेगा।

पान्ड्स क्रीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्याओं से पहले नक़ली घी के प्रश्न को हल करना चाहिए" मारवाड़ ने हल कर दिया।

जोधपुर-सरकार ने आज्ञापत्र नम्बर २५५० तारीख़ १४ फ़रवरी १९४१ के द्वारा मारवाड़ शुद्ध भोजन क़ानून जिसमें नक़ली घी मुख्य विषय था इस पर विचार करने के लिए एक सम्मिलित कमिटी बनाई—

इस कमिटी की तजवीज़ पर मारवाड़ सरकार ने वनस्पति-घी नहीं, वनस्पति में मिलाये जानेवाले मूँगफली इत्यादि के तेलों का रियासत में आना और बेचना क़तई बन्द कर दिया। तिल और सरसों के तेल के अतिरिक्त अन्य सब तेलों के बेचने के लिए लैसन्स लेना होगा। वह भी यदि भोजन के लिए न हों तो ही, अन्यथा न बेचे जा सकेंगे। क़ानून के विरुद्ध कार्रवाई करनेवाले को एक हज़ार रुपये तक जुर्माना या २ साल तक क़ैद की सज़ा होगी या दोनों एक साथ। रियासत ने यह क़ानून लागू कर दिया है। जिन लोगों के पास इस क़ानून से पहले के वनस्पति या अन्य तेल हैं उनके स्टाक सँभाल लिये गये हैं। लैसन्स लेकर इन्हें छः महीने तक बेच सकेंगे। रियासत को वनस्पति और इन तेलों-द्वारा चुंगी की आमदनी ५ लाख रुपये सालाना थी, पर रियासत ने किसानों व मूक पशुओं और साधारण जनता की भलाई के लिए उसे छोड़ दिया। रियासत सख़्ती से इस क़ानून पर अमल करेगी। यह क़ानून बनाकर मारवाड़ ने सारे देश का पथ-प्रदर्शक बना है।

भारत-सरकार की सावधानी

मलाया में जापान के आक्रमण कर देने तथा रंगून पर उसके बम्ब-वर्षा करने से भारत-सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह भारत की रक्षा के लिए अधिक सजग रहे। कदाचित् इसी से उसने बंगाल और आसाम में असाधारण स्थिति की घोषणा कर दी है। यही नहीं, उसने दो नये आर्डिनेन्स बनाये हैं, जिनसे प्रान्तीय सरकारों को असाधारण स्थिति के उत्पन्न होने पर आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं।

पहले आर्डिनेन्स से प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अधिकार मिला है कि वे खास खास हलक़ों में लूट-मार करने, आग लगाने, शस्त्र से मारपीट करने और धोखा से सरकार को हानि पहुँचाने के अपराध में फाँसी अथवा कोड़े लगाने की भी सज़ा दे सकती हैं। दंगा करने और सरकारी अफ़सरों के काम में बाधा पहुँचाने के लिए कोड़ा लगाया जा सकता है।

दूसरे आर्डिनेन्स से प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अधिकार मिलता है कि भारत पर शत्रु के हमला होने पर किसी हलक़े में यदि विशेष ख़तरे की स्थिति उत्पन्न हो गई है तो वहाँ विशेष न्यायालय खोले जा सकते हैं और उन न्यायालयों को विशेष अधिकार दिये जा सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि असाधारण स्थिति के लिए केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को पहले से ही इस प्रकार के अधिकार देकर बुद्धिमानी का काम किया है। इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि देश की आन्तरिक स्थिति प्रत्येक दशा में सुव्यवस्थित तथा शान्त रहनी चाहिए, क्योंकि तभी तो सरकार अपने युद्धोद्योगों को पुरस्सर रख सकेगी। उसकी यह व्यवस्था भी सुन्दर है कि उसने अनावश्यक मुक़दमेबाज़ी के रोकने का भी सद् प्रयत्न किया है। इससे ज़िले के अधिकारियों को अब काफ़ी समय मिलेगा और वे युद्ध-संबंधी कार्य अधिक सुन्दर ढंग से कर सकेंगे।

युक्तप्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन

प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों का संगठन अभी तक व्यवस्थित रूप नहीं ग्रहण कर सका। कम से कम संयुक्त प्रांत में जहाँ के निवासी अपने को हिन्दी का ठेकेदार समझते हैं, प्रान्तीय सम्मेलन सदैव दैन्यावस्था को ही प्राप्त रहा है। उसके यदि अधिवेशन हुए हैं तो किसी व्यक्ति-विशेष की प्रेरणा से ही—उसके पीछे प्रान्त के हिन्दी-प्रेमियों की सम्मिलित प्रेरणा कभी नहीं रही है। ऐसी दशा में यदि आज आगरे की नागरी-प्रचारिणी सभा के संचालक अपने भवनोद्घाटन के सिलसिले में प्रान्तीय सम्मेलन का अधिवेशन करने जा रहे हैं तो एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा की कहावत के चरितार्थ करने का एक सुन्दर उदाहरण हो सकता है। तथापि वे इस सत्कार्य के लिए सर्वथा बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उनके प्रयत्न से सम्मेलन का जलसा तो होने जा रहा है। इस सम्बन्ध में तो हम बिहार, मध्य-प्रदेश के हिन्दी-प्रेमियों की प्रशंसा करेंगे जो अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
५८५४६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

(स्वर्गीय पूज्य पिता श्री काशीराम जी की स्मृति में)

इसका दसवाँ पुरस्कार इस बार—**कहानी**—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित हैं—
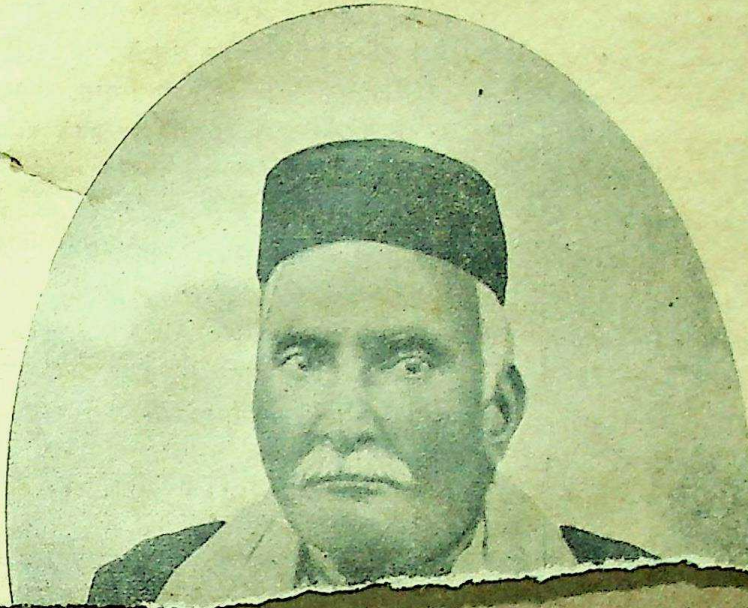
(१) हिन्दी का कोई भी लेखक या लेखिका इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेंगी।

(२) रचना भेजने की अन्तिम तारीख़ २८ फ़रवरी १९४२ है।

(३) केवल नई और मौलिक रचनाओं पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ रचना पर ५०) का पुरस्कार ३० अप्रैल १९४२ को भेज दिया जायगा और रचना ...स्वती' में छापी ...रस्कार का ...गे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने प्रान्तों में प्रान्तीय सम्मेलन के अधिवेशन बराबर करते रहते हैं। और मध्य-भारत तथा राजपूताना के हिन्दी-प्रेमी भी प्रशंसार्ह हैं, क्योंकि वहाँ भी प्रान्तीय सम्मेलनों का सुसंगठन हो गया है। संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी-प्रेम के अभिमानी हिन्दी-प्रेमियों को अपने उक्त बन्धुओं से कुछ तो शिक्षा ग्रहण करनी ही चाहिए।

सुहृद्संघ मुजफ़्फ़रपुर का वार्षिकोत्सव

बिहार की प्रसिद्ध तथा प्रगतिशील साहित्यिक संस्था मुजफ़्फ़रपुर के सुहृद-संघ का छठा सालाना जलसा धूम-

...न किसानों व मूक पशुओं ... जनता की भलाई के लिए उसे छोड़ ... रियासत सख्ती से इस क़ानून पर अमल करेगी। यह क़ानून बनाकर मारवाड़ ने सारे देश का पथ-प्रदर्शक बना है।

भारत-सरकार की सावधानी

मलाया में जापान के आक्रमण कर देने तथा रंगून पर उसके बम्ब-वर्षा करने से भारत-सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह भारत की रक्षा के लिए अधिक सजग रहे। कदाचित् इसी से उसने बंगाल और आसाम में असाधारण स्थिति की घोषणा कर दी है। यही नहीं, उसने दो नये आर्डिनेन्स बनाये हैं, जिनसे प्रान्तीय सरकारों को असाधारण स्थिति के उत्पन्न होने पर आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं।

पहले आर्डिनेन्स से प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अधिकार मिला है कि वे खास खास हलक़ों में लूट-

...थ भी करेंगे। हिन्दुस्तानी-विरोधी-सम्मेलन का सभापतित्व कुमार गंगानन्दनसिंह करेंगे।

कलकत्ते का खाली होना

रंगून की बम्बबाज़ी का कलकत्ते के निवासियों पर जो प्रभाव पड़ा है वह लज्जाजनक है। यह स्पष्ट है कि समय बहुत बुरा है और जिस बात की कभी आशंका नहीं थी वह आज फुर हो रही है। रंगून पर बम्ब बरसने से कलकत्ता आदि नगरों के निवासियों के लिए सावधान हो जाने की बात कुछ समझ में तो आती है। परन्तु पिछले दिनों कलकत्ते के निवासियों ने भागने में अपना जो पुरुषार्थ दिखाया है वह प्रशंसनीय नहीं है। इस सम्बन्ध में एक कलकत्तानिवासी ने 'जागृति' में एक लेख छपवाया है, जिसका कुछ अंश यह है—

जापान के युद्ध-घोषणा करते ही कलकत्तेवाले उछल पड़े और मलाया बर्मा में जापानियों के घुसते ही कलकत्तावालों के दिल दहल उठे और उन्होंने घरद्वार छोड़कर बेतहाशा पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भागना शुरू कर दिया। मैं यह नहीं कहता कि आप भागें नहीं और अपने तथा अपने बाल-बच्चों की रक्षा न करें, लेकिन इतने बदहवास और वे युद्ध-सम्बन्धी ... आपके लिए ... के बम्ब...

युक्तप्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन

प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों का संगठन अभी तक व्यवस्थित रूप नहीं ग्रहण कर सका। कम से कम संयुक्त प्रांत में जहाँ के निवासी अपने को हिन्दी का ठेकेदार समझते हैं, प्रान्तीय सम्मेलन सदैव दैन्यावस्था को ही प्राप्त रहा है। उसके यदि अधिवेशन हुए हैं तो किसी व्यक्ति-विशेष की प्रेरणा से ही—उसके पीछे प्रान्त के हिन्दी-प्रेमियों की सम्मिलित प्रेरणा कभी नहीं रही है। ऐसी दशा में यदि आज आगरे की नागरी-प्रचारिणी सभा के संचालक अपने भवनोद्घाटन के सिलसिले में प्रान्तीय सम्मेलन का अधिवेशन करने जा रहे हैं तो एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा की कहावत के चरितार्थ करने का एक सुन्दर उदाहरण हो सकता है। तथापि वे इस सत्कार्य के लिए सर्वथा बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उनके प्रयत्न से सम्मेलन का जलसा तो होने जा रहा है। इस सम्बन्ध में तो हम बिहार, मध्य-प्रदेश के हिन्दी-प्रेमियों की प्रशंसा करेंगे जो अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
N28146